भौतिक शिक्षण

(Teaching of Physical Science)

ch-,M-

(B.Ed.)

Paper-5 & 6

(Option-I)

njLFk f'k{kk funs'kky;

egf"k n;kuUn fo'ofo|ky;

jksgrd&124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

यूनिट 1

अध्याय 1:	विद्यालय पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान का महत्त्व	5
अध्याय 2:	माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य	12
अध्याय 3:	ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण	19
अध्याय 4:	विशिष्ट उद्देश्यों का व्यवहारपरक शब्दावली में प्रतिपादन	26

यूनिट 2(a)

अध्याय 1:	ऊर्जा के प्रकार	34
अध्याय 2:	ऊष्मा का संचरण	39
अध्याय 3:	परमाणु सरंचना	45
अध्याय 4:	चुम्बकत्व	65
अध्याय 5:	घर्षण	71
अध्याय 6:	जल एक सार्वभौमिक विलायक के रूप में	75

यूनिट 2(b)

अध्याय 1:	अध्यापन कार्य का विश्लेषण	79

यूनिट 3(a)

अध्याय 1:	इकाई योजना एवं पाठ योजना बनाना	84
अध्याय 2:	सहायक सामग्री का निर्माण	122
अध्याय 3:	प्रदर्शन प्रयोगों का विकास	140
अध्याय 4:	पाठ्य सहगामी क्रियाएं	144

यूनिट 3(b)

अध्याय 1:	स्व–अधिगम सामग्री का विकास (रेखीय अभिक्रम)	155

यूनिट 4(a)

अध्याय 1:	व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि	166
अध्याय 2:	प्रोजेक्ट विधि	173
अध्याय 3:	समस्या समाधान विधि	183

यूनिट 4(b)

अध्याय 1:	प्रयोग प्रदर्शन–प्रयोगशाला प्रयोग कौशल	188
अध्याय 2:	स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरण	195
अध्याय 3:	पाठ–प्रस्तावना कौशल	203
अध्याय 4:	प्रश्न पूछना	209
अध्याय 5:	दष्टान्त कौशल	216
अध्याय 6:	व्याख्या कौशल	224
अध्याय 7:	श्यामपट्ट उपयोग कौशल	230
अध्याय 8:	उद्दीपक परिवर्तन कौशल	237

यूनिट 5

अध्याय 1:	मापन, मूल्यांकन एवं ग्रेडिंग का प्रत्यय	243
अध्याय 2:	निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन	262
अध्याय 3:	निदानात्मक मूल्यांकन	265
अध्याय 4:	एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण	268
अध्याय 5:	उपलब्धि परीक्षण का तैयार करना (वस्तुनिष्ठ रूप)	273

TEACHING OF PHYSICAL SCIENCE
PAPER-V & VI
GROUP-D (Option-1)

OBJECTIVES

1. To develop awareness about developments in the area of teaching and learning of Physical Science at the national and international level.
2. To develop competencies in the prospective teachers related to Physical Science at lower secondary level with specific reference to Indian School Conditions.
3. To orient prospective teachers in specific educational aspects of Science an Technology Education e.g. general concept of Physical Science, aims and objectives of Physical Science, pedagogical analysis of contents in Physical Science at the lower secondary level, transaction of contents, methods of teaching, evaluation etc.
4. To enable prospective teachers to be effective teachers in order to perform the required role as a Physical Science teacher under Indian School conditions.

THEORY M.M.:100
Time: 3 Hrs.

Note: The examiner is requested to set 10 questions taking two questions from each unit. The candidate will be required to attempt five questions selecting at least one from each unit.

I Concept

1. Importance of Physical Science in School Curriculum
2. General aims and objectives of teaching Physical Science at Secondary School Staff
3. Bloom's Taxonomy of Educational Objectives
4. Formulation of specific objectives in behavioural terms

II Contents and Pedagogical Analysis

Contents:

1) Energy-types
2) Transmission of heat
3) Atomic structure
4) Magnetism
5) Friction
6) Water as universal solvent

Pedagogical analysis of any one of the above topics

Following points should be followed for pedagogical analysis:

1) Identification of minor and major concepts
2) Listing behavioural outcomes
3) Listing activities and experiments
4) Listing evaluation procedure

III Transaction of contents and Development of Instructional Material

1. Transaction of contents
   - (i) Unit Planning and lesson planning
   - (ii) Preparation of teaching aids
   - (iii) Development of demonstration experiments
   - (iv) Co-curricular activities
2. Development of self-learning material (Linear programme).

IV Methods of Teaching and Skills involved in teaching

1. Methods of Teaching
   - (a) Lec-Demonstration method
   - (b) Project method
   - (c) Problem-solving method
2. Skills
   1. Practical demonstration-using laboratory
   2. Improvisation of apparatus
   3. Skill of Introducing the lesson (set induction)
   4. Questioning
   5. Skill of Illustration with examples (visual)
   6. Skill of Explaining
   7. Skill of using Black Board
   8. Skill of Stimulus variation

V. Evaluation

1. Concept of Measurement and evaluation and grading
2. Formative evaluation
3. Summative evaluation
4. Diagnostic evaluation
5. Characteristics of a good test
6. Preparation of achievement test-objective tests

इकाई-I

अध्याय-1: विद्यालय पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान का महत्त्व (Importance of Physical Science in School Curriculum)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- विज्ञान शिक्षण के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य का वर्णन कर सकें।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षण की महत्ता को बता सकें।
- भौतिक विज्ञान का पाठ्यक्रम में स्थान को पहचान सकें।
- विज्ञान शिक्षण के महत्व की व्याख्या कर सकें।

सरंचना:

1.1 प्रस्तावना
1.2 विज्ञान शिक्षण का इतिहास
1.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं विज्ञान शिक्षण
1.4 विज्ञान का पाठ्यक्रम में स्थान
1.5 भौतिक विज्ञान शिक्षण का महत्व
1.6 सारांश
मॉडल उत्तर
1.7 मुख्य शब्द
1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

मानव मन स्वभाव से ही जिज्ञासु होता है। वह अपने परिवेश में होने वाली सभी घटनाओं के कारण जानने की चेष्टा करता है जैसे–सूर्य रात को क्यों नहीं दिखाई देता? सूर्य पूर्व दिशा से ही क्यों उदय होता है? क्या हमारी पथ्वी के अतिरिक्त किसी दूसरे ग्रह पर जीवन है? बीज से वक्ष कैसे बनता है? जीव की उत्पत्ति एवं विकास का रहस्य क्या है? आदि मनुष्य की सहज जिज्ञासाओं से जुड़े इन प्रश्नों का उचित उत्तर प्राप्त करने के लिए वह जिन कार्यों को करता है, उसे विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान से अभिप्राय एक ऐसी प्रक्रिया तथा उस प्रक्रिया के परिणाम से है जो हमें सत्य की खोज की ओर प्रेरित करता है और सुव्यवस्थित व सुसंगठित ज्ञान प्रस्तुत करता है।

विज्ञान हमें स्वयं को तथा अपने परिवेश को समझने में सहायता करता है परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है जितना सुनने या पढ़ने में प्रतीत होता है। इस बात को ध्यान में रख कर विज्ञान को विषय के रूप में विद्यालयों, महाविद्यालयों आदि में पढ़ाया जाता है। विज्ञान शिक्षण कब प्रारम्भ हुआ और वर्तमान काल में विद्यालय पाठ्यक्रम में विज्ञान का क्या स्थान है, इस का अध्ययन हम प्रस्तुत अध्याय में करेंगे।

1.2 विज्ञान शिक्षण का इतिहास

भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही विज्ञान शिक्षण की व्यवस्था मिलती है। नागार्जुन, आर्यभट्ट, सुश्रुत, धनवन्तरी तथा वराह मिहिर क्रमशः रसायन विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान एवं ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुए हैं। छठी शताब्दी में भी अनेक रसायनज्ञों तथा रसायन प्रक्रियाओं का प्रमाण सहित उल्लेख मिला है। नालन्दा विश्वविद्यालय में आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान) का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य रखा गया था। आधुनिक समय में जगदीशचन्द्र बसु, वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में, डॉ० सी०वी० रमन एवं डॉ० होमी जहांगीर भाभा, भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में, रामानुज गणित के क्षेत्र में तथा डॉ. हरगोविन्द खुराना जेनेटिक्स (Genetics) के क्षेत्र में अग्रगणीय वैज्ञानिक हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही विज्ञान के महत्व को समझा गया और विज्ञान को शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य स्थान देने पर बल दिया गया। 1944 के एजुकेशन एक्ट के अनुसार विज्ञान सम्बन्धी पाठ्य विषय को महत्व दिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश की उन्नति एवं रक्षा के लिए शिक्षा एवं विज्ञान के महत्व को समझा गया और विज्ञान शिक्षण पर बल दिया गया। इस दिशा में ब्रिटेन का अनुकरण ही मुख्य ध्येय रहाऔर विज्ञान शिक्षण की प्रगति बहुत धीमी गति से हुई। सन् 1951-53 में मुदालियर कमीशन (Mudaliar Commission) ने सुझाव दिया कि सामान्य विज्ञान को हाई स्कूल में एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाये जाने की व्यवस्था की जाए। सन् 1956 में तारादेवी (शिमला) में एक अखिल भारतीय गोष्ठी (The All India Seminar on the teaching of Science in Secondary Schools) का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, आदर्श पाठ्यक्रम, वैज्ञानिक उपकरण, परीक्षा–पद्धति तथा 'विज्ञान–शिक्षण–प्रशिक्षण' आदि समस्याओं पर विचार–विमर्श करके अनेक सुझाव प्रस्तुत किए गए। इस गोष्ठी की सिफारिशों (recommendations) के आधार पर 'अखिल भारतीय विज्ञान–शिक्षण–संघ' की स्थापना की गई तथा कुछ शिक्षाविद्ों को विज्ञान–शिक्षण–पद्धति से परिचित करवाने के लिए विदेशों में जाने की सुविधायें प्रदान की गयी। विद्यालयों को प्रयोगशाला हेतु अनुदान दिए गए। विभिन्न विद्यालयों में 'विज्ञान क्लब' स्थापित किए गए। कुछ राज्यों में 'विज्ञान–मन्दिरों' का निर्माण किया गया। 'विज्ञान–शिक्षक' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ।

सन् 1964 में 'वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज' (Science Talent Search) कार्यक्रम का प्रारम्भ 'शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद' (NCERT) द्वारा किया गया। इसी अवधि में 'नेशनल साइन्स फाउन्डेशन' (National Science Foundation) ने ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण संस्थाओं (Summer Training Institutes) की व्यवस्था की। सन् 1966 में कोठारी कमीशन (Kothari Commission 1964-66) ने विज्ञान–शिक्षण के क्षेत्र में नवीन दष्टिकोण प्रस्तुत किया गया। इसके अनुसार ''हम विज्ञान को स्कूल पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण अंग बनाने हेतु आवश्यक बल देते हैं। अतएव, हम इस पक्ष में हैं कि विज्ञान एवं गणित को विद्यालय के प्रथम दस वर्षों में सामान्य शिक्षा के एक अंश के रूप में सभी छात्रों को आवश्यक आधार पर पढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त उच्च स्तर पर इन विषयों में विशेष कोर्स का प्रबन्ध किया जाए, विशेषकर उन छात्रों के लिए जो औसत योग्यता से ऊपर हैं।''

("The commission stated that we lay great emphasis on making science an important element in the school curriculum. We, therefore, recommend that science and mathematics should be taught on a compulsory basis to all pupils as a part of general education during the first ten years of schooling. In addition, there should be provision of special courses in these subject at the secondary stage, for students of more than average ability)

कोठारी कमीशन ने निम्नलिखित सुझाव दिए–

1. कक्षा एक से दस तक विज्ञान और गणित की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए।
2. प्रारम्भिक कक्षाओ ंमें विज्ञान की शिक्षा विद्यार्थियों के पर्यावरण से सम्बन्धित होनी चाहिए।
3. प्राइमरी की उच्च कक्षाओं में ज्ञान–प्राप्ति और तर्कसंगत चिन्तन पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
4. प्राइमरी कक्षाओं के लिए विज्ञान–कक्ष और विज्ञान प्रयोगशाला की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
5. निम्न प्राइमरी स्तर पर विज्ञान–शिक्षण बौद्धिक नियन्त्रण के उद्देश्य से दिया जाए। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं जीव विज्ञान के नवीन संप्रत्ययों पर बल दिया जाए और प्रयोगात्मक कार्य द्वारा शिक्षा दी जाए।

6. विज्ञान–शिक्षण नवीनतम विधियों से किया जाए और विद्यार्थियों में अन्वेषण प्रवति का विकास किया जाए।
7. ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान को कृषि से और नगरीय क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध किया जाए।
8. विज्ञान–शिक्षण के साथ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक परम्पराओं को भी उचित महत्व दिया जाए।
9. उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विज्ञान एवं गणित के स्नातकोत्तर पाठ्य विषयों के स्तर का उन्नयन एवं इस स्तर पर छात्रों की संख्या में वद्धि की जाए।
10. विश्वविद्यालय स्तर पर अन्वेषण हेतु विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की जाए।

1.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं विज्ञान शिक्षण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति संसद द्वारा 1986 में मान्यकृत हुई और जिसे 1992 में सुधारा गया, ने विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान को आवश्यक विषय घोषित किया है। इस शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षण के महत्व को निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित किया गया है–

1. विज्ञान शिक्षा को सुदढ़ किया जाएगा ताकि बच्चों में जिज्ञासा की भावना, सजनात्मकता, वस्तुनिष्ठ प्रश्न करने का साहस और सौन्दर्य बोध जैसी योग्यताएं और मूल्य विकसित हो सकें।
2. विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रमों को इस प्रकार बनाया जाएगा कि उनसे विद्यार्थियों में समस्याओं को सुलझाने और निर्णय लेने की योग्यता उत्पन्न हो सके और वे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग तथा जीवन के अन्य पहलूओं के साथ विज्ञान के सम्बन्ध को समझ सकें। विज्ञान शिक्षा के अत्यधिक प्रसार हेतु वे सारे प्रयास किए जाएंगे जोकि अब तक औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर रहे हैं।

राष्ट्रीय नीति की सिफारिशों को दष्टिगत करते हुए भारत सरकार ने उनको करने हेतु कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उनका विस्तत वर्णन इस प्रकार है–

कार्यान्वित रिपोर्ट
(Implementation Report)

I. प्रो० यशपाल, पूर्व सभापति, UGC के सभापतित्य के अन्तर्गत एक कमेटी का गठन किया गया जो विज्ञान शिक्षा के विकास हेतु कार्यक्रम को लागू करने से सम्बन्धित थी। इस कमेटी ने अध्यापकों को उचित रूप से प्रेरित करने हेतु आवश्यकता पर बल दिया ताकि वे अपनी भूमिका भली भांति निभा सके। स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के सुधार हेतु एक विस्तत रूप रेखा तैयार की गई जिसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–
    1. 90,000 अन्य प्राईमरी स्कूलों को वैज्ञानिक यन्त्रों का एक बैग (Science Kits) प्रदान करना।
    2. रु० 22,500 सैकेण्डरी एवं उच्च सैकेण्डरी स्कूलों को एक प्रयोगशाला और विज्ञान के अध्यापकों को वैज्ञानिक उपकरण प्रदान करने में सहायता दी जाएगी।
    3. प्रत्येक स्कूल में कुल उपकरणों की कीमत रु० 75,000 लगाई गई है।
    4. प्रत्येक सैकेण्डरी/उच्च स्तरी स्कूल को 500 विज्ञान पुस्तकों को रखने हेतु रु० 40,000 सैकेण्डरी या उच्च स्तरी स्कूलों को 15,000 की राशि प्रदान करने का निश्चय किया गया।
    5. प्रत्येक राज्य में एक शैक्षणिक संस्थान अथवा किसी स्वैच्छिक संस्था को विज्ञान शिक्षकों को सहायता के लिए स्त्रोत केन्द्र घोषित करना। प्रत्येक स्त्रोत केन्द्र (Rexource Centre) को एक लाख रुपये की राशि दी जाएगी।
    6. उच्च शैक्षिक सेवाकालीन प्रशिक्षण का आयोजन करना। इसी प्रकार सैकेण्डरी शिक्षा प्रशिक्षण कॉलेजों में तथा DIET में विभिन्न कोर्सों के रूप में सेवाकालीन प्रशिक्षण का आयोजन करना।
    7. स्वैच्छिक संस्थानों (Voluntary Organisatins) को वैज्ञानिक व्यवहार तथा वैज्ञानिक शिक्षा को प्रेरित करने के लिए विशेषज्ञ होने पर 100 प्रतिशत के आधार पर सहायता प्रदान करना।

इस रूपरेखा को क्रियान्वित करने हेतु निम्न प्रकार के कदम उठाए गए हैं–

(i) NCERT द्वारा उच्च प्राईमरी स्तर के लिए कार्यशील वैज्ञानिक यन्त्रों का एक बैग (Kit) बनाया गया है जिसका मूल्य 1200 रुपये है।

(ii) NCERT ने राज्यों को मार्गदर्शिका के रूप में अनुमोदित पुस्तकों की एक सूची तैयार की है और यह सभी राज्यों को रूपरेखा सहित भेज दी गई है। ये पुस्तकें अंग्रेजी तथा संबंधित क्षेत्रीय भाषा दोनों में होगी।

(iii) NCERT ने विशिष्टीकरण के साथ उपकरणों की एक सूची तैयार की है।

(II) यह रूपरेखा सरकार द्वारा मान्यकृत है और जनवरी 1988 में सभी राज्य सरकारों तथा प्रशासनों में घुमाई गई है। यही नहीं, राज्यों से इस संबंध में उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया प्राप्त हुई हैं और यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि इस योजना के अन्तर्गत उच्चतम सहयोग राज्यों को दिया जाएगा।

(III) 17 राज्यों की लगभग 27 करोड़ की राशि केन्द्रीय सहायता के रूप में दी जाएगी। यह सहायता 18,604 उच्च प्राईमारी स्कूलों को जिन्हें वैज्ञानिक उपकरणों के बैग दिए जाएंगे; 7093 सैकेण्डरी तथा उच्च सैकेण्डरी स्कूलों को जिनकी प्रयोगशालाओं को उपकरणों के संबंध में विशिष्ट स्तर पर लाया जाएगा; 7483 सैकेण्डरी तथा उच्च सैकेण्डरी स्कूलों को जिन्हें विज्ञान एवं गणित संबंधी 500 पुस्तकों को ग्रहण करने तथा लाइब्रेरी सुधारने हेतु अवसर दिए जाएंगे, प्रदान की जाएगी। इस योजना के अन्तर्गत दिया गया अनुदान सौ प्रतिशत के आधार पर होगा। पुस्तकालय में पुस्तकें रखने के लिए अनुमोदित पुस्तकों की सूची तैयार करके राज्यों को प्रदान कर दी गई है और यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि वे इस सूची (जो कि अंग्रेजी में है) की उपयुक्त पुस्तकों के शीर्षकों को क्षेत्रीय भाषा में परिवर्तित कर तैयार करें ताकि पुस्तकालय को क्षेत्रीय भाषा में नवीन पुस्तकों का समान क्रम प्राप्त हो सके। उच्च प्राईमरी स्कूलों के लिए NCERT ने एक मिश्रित तथा कार्यशील वैज्ञानिक उपकरणों का एक बैग तैयार किया है परन्तु राज्यों द्वारा अपना वैज्ञानिक बैग भी निर्मित किया गया है। इसी प्रकार, प्रयोगशाला उपकरणों के लिए NCERT द्वारा व्यक्तिगत यन्त्रों के लिए विशिष्टीकरण के साथ एक सूची तैयार की गई और राज्यों को प्रदान की गई परन्तु वे राज्य अपनी प्रयोगशालाओं हेतु उपकरण ले सकते हैं उस सूची की सहायता से जो राज्य बोर्ड ने तैयार की है। सभी राज्यों को विज्ञान तथा गणित के शिक्षकों के प्रशिक्षण के एक विशाल कार्यक्रम हेतु शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेजों में ग्रीष्मकालीन संस्थानों तथा सेवाकालीन कोर्स के आयोजन के लिए पर्याप्त सहायता दी जाएगी। प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए राज्य सरकार NCERT से सलाह मशवरे के पश्चात विशिष्ट प्रशिक्षण कोर्स जिनमें वैज्ञानिक व्यवहार एवं दष्टिकोण को विकास करने के तत्व भी सम्मिलित हैं, को विकसित करने हेतु प्रयासरत हैं।

1.4 भौतिक विज्ञान का पाठ्यक्रम में स्थान

विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में बहुत लंबी अवधि तक समन्वित दष्टिकोण को मान्यता मिलती रही है। इसीलिए विज्ञान विषय को साधारण विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता रहा है। विज्ञान के विभिन्न उपविषयों से सामग्री ले कर साधारण विज्ञान विषय का संगठन किया जाता रहा है। परन्तु पिछले कुछ दशकों में हुई वैज्ञानिक प्रगति और ज्ञान के विस्तत भण्डार की खोजसे इस बात को बल मिला है कि समन्वित दष्टिकोण के स्थान पर विज्ञान विषय की शाखाओं का विशिष्ट ज्ञान करवाया जाए। इसी आधार पर आज विद्यालयों में विज्ञान से सम्बन्धित उपविषयों को अलग–अलग बांटकर पढ़ाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर भौतिक विज्ञान एवं जीव विज्ञान को अनिवार्य विषय के रूप में एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। इस प्रकार पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

1.5 भौतिक विज्ञान शिक्षण का महत्व

विद्यालय पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान को सम्मिलित करने के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त विज्ञान के निम्नलिखित उपयोगी मूल्य हैं जो आधुनिक संसार में सफल एवं सन्तुष्ट जीवनयापन के लिए आवश्यक हैं–

1.5.1. ***बौद्धिक मूल्य (Intellectual Value):*** विज्ञान व्यक्ति की मानसिक शक्तियों के पूर्ण विकास में सहायता प्रदान करता है। यह व्यक्ति को विचार और तर्क करने की विधियों से परिचित करवाता है। यह हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करता है और सत्य की खोज की ओर प्रेरित करता है। विज्ञान व्यक्ति की कल्पना–शक्ति, निरीक्षण–शक्ति, अन्वेषण–शक्ति, एकाग्रता, चिन्तनशीलता एवं मौलिकता आदि मानसिक शक्तियों का समुचित विकास करता है। विज्ञान संकीर्णता और रूढ़िवादिता की अपेक्षा तथ्यों और प्रयोगों के विश्लेषण पर आधारित सत्य पर बल देता है। विज्ञान व्यक्ति को सही और गलत में भेद करना, सत्य को खोजना, तर्क करना, कल्पना करना और कल्पना को वास्तविकता में बदलने के लिए प्रयोग करना सिखाता है। क्या, क्यों, कैसे, कितना आदि से संबंधित प्रश्नों के समाधान ढूंढ़ने के लिए कुशाग्र बुद्धि एवं प्रशिक्षित मस्तिष्क का होना आवश्यक है और ऐसा विज्ञान की सहायता से सही संभव है।

1.5.2. ***सांस्कृतिक मूल्य (Cultural Value):*** विज्ञान का सांस्कृतिक महत्व भी है। संस्कृति से अभिप्राय है–किसी समाज या राष्ट्र की संपूर्ण जीवन पद्धति। ज्ञान, परम्पराएं, रीति–रिवाज, नैतिकताएं, कानून, पूजा–पद्धति, कला, दर्शन, साहित्य एवं लोगों की विचारधारा या दर्शन–ये सभी राष्ट्र की संस्कृति में सम्मिलित हैं। विज्ञान हमारी सामाजिक परम्परा का एक विशिष्ट अंग है। इसका अपना ही साहित्य है और अपना ही रोमांच है। वैज्ञानिक आविष्कारों की कहानी, वैज्ञानिकों के प्रेरणादायक जीवन वत्तांत तथा वैज्ञानिक उन्नति का इतिहास हमें मानव संस्कृति से परिचित करवाता है। विज्ञान का अध्ययन हमें सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित ही नहीं करवाता अपितु इसे संरक्षित रखने एवं अगली पीढ़ी तक पहुंचाने में भी योगदान देता है। विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली नई खोजें संस्कृति के विकास में सहायता प्रदान करती है। उदाहरण–उपग्रह संचार माध्यम आज हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग बन गए हैं। आज हम केबल टी०वी०, इंटरनेट, मोबाइल फोन आदि के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, विज्ञान शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने पर भी बल देती है। उदाहरण–अणु शक्ति का प्रयोग संस्कृति के विकास एवं संरक्षण के लिए किया जाना चाहिए न कि विध वंस के लिए।

1.5.3. ***सौन्दर्यात्मक मूल्य (Aesthetic Value):*** विज्ञान के संप्रत्ययों से अपरिचित व्यक्तियों के लिए विज्ञान एक रसहीन, जटिल एवं रूखा विषय है परन्तु विज्ञान प्रेमियों के लिए विज्ञान सुन्दरता है, कला है और सुख प्राप्ति का एक साधान है। विज्ञान प्रकृति के रहस्यों की खोज करता है और प्रकृति की प्रत्येक वस्तु के अंतर्निहित सौन्दर्य से हमें परिचित करवाता है। विज्ञान के अध्ययन में सफलता मिलने के बाद असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। जब आर्कमिडीज ने तैरती वस्तुओं के सिद्धान्त की खोज की तो इस आनन्द ने उसे उसका नंगापन भुला दिया और उसने Eureka! Eureka! (I got it!) कहते हुए स्नानागार से बाहर आकर अपनी खुशी प्रदर्शित की। इसी प्रकार जब ग्राहम बैल ने टेलिफोन के एक सिरे पर कहा–"Watson, come here, I want you." वाटसन ने सुना और ग्राहम बैल के कमरे में जाकर खुशी से जोर से चिल्लाया, ''मैंनें तुम्हारे शब्द बिल्कुल साफ सुने हैं।''

मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासु है। विज्ञान साहित्य की खोज करके मनुष्य की जिज्ञासा को शांत करता है, उसके प्रश्नों के उत्तर देता है। सूरज रात को कहां चला जाता है? पहले मुर्गी पैदा हुई या अण्डा?, वर्षा कैसे होती है? ऋतुएं कैसे बनती हैं? टेलीविजन, फ्रिज आदि कैसे कार्य करते हैं? आदि प्रश्नों के उत्तर विज्ञान की शिक्षा द्वारा ही दिए जा सकते हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अपने मन में उठने वाले प्रश्नों के कारण ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है और सत्य की खोज में आनन्द प्राप्त करता है। कहा भी गया है–सत्यं शिवं सुन्दरम्।

विज्ञान एक कला भी है। प्रत्येक वैज्ञानिक एक कलाकार है। कला और विज्ञान में कोई आधारभूत अंतर नहीं होता। एक कलाकार सोच–समझकर एवं जान–बूझकर सौन्दर्य केन्द्रित रहता है जबकि एक वैज्ञानिक तर्क या सत्यता के द्वारा सुन्दरता को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

इसके अतिरिक्त विज्ञान अवकाश के समय का सदुपयोग करने एवं मनोरंजन में सहायक है। सिनेमा, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, कम्प्यूटर, वीडियो गेम, टेलिफोन, समाचार–पत्र, पत्रिकाएं विभिन्न रूचियों जैसे–बागवानी, फोटोग्राफी, नेट सर्फिंग, इन्टरनेट चैट, वैज्ञानिक खिलौने आदि के विकास में भी सहायक है।

1.5.4. ***मनोवैज्ञानिक मूल्य (Psychological Value):*** विज्ञान की शिक्षा मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण से भी उपयोगी है। 'करके सीखना' (Learning by doing), ठोस तथा सजीव नमूनों के निरीक्षण द्वारा सीखना आदि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को विज्ञान शिक्षण में प्रयोग किया जाता है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक एवं निर्माणात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है। विज्ञान व्यक्ति की जिज्ञासा को शांत करता है और उसकी स्वाभाविक रूचियों के विकास में सहायता प्रदान करता है। विभिन्न प्रयोगों को करने एवं परिणाम निकालने से विद्यार्थियों की अन्वेषणात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है और उन्हे आत्म–तुष्टि प्राप्त होती है। विज्ञान संग्रहालय द्वारा उनकी संग्रह करने की प्रवत्ति को उचित दिशा प्राप्त होती है।

1.5.5. ***सामाजिक मूल्य (Social Value):*** विज्ञान शिक्षा का सामाजिक महत्व है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। समाज में रहकर वह दूसरे व्यक्तियों के साथ अंतक्रिया करता है, समाज के नियमों का पालन करता है और समाज की उन्नति में अपना योगदान करता है। विज्ञान व्यक्ति को इस दिशा में उपयोगी ज्ञान प्रदान करता है। शरीर को स्वस्थ कैसे रखें? पर्यावरण की स्वच्छता–क्यों और कैसे? अपशिष्ट पदार्थों का निपटारा कैसे करें और उनसे ऊर्जा किस प्रकार प्राप्त करें? प्रदूषण रोकने के लिए क्या उपाय करने चाहिए? आदि सभी बातों की जानकारी विज्ञान की शिक्षा द्वारा ही संभव है। यदि हम सभ्यता के विकास के क्रम का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि जब से मनुष्य के मस्तिष्क में विज्ञान का अंकुर फूटा तब से उसमें सामाजिक भावना का जन्म हुआ। आदि मानव द्वारा घटनावश की गई आग की खोज पहली वैज्ञानिक खोज कही जा सकती है। इसके पश्चात औजारों के निर्माण, खेती की खोज और काम के बंटवारे की भावना ने सामाजिक जीवन के विकास पर बल दिया। आधुनिक काल में हुई वैज्ञानिक उन्नति ने दूरियों को कम किया है और हम केवल भारत को ही नहीं पूरे विश्व को एक समाज के रूप में देखते हैं। विज्ञान–शिक्षा व्यक्ति को विज्ञान के नई आविष्कारों एवं नई तकनीकों से संबंधित सैद्धान्तिक जानकारी प्रदान करती है और व्यावहारिक रूप में उसे प्रयोग करना भी सिखाती है। विज्ञान शिक्षा व्यक्तियों को विश्व के किसी भी भाग में होने वाले घटनाक्रमों से परिचित करवाती है और उन्हें स्वस्थ सामाजिक जीवन भी व्यतीत करने के लिए प्रेरित करती है। विज्ञान–शिक्षा व्यक्ति एवं समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है।

1.5.6. ***नैतिक मूल्य (Moral Value):*** नैतिक मूल्यों से अभिप्राय उन गुणों एवं सिद्धांतों से है जो व्यक्ति में मानवीयता का समावेश करें जिससे उसके चरित्र का निर्माण होता है। इनमें ईमानदारी, सत्यता, नैतिक स्थिरता, आत्म नियन्त्रण, आत्म निष्ठा, कर्मशीलता, करुणा, सहानुभूति, दया, पवित्रता, सादा जीवन उच्च विचार, विनम्रता, आत्म–संयम, अच्छा आचरण आदि सम्मिलित हैं। विज्ञान अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को दूर करता है और सत्य एवं तर्क की शिक्षा पर बल देता है। विज्ञान में व्यक्तिगत मान्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं होता। एक वैज्ञानिक तटस्थ भाव से सत्य का समर्थन करता है। वह निष्ठावान, कर्मशील एवं ईमानदार होता है। वह निरीक्षण एवं परीक्षण में सत्यता का निश्चय करके अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। वह धोखाधड़ी, असत्य तथा अन्य बुराइयों से दूर रहता है। इस प्रकार विज्ञान एवं विज्ञान शिक्षा व्यक्ति में नैतिकता की भावना के विकास में सहायता करते हैं।

1.5.7. ***व्यावसायिक मूल्य (Vocational Value):*** आधुनिक युग विज्ञान, तकनीकी एवं कम्प्यूटर का युग है। प्रत्येक व्यवसाय–बैंक, टेलिफोन, बिजली, डेरी फार्मिंग, कम्प्यूटर, इंजीनियरिंग, उद्योग, भवन निर्माण, ऊर्जा परियोजनाएं अथवा पेट्रोलियम पदार्थों का दोहन आदि किसी न किसी रूप में विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। विज्ञान व्यक्ति एवं बालक को सैद्धान्तिक एवं तकनीकी ज्ञान प्रदान करता है। इस ज्ञान की सहायता से वह जीवन में व्यवसाय का चुनाव अपनी क्षमताओं के अनुरूप कर सकता है। विज्ञान के सूक्ष्म उपकरणों को चलाने के लिए जिन कौशलों की आवश्यकता होती है, उनका विकास विज्ञान–शिक्षा द्वारा ही संभव है। इसके अतिरिक्त विज्ञान अध्ययन में जिन रुचियों का विकास होता है, उन्हें व्यवसाय के रूप में अपना कर व्यक्ति स्वरोजगार की ओर उन्मुख हो सकता है। इस प्रकार विज्ञान का व्यावसायिक महत्व है।

1.5.8. ***व्यावहारिक मूल्य (Practical Value):*** वर्तमान युग विज्ञान का युग है। हमारे चारों ओर उपस्थित प्रत्येक वस्तु किसी न किसी रूप में विज्ञान से सम्बन्धित है। विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को किसी न किसी रूप में अपनी देन से अनुगहीत किया है। विज्ञान प्रदत्त विद्युत आविष्कारों ने जीवन को आलोकमय बना दिया है।

आज मनुष्य ऋतुओं के प्रकोप से घबराता नहीं है। वह भयंकर गर्मी में घर को आसानी से ठंडा और ठिठुरती सर्दी में घर को सरलता से गर्म रख सकता है। उसे बिजली का बटन मात्र दबाने की आवश्यकता होती है कि पंखा, कूलर, हीटर, गीजर, कम्प्यूटर, रोबोट आदि उसकी इच्छा के अनुकूल काम करने लगते हैं। विद्युत और उसके आविष्कारों ने मानव जीवन को केवल प्रकाशित ही नहीं किया है, उसे सुख–सम्पन्न भी बनाया है और उसके व्यवसाय को भी बढ़ाया है।

यातायात और संचार के नये साधनों के आविष्कारों से विज्ञान ने दुनिया को निकट ला दियाहै। आज हमारे लिए दूसरे देश, उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव नहीं रहे, वे इन साधनों के कारण सिमट कर निकट आ गए हैं। रेल, मोटर, हवाई जहाज और समुद्री जहाजों ने यात्रा को सरल बना दिया है। दूरभाष, दूरदर्शन, इंटरनेट, उपग्रह फोन आदि संचार साधनों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' की कल्पना को साकार कर दिया है। कृषि और उद्योग के क्षेत्र में वैज्ञानिक आविष्कारों ने उत्पादन में आशातीत वद्धि की है जिससे सभी देशों की आर्थिक स्थिति में सुधार आ रहा है।

विज्ञान ने मनुष्य की चिन्तन प्रणाली को भी प्रभावित किया है। इसने मनुष्य को बौद्धिक विकास प्रदान किया है और वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति दी है। इस प्रकार विज्ञान ने मनुष्य के मन में युगों के अंधविश्वासों, दकियानूसी विचारों, भय और अज्ञानता को दूर किया है और उसे यथार्थ एवं संतुलित जीवन जीने योग्य बनया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आज हमारा जीवन विज्ञानमय होकर पूर्ण रूप से विज्ञान पर आश्रित हो गया है और इसीलिए विज्ञान अध्ययन का विशिष्ट महत्व है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) विज्ञान शिक्षण के सामाजिक एवं व्यवहारिक मूल्यों का वर्णन करो।

(ii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षण से सम्बन्धित किन बिन्दुओं पर बल दिया गया है?

1.6 सारांश

भारत में विज्ञान शिक्षण आदि काल से ही चला आ रहा है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि विज्ञान शिक्षण के महत्व को समझते हुए हमारे पूर्वजों ने इसके शिक्षण की व्यवस्था की थी। मुगलकाल एवं ब्रिटिशकाल में हमारी शिक्षा व्यवस्था को अत्यधिक क्षति पहुंची और इन कालों में विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। आधुनिक काल में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस क्षेत्र में विशेष प्रयत्न किये गए हैं। इन में मुदालियर कमीशन, अखिल भारतीय विज्ञान गोष्ठी, कोठारी कमीशन एवं नई शिक्षा नीति (1986) द्वारा दिये गए सुझाव प्रमुख है।

विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में लम्बे समय तक एकीकृत दष्टिकोण को मान्यता दी गई और इसे 'साधारण विज्ञान' के रूप में पढ़ाया जाता रहा। विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में हुई उन्नति के फलस्वरूप विशिष्टीकरण के महत्व को समझते हुए विज्ञान को विभिन्न अंगों जैसे भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान आदि के रूप में पढ़ाया जाने लगा है।

अपनी प्रगति जांचिए–मॉडल उत्तर

1. (i) कृपया 1.5 में देखें

   (ii) कृपया 1.3 में देखें

1.7 मुख्य शब्द

भौतिक विज्ञान–वह विज्ञान जो पदार्थों एवं शक्ति स्त्रोतों के गुणों का अध्ययन करने, उनका संश्लेषण या विश्लेषण कर उनकी रचना और पारस्परिक प्रभावों से अवगत कराता है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

मंगल, एस०के० 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली

कोहली, वि०के० 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं', विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला

इकाई-I

अध्याय-2: माध्यमिक स्तर पर भौतिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Teaching Physical Science at Secondary Level)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- भौतिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को अंतर कर सकें।
- तारा देवी सम्मेलन में निर्धारित विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों की सूची बना सकें।
- कोठारी कमीशन द्वारा निर्धारित विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य बता सकें।
- वर्तमान संदर्भ में भौतिक विज्ञान विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 लक्ष्य एवं उद्देश्य
2.3 तारा देवी सम्मेलन एवं विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य
2.4 कोठारी कमीशन एवं विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य
2.5 वर्तमान संदर्भ में भौतिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य
2.6 सारांश
मॉडल उत्तर
2.7 मुख्य शब्द
2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व लक्ष्य या उद्देश्य निर्धारित करने पड़ते हैं जिससे कार्य को उचित दिशा मिल सके और कार्य में किए गए प्रयत्न सार्थक हो सके। यही बात शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू होती है। विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा देने के कुछ लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक अपने शिक्षण उद्देश्य एवं अनुदेशात्मक उद्देश्य निर्धारित करता है और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए वह शिक्षण व्यूह–रचनाओं (Teaching Strategies) एवं शिक्षण–युक्तियों का प्रयोग करता है। शिक्षण प्रक्रिया के अन्त में अध्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति को आंकने के लिए मूल्यांकन करता है। भौतिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का वर्णन करने से पूर्व लक्ष्यों और उद्देश्यों में अंतर जानना आवश्यक है।

2.2 लक्ष्य एवं उद्देश्य

लक्ष्य (Aim or Goal) एक ऐसा शब्द है जिसमें विशिष्टता की कमी हेती है। शैक्षिक लक्ष्यों से अभिप्राय व्यापक लक्ष्यों से है जो शिक्षा द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। कई बार ये उच्च आदर्शों का रूप धारण कर लेते हैं। ये राष्ट्र एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं। इनका क्षेत्र असीमित होता है। जैसे–अज्ञानता का उन्मूलन, मोक्ष की प्राप्ति आदि। लक्ष्य प्रायः अस्पष्ट एवं अनिश्चित होते हैं इसलिए ये शिक्षण कार्य में शिक्षक को विशेष सहायता नहीं प्रदान करते और शिक्षक अपनी क्रियाओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं कर पाता। वह अपनी शिक्षण विधियों और युक्तियों के बारे में असमंजस में रहता है। वर्तमान कक्षीय स्थितियों एवं शैक्षिक संरचना में शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करना लगभग असंभव प्रतीत होता है।

उद्देश्य से अभिप्राय उस बिन्दु अथवा अन्त से है जिसके लिए कोई कार्य किया जाता है। यह एक नियोजित परिवर्तन है जो उस क्रिया द्वारा लाया जाता है जिसे हम करने जा रहे हैं। शैक्षिक उद्देश्यों का सम्बन्ध उस पाठ्य वस्तु तथा मानसिक प्रक्रिया से है जो हम शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में विकसित करना चाहते हैं। उद्देश्य निश्चित एवं विशिष्ट होते हैं। उद्देश्यों का क्षेत्र सीमित होता है। ये संकुचित, सरल एवं स्पष्ट होते हैं और इन्हें एक निश्चित समय में प्राप्त किया जा सकता है। ये शिक्षक को व्यूह–रचनाओं और युक्तियों के चयन में दिशा प्रदान करते हैं तथा उसके कार्य में निश्चितता की स्थिति लाने में सहायक होते हैं। उद्देश्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आधार के रूप में कार्य करते हैं।

शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप बदलते रहते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समय–समय पर भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विज्ञान–शिक्षण के लक्ष्य एवं निर्धारित करने के प्रयत्न किए गए है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

2.3 तारा देवी सम्मेलन एवं विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य

तारादेवी (शिमला) में आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान–शिक्षण सम्मेलन (1956) में विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर विज्ञान–शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए–

2.3.1 प्राथमिक स्तर (Primary Level)

1. प्रकृति तथा भौतिक एवं सामाजिक परिवेश में रूचि जाग्रत करना, प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा प्रकृति और उसके साधनों को सुरक्षित रखने की आदत का निर्माण करना।
2. निरीक्षण, खोज, वर्गीकरण तथा विधिवत चिन्तन की आदतों का विकास करना।
3. बालक की प्रयोगात्मक, रचनात्मक एवं अन्वेषणात्मक शक्तियों का विकास करना।
4. स्वच्छता और संयम की आदतों का विकास करना।
5. स्वस्थ जीवनयापन की आदतों का निर्माण करना।

2.3.2 मिडल-स्कूल स्तर (Middle School Level)

उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त माध्यमिक स्तर पर निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मिलित करना चाहिएः

6. प्रकृति तथा विज्ञान से संबंधित सूचनाएं प्रदान करना जो साधारण विज्ञान पाठ्यक्रम का आधार बनें।
7. सामान्यीकरण करने तथा दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान में विज्ञान के सामान्य नियमों को लागू करने की योग्यता का विकास करना।
8. विज्ञान संबंधी मनोरंजन के प्रति अभिरूचि का विकास करना।
9. वैज्ञानिकों के जीवन चरित्र एवं आविष्कारों की कहानियों द्वारा विद्यार्थियों को प्रेरित करना।
10. मानव जीवन पर विज्ञान के प्रभाव को समझना।

2.3.3 उच्च एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर (High and Senior Secondary Level)

1. विद्यार्थियों को इस संसार से परिचित कराना, जिसमें वे रहते हैं, तथा उन्हें समाज पर विज्ञान के प्रभाव से अवगत कराना जिससे वे स्वयं को परिवेश के अनुरूप बदल सके।

2. विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि से परिचित कराना और उनमें वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
3. विद्यार्थियों को विज्ञान के ऐतिहासिक पक्ष से अवगत कराना जिससे वे विज्ञान के विकास को समझ सकें।

2.4 कोठारी कमीशन एवं विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य

कोठारी कमीशन (1964-66) के अनुसार विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

2.4.1 ***प्राथमिक स्कूल स्तर (Primary School Level):*** प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भौतिक और जैविक पर्यावरण के मुख्य तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के बारे में उचित ज्ञान पाना होना चाहिए। इन विचारों को स्पष्ट करने के लिए आगमन और निगमन दोनों पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए। लेकिन निगमन या वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर अधिक बल देना चाहिए।

1. बालक को परिवेश से परिचित कराना तथा उसमें प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना।
2. भौतिक और सामाजिक परिवेश में विज्ञान के उपयोगों का परिचय देना।
3. बालक में शारीरिक स्वच्छता तथा स्वस्थ जीवनयापन सम्बन्धी उपयोगी आदतें डालना।
4. बालक की निरीक्षण शक्ति (Observation Power) को विकसित करना।
5. बालकों की अन्वेषणात्मक और रचनात्मक प्रवत्तियों के विकास के लिए अवसर प्रदान करना।
6. वैज्ञानिक भाषा को समझने के लिए रोमन संख्यांक (Numerals) और वर्णमाला (Alphabets) का ज्ञान कराना।
7. व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातों की जानकारी देना।
8. बालकों में स्वच्छ एवं क्रमबद्ध रीति से कार्य करने की आदत डालना।
9. मानचित्र, चार्टों, लेखाचित्र (Graphs) तथा सांख्यिकी तालिकाओं (Statistical tables) आदि को पढ़ने की कुशलता उत्पन्न करना।
10. बालकों को विज्ञान के महान आविष्कारकों की जीवनगाथा और आविष्कारों की कहानी पढ़ने के लिए प्रेरित करना।

2.4.2 ***उच्च प्राथमिक स्तर (Middle or Higher Primary Stage):*** पांचवीं से लेकर सातवीं कक्षा तक विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं।

1. छात्रों को अपने परिवेश में व्याप्त विज्ञान के प्रभाव को समझने में सहायता करना और उनमें वैज्ञानिक अभिरुचि को विकसित करना।
2. छात्रों को विज्ञान सम्बन्धी मूलभूत तथ्यों, नियमों और सिद्धान्तों का ज्ञान कराना।
3. विद्यार्थियों में तर्कपूर्ण और सुनियोजित ढंग से सोचने की आदत डालना।
4. विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवत्ति (Attitude) का विकास करना।
5. विज्ञान के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों के मस्तिष्क को अनुशासित (Disciplined) करने की अपेक्षा करना।
6. छात्रों में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर उचित निष्कर्ष निकालने की योग्यता और आदत विकसित करना।
7. छात्रों को आगामी कक्षाओं में विज्ञान के अध्ययन के लिये आवश्यक पष्ठभूमि प्रदान करना।
8. छात्रों को विज्ञान के विकास के ऐतिहासिक क्रम से परिचित कराकर विज्ञान की प्रगति और विकास को समझने में मदद करना।

2.4.3 ***निम्न माध्यमिक स्तर (Lower Secondary Stage):*** आठवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं–

1. विद्यार्थियों को विषय के (पिछली कक्षाओं से अधिक) गहन एवं सूक्ष्म ज्ञान की जानकारी देना।

2. उनमें प्रयोग सम्बन्धी कुशलता उत्पन्न कर विज्ञान के उपयोगों को समझने की योग्यता विकसित करना।
3. विद्यार्थियों की अन्वेषणात्मक एचं रचनात्मक शक्तियों को पनपने के उचित अवसर प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को विज्ञान के विशेष उच्च पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिये आधार प्रदान करना।
5. विद्यार्थियों को दैनिक जीवन में आवश्यक सभी प्रकार के वैज्ञानिक ज्ञान एवं कौशल से युक्त करना।
6. विज्ञान की रोचक क्रियाओं को रुचिकर क्रियाओं (Hobbies) के रूप में अपनाने की आदत डालना।
7. छात्रों में विज्ञान के योगदान के प्रति अपूर्व आस्था उत्पन्न करना।

2.4.4 ***उच्च माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Stage):*** 11वीं और 12वीं कक्षा में विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं–

1. विज्ञान के ज्ञान के विशेष पक्षों (Specializations) में प्रवीणता अर्जित करना।
2. विद्यार्थियों को अपने–अपने विशेष विषयों (Specializations) की नवीन धारणाओं और विचारों से परिचित कराते रहना।
3. विज्ञान की पढ़ाई द्वारा विद्यार्थियों को किसी विशेष व्यवसाय अथवा उससे सम्बन्धित पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिये तैयार करना।
4. विद्यार्थियों को अपने चुने हुये विज्ञान के विशेष विषयों का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन और मनन करने के लिए प्रेरित करना।
5. संदर्भ ग्रन्थों तथा विशेषज्ञ पत्रिकाओं आदि का अध्ययन कर नवीनतम वैज्ञानिक खोजों को समझने और स्वयं कुछ ऐसा कर सकने की प्रेरणा और अवसर प्रदान करना।

2.5 वर्तमान संदर्भ में भौतिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य

पिछले कुछ दशकों में हुई वैज्ञानिक उन्नति एवं शैक्षिक तकनीकी के विकास से विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों में लगातार परिवर्तन आता रहा है। आधुनिक समय में हमारे विद्यालयों में भौतिक विज्ञान–शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए।

1. ज्ञान (Knowledge)
2. बोध/समझ (Understanding)
3. प्रयोग (Application)
4. कौशल (Skills)
5. वैज्ञानिक दष्टिकोण (Scientific Attitude)
6. वैज्ञानिक रुचि (Scientific Interest)
7. प्रशंसात्मक क्षमताएं (Appreciation)

2.5.1. ***ज्ञान उद्देश्यः*** ज्ञान किसी भी विषय की शिक्षा का प्रथम एवं आधारभूत उद्देश्य होता है। विज्ञान के क्षेत्र में भी ज्ञान–प्राप्ति का उचित महत्व है क्योंकि ज्ञान के आधार पर ही ज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित उच्चतर उद्देश्यों जैसे–समझ, प्रयोग, संश्लेषण, विश्लेषण तथा मूल्यांकन की प्राप्ति की जा सकती है। ज्ञान उद्देश्य में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित होते हैं–

(i) वैज्ञानिक नामावली (Scientific terms), शब्द संकेत (Symbols) सूत्रों (Formulae) आदि की जानकारी प्राप्त करके वैज्ञानिक भाषा को सीखना।

(ii) भौतिक–विज्ञान सम्बन्धी परिभाषाओं, नियमों, तथ्यों, संप्रत्ययों और प्रक्रियाओं को पहचानना।

(iii) अपने आसपास के परिवेश से सम्बन्धित आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी होना।

(iv) प्रकृति के रहस्यों एवं प्राकृतिक घटनाओं की जानकारी होना।

(v) वैज्ञानिक साहित्य से सम्बन्धित मूलभूत तथ्यों की जानकारी होना।

(vi) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक शाखाओं के परस्पर संबंध की जानकारी होना।

(vii) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित ज्ञान होना।

(viii) वैज्ञानिक उन्नति तथा समाज पर इसके प्रभाव से अवगत होना।

(ix) भौतिक विज्ञान संबंधी परिभाषाओं, तथ्यों, संप्रत्ययों, नियमों और प्रक्रियाओं का प्रत्यास्मरण करना।

2.5.2. ***समझ उद्देश्यः*** किसी विषय का ज्ञान समझ में तब परिवर्तित होता है जब उसे सही परिपेक्ष्य में पढ़ाया जाता है। भौतिक विज्ञान के समझ उद्देश्य विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्यताएं विकसित करने से संबंधित होते हैं–

(i) भौतिक विज्ञान के संप्रत्ययों/नियमों/प्रक्रियाओं आदि की दष्टान्त सहित व्याख्या करना।

(ii) प्रतीकों, फार्मूलों का शब्द संकेतों में अनुवाद करना।

(iii) भौतिक विज्ञान के तथ्यों और सिद्धान्तों में भेद करना।

(iv) चार्ट, ग्राफ, आरेख एवं आंकड़ों की व्याख्या करना।

(v) भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित संप्रत्ययों, पदार्थों आदि का वर्गीकरण करना।

(vi) भौतिक विज्ञान के विभिन्न तथ्यों, संप्रत्ययों, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं आदि के सम्बन्ध को पहचानना।

(vii) भौतिक विज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों आदि की पुष्टि करना।

2.5.3. ***प्रयोग उद्देश्यः*** प्रयोग स्तर के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ज्ञान एवं समझ उद्देश्य आधार के रूप में कार्य करते हैं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी का अपने ज्ञान एवं समझ का उपयोग अपने दैनिक जीवन में, नई एवं अपरिचित परिस्थितियों में कर पाना सम्मिलित होता है।

(i) स्थिति का विश्लेषण करना।

(ii) परिकल्पना का निर्माण एवं परीक्षण करना।

(iii) भौतिक विज्ञान की प्रक्रियाओं, सिद्धान्तों आदि के कारण एवं प्रभाव में सम्बन्ध स्थापित करना।

(iv) भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों का अपने परिवेश को समझने और समस्याओं के समाधान में उपयोग करना।

(v) किसी तथ्य अथवा प्रक्रिया के निरीक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकालना।

(vi) दिये गए प्रदत्तों (data) के आधार पर वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुमान लगाना।

2.5.4. ***कौशल उद्देश्यः*** भौतिक विज्ञान के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों में निम्नलिखित कौशल विकसित किए जा सकते हैं–

I. प्रयोगात्मक कौशल (Experimental Skills)

II. चित्रकला कौशल (Drawing Skills)

III. गणितीय कौशल (Mathematical Skills)

I. प्रयोगात्मक कौशल उद्देश्य–

(i) विद्यार्थियों में उपकरणों को उचित ढंग से रखने की योग्यता का विकास करना। .

(ii) उपकरणों का उचित ढंग से प्रयोग करने योग्य बनाना।

(iii) प्रयोगों को उचित गति, सफाई एवं ठीक से करने की क्षमता का विकास करना।

(iv) उपकरणों एवं सहायक सामग्री का स्वयं निर्माण करने योग्य बनाना।

(v) उपकरणों, यन्त्रों आदि से छोटी–छोटी सम्बन्धित बातों को ढूंढ़ने की क्षमता का विकास करना।

(vi) उचित ढंग से निरीक्षण एवं रिकार्ड करने की योग्यता का विकास करना।

(vii) ईमानदारी से निष्कर्ष निकालने की क्षमता का विकास करना।

II. चित्रकला कौशल उद्देश्य–

(i) विद्यार्थियों को उचित गति से रेखाचित्र, आरेख तथा ग्राफ बनाने योग्य बनाना।

(ii) उपकरणों, यन्त्रों आदि की उचित आकृतियां बनाने की योग्यता का विकास करना।

(iii) आकृतियों पर विधिवत तथा ठीक लेबल लगाने योग्य बनाना।

(iv) उपकरणों, यन्त्रों आदि के सभी भागों का वास्तविक चित्रण करना।

III. गणितीय कौशल उद्देश्य–

(i) विद्यार्थियों में रेखागणितीय चित्रों का निर्माण करने की योग्यता का विकास करना।

(ii) तालिकाओं का निर्माण करना।

(iii) प्रदत्तों/आंकड़ों को चार्ट, ग्राफ, तालिका आदि पर प्रस्तुत करना।

(iv) चिन्ह्, सूत्र आदि का प्रयोग करना।

(v) सांख्यिकी सम्बन्धी ज्ञान का प्रयोग करके परिणाम निकालना।

2.5.5. ***वैज्ञानिक दष्टिकोण सम्बन्धी उद्देश्य (Objectives related to Scientific Attitude):*** वैज्ञानिक दष्टिकोण में उदार–मनोवत्ति (Open Mindedness), शुद्ध ज्ञान की इच्छा, वैज्ञानिक प्रक्रिया में विश्वास आदि गुण सम्मिलित हैं। विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना विज्ञान शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। वैज्ञानिक दष्टिकोण के विकास से अभिप्राय विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्याताओं के विकास से है–

(i) प्रमाणिक ज्ञान से समस्या का समाधान करना।

(ii) प्रमाणिक तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर निर्णय लेना।

(iii) अन्धविश्वासों की अपेक्षा परिणाम की सत्यता को परखने की इच्छा रखना।

(iv) प्रत्येक घटना के कारण को जानने की इच्छा रखना।

(v) अपने निर्णयों पर फिर से विचार करने को तैयार रहना।

(vi) नए विचारों का स्वागत करना–उदार मनोवत्ति।

(vii) किसी भी सुनी व पढ़ी हुई बात को परीक्षण तथा प्रयोग की कसौटी पर जांचने के बाद मानना।

(viii) वैज्ञानिक सामग्री के संकलन में ईमानदारी से काम लेना।

(ix) प्रत्येक कार्य को धैर्यपूर्वक करना।

(x) मानव कल्याण के लिए वैज्ञानिक प्रयोगों का समर्थन करना।

2.5.6. ***रुचि उद्देश्यः*** आज विज्ञान हमारे जीवन एवं परिवेश का एक अभिन्न अंग है। विज्ञान शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में उनके परिवेश के प्रति रुचि जाग्रत की जा सकती है जिससे उनकी जिज्ञासु एवं रचनात्मक प्रवत्तियां विकसित हो सकें।

(i) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन में रुचि उत्पन्न करना।

(ii) दैनिक जीवन में उपयोगी वस्तुओं जैसे–साबुन, सर्फ, मंजन, स्याही आदि के निर्माण में रुचि लेना।

(iii) वैज्ञानिक महत्व के स्थानों के भ्रमण में रुचि रखना।

(iv) वैज्ञानिक खिलौनों, मॉडल, स्वयं–निर्मित उपकरणों आदि के निर्माण में रुचि लेना।

(v) विज्ञान क्लब तथा विज्ञान मेलों में सक्रियता से भाग लेना।

(vi) वैज्ञानिक रूचियां (Scientific Hobbies) अपनाना।

(vii) विज्ञान से सम्बन्धित तर्क–प्रतियोगिताओं (Debates), वाक् प्रतियोगिताओं, सेमिनार आदि में भाग लेना।

(viii) विज्ञान–प्रायोजन पर कार्य करना।

2.5.7. ***प्रशंसात्मक उद्देश्यः*** विज्ञान के इतिहास, आधुनिक आविष्कार, वैज्ञानिकों के जीवन चरित्र एवं कार्यों आदि की शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान शिक्षण के प्रति प्रशंसात्मक दष्टिकोण उत्पन्न किया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्यताओं का विकास किया जा सकता है।

(i) मानव सभ्यता के विकास में भौतिक विज्ञान की देन की सराहना करना।

(ii) भौतिक विज्ञान की प्रकृति पर विजय पाने के साधन के रूप में प्रशंसा करना।

(iii) आधुनिक जीवन में विज्ञान के प्रभावों की सराहना करना।

(iv) वैज्ञानिक आविष्कारों की कहानियों को पढ़कर प्रेरणा प्राप्त करना।

(v) महान वैज्ञानिकों के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना प्रदर्शित करना।

(vi) अपने परिवेश में होने वाली प्रक्रियाओं में निहित वैज्ञानिक नियमों, सिद्धान्तों आदि को जानने में आनन्द अनुभव करना।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में विभेद कीजिए।

(ii) भौतिकविज्ञान शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

2.6 सारांश

किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए यह आवश्यक होता है कि कार्य आरम्भ करने से पूर्व उसके लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित कर लिए जाएं। लक्ष्य व्यापक होते हैं और उद्देश्य एक लक्ष्य विशेष को प्राप्त करने के लिए निर्धारित छोटे पद या बिन्दु होते हैं जिनके लिए कार्य किया जाता है। लक्ष्य व्यापक होते हैं जबकि उद्देश्य संकुचित होते हैं। शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किये जाते हैं। समाज की आवश्यकताओं में समय के अनुसार परिवर्तन आता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही भौतिक विज्ञान शिक्षण के महत्व को समझते हुए विभिन्न सम्मेलनों एवं आयोगों ने विभिन्न लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति पर बल दिया है। आधुनिक संदर्भ में बाल केन्द्रित शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। अतः भौतिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों में विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से संबंधित सात मुख्य लक्ष्यों व उद्देश्यों–ज्ञान, बोध, प्रयोग, कौशल, वैज्ञानिक रुचि, वैज्ञानिक दष्टिकोण एवं प्रशंसात्मक क्षमताओं की पूर्ति को महत्व दिया जा रहा है।

मॉडल उत्तर

(i) लक्ष्य व्यापक, अस्पष्ट व सैद्धान्तिक होते हैं और इन्हें पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सकता। उद्देश्य संकुचित, स्पष्ट, निश्चित व विशिष्ट होते हैं और इन्हें एक निश्चित समय में पूरी तरह प्राप्त किया जा सकता है।

(ii) कृपया 2.5 में देखें

2.7 मुख्य शब्द

लक्ष्य–वह ध्येय जो हमें दिशा प्रदान करे।

उद्देश्य–वह बिन्दु जिसके लिए कार्य किया जाता है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Bloom, B.S. et al 'Taxomomy of Educational Objectives', David Mikey, NewYork

Shukla, R.S. 'Teaching of Science', Laxmi Narayan Publisher, Agra

कोहली, वि०के० 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं', विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला

Sharma, R.C. 'Methods of Teaching Science', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi

इकाई-I

अध्याय-3: ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Bloom's Taxonomy of Educational Objectives)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण को चित्र द्वारा प्रस्तुत कर सकें।

सरंचना:

3.1 प्रस्तावना
3.2 ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्य
3.3 ज्ञानात्मक उद्देश्य
3.4 भावात्मक उद्देश्य
3.5 क्रियात्मक उद्देश्य
3.6 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण
3.7 सारांश
मॉडल उत्तर
3.8 मुख्य शब्द
3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने भौतिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का अध्ययन किया है। शैक्षिक उद्देश्य पाठ्यक्रम के विकास में, अधिगम का स्तर ऊंचा उठाने में, संप्रेषण को सरल बनाने में, अधिगम को प्रभावशाली बनाने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना, किसी भी विषय के शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य होता है। इसके लिए विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों और प्रत्येक पक्ष से जुड़े विभिन्न स्तरों की जानकारी होना आवश्यक है। विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारिण किस प्रकार किया जाना चाहिए? इस अध्याय में हम विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों एवं उनसे सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे।

3.2 ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्य

शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण करने के लिए सर्वप्रथम 1949 में अमेरिकन कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षकों ने एक समिति/टैक्सोनोमी ग्रुप को संगठित किया। इस समिति ने चार वर्षों तक विभिन्न दष्टिकोण लेकर संगोष्ठियाँ आयोजित की और शैक्षिक उद्देश्यों का एक विस्तत वर्गीकण प्रस्तुत किया। इस समिति द्वारा प्रस्तुत 'Taxonomy of

Educational Objectives' के पहले भाग के सम्पादक शिकागो विश्वविद्यालय के डॉ० बी०एस० ब्लूम (Dr. B.S. Bloom) थे। इसीलिए यह वर्गीकरण 'ब्लूम का शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकण' के नाम से प्रचलित है। ब्लूम द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों की वर्गीकरण पद्धति उसी प्रकार उद्देश्यों का वर्गीकरण करती है जिस प्रकार डेवी (Dewey) की दशमलव पद्धति (Decimal system) पुस्तकालय की पुस्तकों का वर्गीकरण करती है। ब्लूम द्वारा बताए गए उद्देश्यों का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष महत्व है। ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण करके उन्हें बहुत ही सरल व स्पष्ट बना दिया। इस से शिक्षकों, विशेषज्ञों, प्रशासकों तथा अनुसंधानकर्त्ताओं को पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन की समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है। शैक्षिक उद्देश्य पाठ्यक्रम के विकास में और अधिगम का स्तर सुधारने में बहुत सहायक हो सकते हैं। शिक्षण–वातावरण में संप्रेषण (Communication) को सरल बनाने में ये उद्देश्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ब्लूम (Bloom) ने शैक्षिक उद्देश्यों का उपयुक्त व प्रभावशाली वर्गीकरण इस आधार पर किया कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाये जा सकते हैं। व्यवहार के तीन पक्ष होते हैं–

1. ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)
2. भावात्मक पक्ष (Affective Domain)
3. क्रियात्मक पक्ष (Conative or Psychomotor Domain)

ब्लूम ने इन तीन पक्षों के आधार पर शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में किया है–

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Objectives)
2. भावात्मक उद्देश्य (Affective Objectives)
3. क्रियात्मक उद्देश्य (Conative or Psychomotor Objectives)

शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है–

ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)	भावात्मक पक्ष (Affective Domain)	क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor Domain)
1. ज्ञान (Knowledge	1. आग्रहण या ध्यान देना (Receiving or Attending	1. सहज क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex movements)
2. बोध (Understanding)	2. प्रतिक्रिया (Response)	3. आधारभूत अंग संचालन (Fundamental movements)
3. प्रयोग (Application)	3. आकलन (Valuing)	3. शारीरिक योग्यताएं (Physical Abilities)
4. विश्लेषण (Analysis)	4. संगठन (Organisation)	4. प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं (Perceptual Abilities)
5. संश्लेषण (Synthesis)	5. मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values)	5. कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements)
6. मूल्यांकन (Evaluation)		6. सांकेतिक सम्प्रेषण (Non-discussive Communication)

3.3 ज्ञानात्मक उद्देश्य

ब्लूम (1956) ने शैक्षिक उद्देश्यों के ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस पक्ष में वे शैक्षिक उद्देश्य आते हैं जिनका सम्बन्ध ज्ञान के प्रत्यास्मरण (Recall) या पहचान (Recognition) तथा बौद्धिक योग्यताओं के विकास से होता है। इस पक्ष का मुख्य केन्द्र पाठ्यक्रम का विकास होता है और इसका विकास करते समय उद्देश्यों को अधिक से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है तथा इन उद्देश्यों को छात्र–व्यवहार में वर्णित किया जा सकता है। ज्ञानात्मक उद्देश्यों के निम्न से उच्च स्तर की दिशा में निम्नलिखित 6 वर्ग/स्तर हैं।

3.3.1. ***ज्ञान (Knowledge):*** यह ज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित उद्देश्यों का निम्नतम स्तर है। 'ज्ञान' से अभिप्राय उन व्यवहारों और परीक्षण–परिस्थितियों से है जो विचारों, विषय सामग्री या प्रक्रिया को स्मरण करने पर बल देते हैं। इसका सम्बन्ध विचारों, सूचनाओं, तथ्यों, वस्तुओं तथा क्रियाओं को पहचानने अथवा प्रत्यास्मरण करने से है। अधिगम की स्थिति में, विद्यार्थी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विशेष सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में

रखे और बाद में इन सूचनाओं का प्रत्यास्मरण कर सके। इस प्रक्रिया में सूचनाओं में कुछ परिवर्तन होने की संभावना रहती है। विषय वस्तु की दष्टि से ज्ञान उद्देश्यों को तीन भागों में बांटा जा सकता है

(i) विशिष्ट का ज्ञान (Knowledge of specifics)

(ii) विशिष्ट से संबंधित साधनों व रीतियों का ज्ञान (Knowledge of ways and means of dealing with specifics)

(iii) सार्वभौमिक एवं अमूर्त प्रत्ययों का ज्ञान (Knowledge of universals and abstractions)

3.3.2. ***बोध (Comprehension):*** ज्ञान के बिना बोध नहीं हो सकता। बोध के लिए ज्ञान एक आवश्यक आधार है। बोध का अर्थ है तथ्यों, विचारों, विधियों, प्रक्रियाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों आदि की बुनियादी समझ। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी को जो कुछ बताया जाता है वह उस का अनुवाद कर सकता है, उसका सारांश दे सकता है, व्याख्या कर सकता है, अथवा विस्तार कर सकता है। बोध उद्देश्यों को तीन भागों में बांटा जा सकता है

(i) अनुवाद (Translation)

(ii) व्याख्या (Interpretation)

(iii) बहिर्वेशन (Extrapolation)

3.3.3. ***प्रयोग (Application):*** प्रयोग के लिए ज्ञान तथा बोध का होना आवश्यक है। यह स्तर ज्ञान और बोध स्तर से उच्च स्तर है। बोध में व्यक्ति किसी अमूर्त वस्तु का उपयोग कर सकता है जबकि 'प्रयोग' में व्यक्ति विशिष्ट एवं ठोस परिस्थितियों में मूर्त वस्तु (Concrete object) काउपयोग करता है। प्रयोग उद्देश्यों को भी तीन भागों में बांटा जा सकता है–

(i) तथ्यों, नियमों, अधिनियमों तथा सिद्धान्तों का सामान्यीकरण करना (Generalisation of facts, laws, principles and theories)

(ii) विद्यार्थियों की कमजोरियों का निदान करना (Diagnosis of pupil's weakness)

(iii) विद्यार्थियों द्वारा पाठ्य सामग्री का प्रयोग करना (Application of contents by the pupils)

3.3.4. ***विश्लेषण (Analysis):*** विश्लेषण, ज्ञान, बोध और प्रयोग से उच्च स्तर है। 'बोध' में पाठ्य सामग्री को समझने एवं याद करने पर बल दिया जाता है। प्रयोग में समझ कर याद की गई सामग्री के व्यावहारिक जीवन में प्रयोग पर बल दिया जाता है। विश्लेषण में पाठ्य सामग्री को विभिन्न तत्वों में बांटा जाता है। इन तत्वों में आपसी संबंधों की खोज और उनके संगठन की विधियों को भी सम्मिलित किया जाता है। यह सम्प्रेषण को (communication) को स्पष्ट करता है और उसके निष्कर्षों को भी बताता है। विश्लेषण उद्देश्य के तीन स्तर होते हैं–

(i) तत्वों का विश्लेषण (Analysis of Elements)

(ii) सम्बन्धों का विश्लेषण (Analysis of Relationships)

(iii) व्यवस्थित सिद्धांतों का विश्लेषण (Analysis of Organised Principles)

3.3.5. ***संश्लेषण (Synthesis):*** संश्लेषण को सजनात्मक उद्देश्य भी कहा जाता है। यह स्तर ज्ञानात्मक पक्ष का पांचवा स्तर है। इसमें पूर्ण रूप की रचना की जाती है। इससे विद्यार्थियों में सजनात्मक योग्यताओं (Creative abilities) का विकास होता है। संश्लेषण उद्देश्य के भी तीन स्तर है–

(i) अनुपम संप्रेषण की उत्पत्ति (Production of Unique Communication)

(ii) योजना अथवा प्रस्तावित क्रियाओं की उत्पत्ति (Production of plan or proposed set of operations)

(iii) अमूर्त संबंधों को खोजना (Derivation of a set of Abstract relations)

3.3.6. ***मूल्यांकन (Evaluatin):*** मूल्यांकन ज्ञानात्मक पक्ष का उच्चतम स्तर है। यह विद्यार्थी में उस योग्यता का विकास करता है जिसके द्वारा वह ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण एवं सश्लेषण से प्राप्त अपनी उपलब्धि की उचित जांच करता है। इस में विद्यार्थी से किसी विशिष्ट विचार, वस्तु, नियम या सिद्धांत के सम्बन्ध में उचित गुणात्मक एवं परिमाणात्मक निर्णय लेने की आशा की जाती है। मूल्यांकन के दो स्तर हैं–

(i) आंतरिक साक्षियों द्वारा निर्णय (Judgement in terms of Internal evidences)

(ii) बाह्य साक्षियों द्वारा निर्णय (Judgement in terms of External evidences)

3.4 भावात्मक उद्देश्य

भावात्मक उद्देश्य विद्यार्थियों की रुचियों, अभिरुचियो, प्रवत्तियों एवं मूल्यों से सम्बन्धित होते हैं तथा आन्तरिक अनुभूतियों को स्पष्ट करते हैं। इन उद्देश्यों द्वारा विद्यार्थियों की भावनाओं व मूल्यों में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। ब्लूम, क्रथवाल और मारिया (Bloom, Krathwole and Maria, 1964) के अनुसार भावात्मक उद्देश्यों के निम्नलिखित 5 स्तर हैं–

(i) आग्रहण (Receiving)

(ii) प्रतिक्रिया (Response)

(iii) आकलन (Valuing)

(iv) संगठन (Organisation)

(v) मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values)

3.4.1. ***आग्रहण (Receiving):*** यह भावात्मक उद्देश्यों का निम्नतमस्तर है। इस का सम्बन्ध विद्यार्थियों की संवेदना से है। संवेदना या अनुभूति के लिए उद्दीपक का होना आवश्यक है। इस स्तरमें अध्यापक विद्यार्थियों को किसी उद्दीपक (stimulus) की उपस्थिति के प्रति संवेदनशील बनाता है, उन्हें अभिप्रेरित करता है जिससे उनमें विषय एवं सम्बन्धित क्रियाओं को ग्रहण करने की इच्छा जागत होती है। आग्रहण में निम्नलिखित तीन क्रियाओं का क्रम निहित है–

(i) उद्दीपनों/परिस्थितियों/प्रक्रिया की जागरुकता (Awareness of stimuli/situations/phenomenon)

(ii) उद्दीपनों को ग्रहण करने की इच्छा (Willingness to receive the stimuli)

(iii) विद्यार्थियों के ध्यान को नियंत्रित करना (To control the attention of students)

3.4.2. ***प्रतिक्रिया (Response):*** यह भावात्मक पक्ष कादूसरा स्तर है। प्रतिक्रिया के लिए आग्रहण आवश्यक है। जब विद्यार्थी उद्दीपक के प्रति आकर्षित होते हैं और उनमें उद्दीपक को ग्रहण करने के इच्छा जागत हो जाती है, तब वे उसे ग्रहण करने के लिए प्रतिक्रिया करते हैं। यह प्रतिक्रिया सक्रिय रूप से व्यक्त होती है जैसे आज्ञापालन करना, उत्तर देना, पढ़ना, लिखना, विचार–विमर्श करना, रिकार्ड करना आदि। प्रतिक्रिया को तीन भागो में बांटा जा सकता है–

(i) प्रतिक्रिया के प्रति आज्ञाकारी होना (Obedience for Responding)

(ii) प्रतिक्रिया की इच्छा (Wilingness to Respond)

(iii) प्रतिक्रिया में संतुष्टि (Satisfaction in Response)

3.4.3. ***आकलन (Valuing):*** आकलन के लिए आग्रहण एवं प्रतिक्रिया दोनों स्तर आधार का कार्य करते हैं। आकलन में किसी वस्तु, क्रिया या व्यवहार का महत्व निहित होता है। जब विद्यार्थी किसी प्रक्रिया की ओर ध्यान देते हैं और उसे ग्रहण करने के लिए प्रतिक्रिया करते हैं, उस प्रक्रिया में प्राप्त संतुष्टि के आधार पर वे प्रक्रिया का महत्व स्वीकार करते हैं। अर्थात् उन्हें मूल्यों का बोध होता है और वह उनके पालन का प्रयास करते हैं। आकलन में निम्न तीन क्रियाओं का क्रम निहित होता है–

(i) मूल्य की स्वीकृति (Acceptance of Value)

(ii) मूल्य की वरीयता (Preference for a Value)

(iii) मूल्य के प्रति वचनबद्धता (Commitment of Value)

3.4.4. ***संगठन (Organisation):*** इस स्तर के लिए आग्रहण, प्रतिक्रिया एवं आकलन का होना आवश्यक है। जब विद्यार्थी विभिन्न मूल्यों को ग्रहण करता है तो कई परिस्थितियों में ग्रहण किए गए मूल्यों में टकराव की अनुभूति करता है। इस टकराव को रोकने के लिए विद्यार्थी मूल्यों का समन्वय एवं स्पष्टीकरण करता है और प्रत्येक मूल्य को कोई क्रम प्रदान करता है। इससे विद्यार्थी मूल्यों की संरचना एवं जीवन–दर्शन के निर्माण की ओर अग्रसर होता है। संगठन में निम्न क्रियाएं निहित हैं–

(i) मूल्यों का प्रत्ययीकरण (Conceptulaisation of Values)

(ii) मूल्य पद्धति की व्यवस्था (Organisation of Value system)

3.4.5. ***मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values):*** भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों का यह उच्चतम स्तर है। इसके लिए भी उपरोक्त चारों स्तरों के उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है। इस स्तर पर पहुंचने तक विद्यार्थी अपनी जीवन शैली में विशेष प्रकार के मूल्य समाहित कर लेता है। इस स्तर में मूल्यों को स्थिरता (Consistency) प्रदान करके उन्हें विद्यार्थी के चरित्र का अंग बनाने पर बल दिया जाता है। इस स्तर की सहायता से विद्यार्थी में विशिष्ट शैली, रुचियों व अभिरुचियों का विकास होता है। इसलिए मूल्यों का चरित्रीकरण भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों में सर्वोपरि है। यह सामान्य–समूह (Generalized set) एवं विशिटीकरण (Specification) दो रूपों में हो सकता है।

3.5 क्रियात्मक उद्देश्य
(Conative or Psychomotor objectives)

क्रियात्मक उद्देश्यों से अभिप्राय उन शैक्षिक उद्देश्यों से है जो शारीरिक व क्रियात्मक कौशलों के विकास से सम्बन्धित होते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के पश्चात् विद्यार्थी पर्यावरण में प्रभावशाली ढंग से समायोजन कर सकते हैं और समाज में विशिष्ट भूमिका निभा सकते हैं। क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों की एक मानकीकृत (Standardized) टैक्सोनोमी तैयार नहीं की जा सकी। फिर भी दवे (Prof. R.H. Dave, 1976), सिम्पसन (Simpson, 1969) तथा हैरो (A.J. Harrow, 1972) ने क्रियात्मक उद्देश्यों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया। भारतीय शिक्षाविद् प्रो० दवे (NCERT) ने क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्य को 5 स्तरों में विभाजित किया और इसे 'क्रियात्मक पक्ष का दवे प्रतिमान (Dave Model of Pschyomotor Domain) नाम दिया। सिम्पसन ने भी क्रियात्मक उद्देश्यों को पांच स्तरों में विभाजित किया है जबकि हैरो ने क्रियात्मक उद्देश्यों को छः स्तरों में विभाजित किया हैं यह वर्गीकरण विभिन्न पेशीय क्रियाओं (Muscular Actions) के सामंजस्य पर आधारित है। दवे, सिम्सन तथा हैरो द्वारा दिए गए वर्गीकरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किए गए हैं–

Prof. R.H. Dave, 1967	Simpson, 1969	A.J. Harrow, 1972
1. अनुकरण (Imitation)	प्रत्यक्षीकरण (Perception)	सहज क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movements)
2. कार्य करना (Manipulation)	व्यवस्था या समुच्चय (Set)	आधारभूत अंग संचालन (Basic Fundamental Movements)
3. यर्थाथता (Precision)	निर्देशात्मक प्रतिक्रिया (Guided Response)	शारीरिक योग्यताएं (Physical Abilities)
4. स्पष्ट उच्चारण (Articulation)	कार्य प्रणाली (Mechanism)	प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं (Perceptual Abilities)
5. स्वाभावीकरण (Naturalisation)	जटिल प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया (Complex Overt Response)	कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements)
		सांकेतिक सम्प्रेषण (Non-Discussive communication)

3.6 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

शैक्षिक उद्देश्य (Bloom's Taxonomy)

ज्ञानात्मक उद्देश्य	भावात्मक उद्देश्य	क्रियात्मक उद्देश्य (Harrow, 1972
ज्ञान	**आग्रहण**	**सहज क्रियात्मक अंग संचालन**
● विशिष्ट का ज्ञान	● उद्दीपनों/परिस्थितियों/प्रक्रिया की जागरुकता	
● विशिष्ट से संबंधित साधनों व रीतियों का ज्ञान	● उद्दीपनों को ग्रहण करने की इच्छा	**आधारभूत अंग संचालन**
● सार्वभौमिक एवं अमूर्त प्रत्ययों का ज्ञान	● विद्यार्थियों का ध्यान नियन्त्रण	
बोध	**प्रतिक्रिया**	**शारीरिक योग्यताएं**
● अनुवाद ● व्याख्या ● बहिर्वेशन	● प्रतिक्रिया के प्रति आज्ञाकारी होना	
प्रयोग		
● तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों का सामान्यीकरण	● प्रतिक्रिया की इच्छा	
● विद्यार्थियों की कमजोरियों का निदान	● प्रतिक्रिया में संतुष्टि	**प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं**
● विद्यार्थियों द्वारा पाठ्य सामग्री का प्रयोग		
विश्लेषण	**आकलन**	**कौशलयुक्त अंग संचालन**
● तत्वों का विश्लेषण	● मूल्य की स्वीकृति	
● संबंधों का विश्लेषण	● मूल्य की वरीयता	**सांकेतिक सम्प्रेषण**
● व्यवस्थित सिद्धांतों का विश्लेषण	● मूल्य के प्रति वचनबद्धता	
संश्लेषण	**संगठन**	
● अनुपम संप्रेषण की उत्पत्ति	● मूल्यों का प्रत्ययीकरण	
● योजना अथवा प्रस्तावित क्रियाओं की उत्पत्ति	● मूल्य पद्धति की व्यवस्था	
● अमूर्त संबंधों को खोजना		
मूल्यांकन	**मूल्यों का चरित्रीकरण**	
● आन्तरिक साक्षियों द्वारा निर्णय	● सामान्य समूह	
● बाह्य साक्षियों द्वारा निर्णय	● विशिष्टीकरण	

अपनी प्रगति जांचिए

(i) ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों की सूची बनाइये।

(ii) भावात्मक उद्देश्य किस से संबंधित होते हैं?

(iii) सांकेतिक संप्रेषण से क्या अभिप्राय है?

3.7 सारांश

शैक्षिक उद्देश्यों का पहला स्पष्ट एवं प्रभावशाली वर्गीकरण शिकागो विश्वविद्यालय के डॉ० बी०एस० ब्लूम एवं उनके सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके अनुसार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। व्यवहार के तीन पक्ष होते हैं–ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक। शिक्षा द्वारा व्यवहार के इन पक्षों में अपेक्षित परिवर्तन लाए जाते हैं। इस आधार पर शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण किया गया है।

इन उद्देश्यों को ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक उद्देश्यों के नाम से जाना जाता है। विद्यार्थी के व्यवहार के प्रत्येक पक्ष के विभिन्न स्तरों के अनुरूप शैक्षिक उद्देश्यों को सरल से कठिन एवं निम्न से उच्च स्तर की दिशा में वर्गीकृत किया गया है। ज्ञानात्मक उद्देश्यों के छः स्तर हैं–ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन। भावात्मक उद्देश्यों के

पांच स्तर होते हैं–आग्रहण, प्रतिक्रिया, आकलन, संगठन तथा मूल्यों का चरित्रीकरण। क्रियात्मक उद्देश्यों में सहज क्रियात्मक अंग संचालन, आधारभूत अंग संचालन, शारीरिक योग्यताएं, प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं, कौशलयुक्त अंग संचालन तथा सांकेतिक सम्प्रेषण सम्मिलित होते हैं।

मॉडल उत्तर

(i) ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन उद्देश्य

(ii) भावात्मक उद्देश्यों का संबंध विद्यार्थियों की भावनाओं, रुचियों, अभिरुचियों, प्रवत्तियों, मूल्यों आदि से होता है और ये विद्यार्थियों की आंतरिक अनुभूतियों को स्पष्ट करते हैं।

(iii) सांकेतिक सम्प्रेषण से अभिप्राय है शब्दों का प्रयोग किए बिना संकेतों, मुख–मुद्रा व हाव–भाव द्वारा अपनी बात दूसरों तक पहुंचाना।

2.7 मुख्य शब्द

ज्ञान–ज्ञान से अभिप्राय उन व्यवहारों एवं परीक्षण परिस्थितियों से है जो विचारों, विषय सामग्री या प्रक्रिया को स्मरण करने पर बल देते हैं।

बोध–तथ्यों, विचारों, विधियों, प्रक्रियाओं, नियमों, सिद्धान्तों आदि की समझ।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Bloom, B.S. et al 'Taxomomy of Educational Objectives', David Mikey, NewYork

शर्मा, आर०ए० 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ

ओबराय, एस०सी० 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', शोभित प्रकाशन, भिवानी

शर्मा, रवीन्द्र कुमार 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', श्री राम पब्लिकेशन, भिवानी

इकाई-I

अध्याय–4: विशिष्ट उद्देश्यों का व्यवहारपरक शब्दावली में प्रतिपादन (Formulation of Specific Objectives in Behavioural Terms)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता बता सकें।
- उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के मुख्य उपागमों के नाम बता सकें।
- राबर्ट मेगर उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- राबर्ट मिलर उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- आर०सी०ई०एम० उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।

सरंचनाः

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता
4.3 उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के उपागम
4.4 राबर्ट मेगर उपागम
4.5 राबर्ट मिलर उपागम
4.6 आर०सी०ई०एम० उपागम
4.7 सारांश
मॉडल उत्तर
4.8 शब्दावली
4.9 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में उद्देश्यों का केन्द्रीय स्थान है। शिक्षक को प्रभावशाली शिक्षण एवं पाठ योजना के संतुलित ढंग से प्रस्तुतीकरण के लिए अनुदेशनात्मक उद्देश्यों अथवा विशिष्ट उद्देश्यों को स्पष्ट करना अति आवश्यक है। ब्लूम द्वारा दिए गए वर्गीकरण में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के विभिन्न पक्षों एवं स्तरों का उल्लेख किया गया हैं परन्तु उद्देश्यों को विद्यार्थियों के अंतिम व्यवहार (Terminal Behaviour) के रूप में स्पष्ट नहीं किया गया है। शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख तभी सार्थक हो सकता है जब उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में व्यक्त किया जाए।

4.2 उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता

सकैफोल्ड (Scafold) ने उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली का रूप देने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताओं पर बल दिया है–

(i) उद्देश्यों के विशिष्टीकरण के लिए (For specification of objectives)

(ii) परीक्षण निर्माण में परीक्षण पदों के चयन के लिए (For selection of test items in test construction)

(iii) अधिगम अनुभवों और व्यवहारों में परिवर्तनों में एकीकरण के लिए (For integrating learning experiences and behavioural changes)

(iv) उपयुक्त शिक्षण व्यूह रचनाओं, युक्तियों व शिक्षण सामग्री के चयन के लिए (For selection of Appropriate Teaching Strategies, Tactics and Teaching Aids)

4.3 उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के उपागम

उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों व उपागमों का प्रयोग किया जाता है। कुछ मुख्य उपागन निम्नलिखित हैं–

1. राबर्ट मेगर उपागम (Robert Mager Approach)
2. राबर्ट मिलर उपागम (Robert Millers Approach)
3. आर०सी०ई०एम० उपागम (R.C.E.M. Approach)

4.4 राबर्ट मेगर उपागम

राबर्ट एफ० मेगर (Robert F. Mager) ने सन् 1962 में इस उपागम को प्रस्तुत किया। मेगर ने ब्लूम के वर्गीकरण को आधार मानते हुए ज्ञानात्मक और भावात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने में योगदान दिया। उन्होंने 'कार्य–सूचक क्रियाओं' (Action-verbs) के उपयोग पर बल दिया है। कार्यसूचक क्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थी के अन्तिम व्यवहार अथवा अधिगम परिणामों को ऐसी व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जाता है जिसका आसानी से मापन किया जा सकता है। इस उपागम के अनुसार व्यवहारपरक उद्देश्य लिखने के लिए निम्नलिखित विधि का उपयोग करना चाहिए–

(i) सर्वप्रथम अन्तिम व्यवहार की शब्दों में पहचान करनी चाहिए।

(ii) उन महत्वपूर्ण स्थितियों की व्याख्या करनी चाहिए जिनमें व्यवहार के घटित होने की आशा की जाती है।

(iii) इच्छित व्यवहार के लिए मापदण्ड का विशिष्टीकरण करना चाहिए।

उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए निम्नलिखित कार्यसूचक क्रियाओं का प्रयोग किया जा सकता है–

ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs of Cognitive Domain)

उद्देश्य (Objectives)	सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं (Associated Action Verbs)
I. ज्ञान (Knowledge)	परिभाषा देना (Define), नाम देना (Name), प्रत्यास्मरण (Recall), पहचानना (Recognise), पुनः प्रस्तुत करना (Reproduce), सूची देना (List), लेबल लगाना (Label), चयन करना (Select), कथन (State), मापन (Measure), और रेखांकित करना (Underline)
II. बोध (Comprehension)	पहचानना (Identify), व्याख्या करना (Explain), दष्टान्त देना (Illustrate), वर्गीकरण करना (Classify), संकेत देना (Indicate), अर्थ निकालना (Interpret), पुष्टि करना (Verify), सारांश देना (Summarise), रूपान्तर करना (Transform), अनुवाद करना (Translate), निर्णय लेना (Judge)
III. प्रयोग (Application)	जांच करना (Assess), परिवर्तन करना (Change), चुनना (Choose), संचालन करना (Conduct), निर्माण करना (Construct), गणना करना (Compute), प्रदर्शन करना (Demonstrate), खोजना (Discover), स्थापित करना (Establish), उत्पन्न करना (Generate), संशोधन करना (Modify), पूर्व कथन (Predict), चयन करना (Select), समाधान करना (Solve), प्रयोग करना (Use), निकालना/ढूंढ़ना (Find)
IV. विश्लेषण (Analysis)	विश्लेषण करना (Analyse), तुलना करना (Compare), निष्कर्ष निकालना (Conclude), सम्बन्धित करना (Associate), आलोचना करना (Criticise), विभाजन करना (Divide), पहचानना (Identify), पुष्टि करना (Verify), संकेत करना (Point out), परिलक्षित (हल) करना (Resolve), चयन करना (Select), अलग करना (Separate)

V. संश्लेषण (Synthesis)	सुनिश्चित करना (Precise), संक्षिप्तीकरण (Summarize), पुनः कथन (Restate), मिलाना (Combine), निष्कर्ष निकालना (Conclude), तर्क करना (Argue), विचार–विमर्श करना (Discuss), संगठित करना (Organise), एक्य स्थापित करना (Integrate), सारांश देना (Summarise), सिद्ध करना (Prove), सामान्यीकरण करना (Generalize), सम्बन्ध स्थापित करना (Relate)
VI. मूल्यांकन (Evaluation)	समर्थन करना (Support), सारांश देना (Summarise), चयन करना (Select), बचाव करना (Defend), दूर करना (Avoid), आलोचना करना (Criticise), निष्कर्ष निकालना (Conclude), निर्धारित करना (Determine), आक्रमण करना (Attack), निर्णय देना (Judge)

उदाहरण

विषय–भौतिक विज्ञान

उपविषय–घनत्व (Density)

(i) **ज्ञान उद्देश्य (Knowledge Objective)**

विद्यार्थी घनत्व को परिभाषित कर सकेंगे।

(ii) **बोध उद्देश्य (Comprehension objective)**

विद्यार्थी घनत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

(iii) **प्रयोग उद्देश्य (Application objective)**

विद्यार्थी किसी दिए गए पदार्थ के घनत्व की गणना कर सकेंगे।

(iv) **विश्लेषण उद्देश्य (Analysis Objective)**

विद्यार्थी घनत्व के तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे।

विद्यार्थी घनत्व व आयतन में अंतर कर सकेंगे।

(v) **संश्लेषण उद्देश्य (Synthesis Objective)**

विद्यार्थी तर्क देकर घनत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

(vi) **मूल्यांकन उद्देश्य (Evaluation Objective)**

विद्यार्थी घनत्व, द्रव्यमान (Mass) व आयतन में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs of Affective Domain)

उद्देश्य (Objectives)	सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं (Associated Action Verbs)
I. आग्रहण (Receiving)	सुनना (Listen), स्वीकार करना (Accept), प्राथमिकता देना (Prefer), ग्रहण करना (Receive), प्रत्यक्षीकरण (Perceive), ध्यान देना (Attend), चयन करना (Select), सावधान होना (Beware), अवलोकन करना (Observe), पूछना (Ask), अनुसरण करना (Follow), पक्ष लेना (Favour)
II. प्रतिक्रिया (Response)	उत्तर देना (Answer), कथन कहना (State), सूची बनाना (List), नाम देना (Name), आज्ञा पालन करना (Obey), सहायता करना (Assist), पूरा करना (Complete), उत्पत्ति करना (Derive), विकसित करना (Develop), रिकार्ड करना (Record), चयन करना (Select), लिखना (Write), विचार विमर्श करना (Discuss), प्रस्तुत करना (Present), अभ्यास करना (Practice)
III. आकलन (Valuing)	स्वीकार करना (Accept), पूरा करना (Complete), प्राप्त करना (Attain), निर्णय लेना (Decide), प्रदर्शन करना (Demonstrate), विकसित करना (Develop), भेद करना (Discriminate), संकेत देना (Indicate), वद्धि करना (Increase), प्रभावित करना (Influence), भाग लेना (Participate), पहचानना (Recognise)
IV. संगठन (Oganisation)	बनाना (Form), पाना (Find), चयन करना (Select), जोड़ना (Add), सम्बन्धित करना (Associate), परिवर्तन करना (Change), समावयित करना (Correlate), निर्धारित करना (Determine), सामान्यीकरण करना (Generalisation)

V. मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values)	स्वीकार करना (Accept), बदलना (Change), चरित्रित करना (Characterise), निर्णय करना (Decide), सिद्ध करना (Prove), दोहराना (Revise), सेवा करना (Serve), प्रदर्शन करना (Demonstrate), विकसित करना (Develop), हल करना (Solve), पुष्टि करना (Verify).

उदाहरण

राबर्ट मेगर उपागम की सीमाएं (Limiations of Robert Mager's Approach)-

1. इस उपागम में मानसिक प्रक्रियाओं एवं योग्यताओं का कोई महत्व नहीं दिया गया है।
2. यह उपागम केवल ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों के लिए उपयोगी है। इसमें क्रियात्मक उद्देश्यों का स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता है।
3. यह उपागम केवल अभिक्रमित अधिगम में उपयोगी हो सकता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप से लिखने के लिए यह उपयुक्त नहीं है।
4. इस उपागम में दी गई कार्य सूचक क्रियाओं की विभिन्न पक्षों एवं स्तरों में पुनरावत्ति हुई है, जैसे–चयन करना, सूची बनाना, विश्लेषण, लिखना आदि।
5. इस उपागम में कार्य सूचक क्रियाओं की सूची बहुत अधिक लम्बी है।
6. मेगर ने उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया को अधिगम के रूप में व्यक्त किया है परन्तु मानव अधिगम को केवल साधारण उद्दीपक प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

4.5 राबर्ट मिलर उपागम

डा० राबर्ट बी० मिलर (Dr. Robert B. Miller) ने सन् 1962 में इस उपागम को प्रस्तुत किया। मिलर ने कौशल–विश्लेषण को महत्व देते हुए क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने में योगदान दिया। राबर्ट मिलर ने भी मेगर की भांति 'कार्यसूचक क्रियाओं' के उपयोग पर बल दिया। इस उपागम के अनुसार क्रियात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए निम्नलिखित विधि का उपयोग करना चाहिए–

(i) अध्यापक को सर्वप्रथम संकेतक (indicator) की व्याख्या करनी चाहिए जिससे आवश्यक क्रिया का संकेत मिल सके।

(ii) उस उद्दीपक (Stimulus) का वर्णन करना चाहिए जिससे प्रतिक्रिया (Response) हो सके।

(iii) उस वस्तु/व्यक्ति पर नियन्त्रण करना चाहिए जिसे सक्रिय करना है।

(iv) जिस क्रिया को सम्पन्न करना है, उसे निश्चित करना चाहिए।

(v) प्रतिपुष्टि (Feedback) को उचित स्थान देना चाहिए।

क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए सम्बन्धित कार्य–सूचक क्रियाओं की सूची इस प्रकार है– (हैरो के वर्गीकरण के आधार पर)

क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्यसूचक क्रियाएं (Action Verbs of Psychomotor Domain)

उद्देश्य (Objectives)	कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs)
I. सहज क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movements)	छींक आना, फैलना, पलक झपकना, झटका देना, डरना, ढीला करना, सुस्ताना, खींचना, सीधा करना, लम्बा करना, काटना। **उदाहरण**–अंधेरे में तेज प्रकाश में आने पर पलकें झपकती हैं और आंखों की पुतलियां सिकुड़ जाती हैं।

II. आधारभूत अंग संचालन (Basic Fundamental movements)	रेंगना, दोड़ना, कूदना, उछलना, घुटनों के बल चलना, पकड़ना, पीना। **उदाहरण**—विद्यार्थी थर्मामीटर को पकड़ना सीखते हैं।
III. शारीरिक योग्यताएं (Physical Abilities)	आरम्भ करना, संचालन करना, वद्धि करना, मोड़ना, सहन करना, सुधारना, टुकड़े करना, सहारा देना, रोकना। **उदाहरण**—विद्यार्थी तार पर बल लगाकर मोड़ सकते हैं।
IV. प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं (Perceptual Abilities)	संतुलन करना, मोड़ना, पकड़ना, खोज करना, खाना छूकर, देखकर, सूंघकर या सुनकर पहचानना, लिखना, फेंकना। **उदहरण**—विद्यार्थी सूंघकर गेसों में अंतर कर सकते हैं।
V. कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements)	नत्य करना, तैरना, गोता लगाना, बुनना, वाद्य—यन्त्र बजाना, नाव चलाना, स्केटिंग करना, गोली चलाना, टाईप करना, खोदना। **उदाहरण**—विद्यार्थी स्केटिंग करना सीखते हैं।
VI. सांकेतिक संप्रेषण (Non-duscussive Communication)	मुस्कुराना, नकल उतारना, चिढ़ाना, भाव भंगिमा बनाना, खड़ा होना, बैठना, चित्रित करना। **उदाहरण**—विद्यार्थी किसी विशेष चरित्र की नकल उतार सकते हैं।

4.6 आर०सी०ई०एम० उपागम

मेगर एवं मिलर उपागम दोनों ने मानसिक योग्यताओं की अपेक्षा 'कार्य—सूचक क्रियाओं' को महत्व दिया। इन कमियों को देखते हुए क्षेत्रीय कॉलेज आफ एजुकेशन, (Regional College of Education, Mysore) मेसूर के शिक्षाविद्ों ने आर०सी०ई०एम० उपागम प्रस्तुत किया। इस उपागम का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि मनुष्य अपनी मानसिक योग्यताओं की सहायता से अधिक से अधिक सीख सकता है। इस उपागम में मनुष्य की मानसिक योग्यताओं या मानसिक प्रक्रियाओं पर बल दिया गया है। इस उपागम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक, तीनों पक्षों के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है। इस उपागम में ब्लूम द्वारा दिए गए वर्गीकरण को संशोधित करके 4 वर्गों/स्तरों में वर्णन किया गया है। इन चारों वर्गों को 17 मानसिक प्रक्रियाओं में बांटा गया है।

आर०सी०ई०एम० उपागम के अनुदेशनात्मक उद्देश्य व मानसिक योग्यताएं (Instructional Objectives and Mental Abilities in R.C.E.M. Approach)

उद्देश्य (Objectives)	मानसिक प्रक्रियाएं या योग्यताएं
I. ज्ञान (Knowledge)	1. पुनः स्मरण करना (Recall) 2. पहचान करना (Recognise)
II. समझना (Understanding)	3. सम्बन्ध देखना (See Relationship) 4. उदाहरण देना (Cite Example) 5. विभेद करना (Discriminate) 6. वर्गीकरण करना (Classify) 7. व्याख्या करना (Interpret) 8. पुष्टि करना (Verify) 9. सामान्यीकरण करना (Generalise)
III. प्रयोग (Application)	10. कारण बताना (Reason) 11. उपकल्पना का निर्माण करना (Formulate Hypothesis) 12. उपकल्पना स्थापित करना (Establish Hypothesis) 13. निष्कर्ष निकालना (Infer) 14. भविष्यवाणी करना (Predict)

IV. सजनात्मकता (Creativity)	15. विश्लेषण करना (Analyse)
	16. संश्लेषण करना (Synthesis)
	17. मूल्यांकन करना (Evaluate)

आर०सी०ई०एम० उपागम में इन मानसिक क्रियाओं की सहायता से अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को लिखने के लिए निम्नलिखित 17 कथनों का उल्लेख किया गया है–

I. **ज्ञान उद्देश्य**

1. विद्यार्थी ———— पुनः स्मरण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
2. विद्यार्थी ———— पहचान करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।

II. **समझ उद्देश्य**

3. विद्यार्थी ———— तथा ———— में सम्बन्ध देखने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
4. विद्यार्थी ———— के उदाहरण देने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
5. विद्यार्थी ———— तथा ———— में विभेद करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
6. विद्यार्थी ———— का वर्गीकरण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
7. विद्यार्थी ———— की व्याख्या करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
8. विद्यार्थी ———— की पुष्टि करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
9. विद्यार्थी ———— का सामान्यीकरण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।

III. **प्रयोग उद्देश्य**

10. विद्यार्थी ———— का कारण बताने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
11. विद्यार्थी ———— के बारे में उपकल्पना का निर्माण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगें।
12. विद्यार्थी ———— के बारे में उपकल्पना को स्थापित करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।
13. विद्यार्थी ———— का निष्कर्ष निकालने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।
14. विद्यार्थी ———— की भविष्यवाणी करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

IV. **सजनात्मक उद्देश्य**

15. विद्यार्थी ———— का विश्लेषण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।
16. विद्यार्थी ———— का संश्लेषण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।
17. विद्यार्थी ———— का मूल्यांकन करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

आर०सी०ई०एम० उपागम के अनुसार अनुदेशात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है–

(i) सर्वप्रथम विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार को ध्यान में रखना चाहिए।

(ii) शिक्षण तथा अधिगम के उद्देश्यों पर विचार करना चाहिए।

(iii) विद्यार्थी को प्रदान किये जाने वाले अधिगम अनुभवों, विषय–वस्तु, उपविषय आदि के बारे में विचार करना चाहिए।

(iv) विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार, विषय वस्तु, उपविषय आदि को ध्यान में रखकर मानसिक योग्यताओं का चयन करना चाहिए।

उदाहरण 1.

उपविषय-भार (Weight)

व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives)

(i) विद्यार्थी भार को परिभाषित कर सकेंगे। (ज्ञान)

(ii) विद्यार्थी भार और संहति (mass) में विभेद कर सकेंगे। (समझ)

(iii) विद्यार्थी किसी वस्तु का भार ज्ञात कर सकेंगे। (प्रयोग)

(iv) विद्यार्थी भार का इसके तत्वों में विश्लेषण कर सकेंगे। (सजनात्मक)

उदाहरण 2.

उपविषय-चुम्बकत्व (Magnetism)

(i) विद्यार्थी चुम्बक की पहचान कर सकेंगे। (ज्ञान)

(ii) विद्यार्थी चुम्बकत्व को परिभाषित कर सकेंगे। (ज्ञान)

(iii) विद्यार्थी चुम्बक के गुणों की व्याख्या कर सकेंगे। (समझ)

(iv) विद्यार्थी चुम्बक के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव में विभेद कर सकेंगे। (समझ)

(v) विद्यार्थी चुम्बक के कार्यों के बारे में भविष्यवाणी कर सकेंगे। (प्रयोग)

आर०सी०ई०एम० उपागम के गुण

(i) इस उपागम का विकास भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया है इसलिए यह भारतीय विद्यालयों के लिए अधिक उपयोगी है।

(ii) इस उपागम में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया गया है। इन योग्यताओं को याद रखना सरल है।

(iii) इस उपागम की सहायता से मानव व्यवहार के तीनों पक्षों–ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्ष के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है।

(iv) यह उपागम राबर्ट मेगर और राबर्ट मिलर उपागम से अधिक विशिष्ट है।

(v) इस उपागम की सहायता से अध्यापक उद्देश्य निर्धारण, परीक्षण प्रश्नों का निर्माण एवं मूल्यांकन सरलतापूर्वक कर सकता है।

(vi) यह उपागम मानसिक प्रक्रियाओं पर बल देता है।

आर०सी०ई०एम० उपागम की सीमाएं

(i) इस उपागम में मानव व्यवहार को 17 मानसिक योग्यताओं तक सीमित कियागया है जबकि सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक गिलफर्ड (Guilford) ने 120 मानसिक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है।

(ii) इस उपागम द्वारा विद्यालय में पढ़ायी जाने वाली सम्पूर्ण विषय–वस्तु के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को उचित प्रकार से व्यवहारपरक शब्दावली में नहीं लिखा जा सकता।

(iii) इस उपागम में विभिन्न स्तरों के लिए प्रयुक्त मानसिक योग्यताओं में असंतुलन है। उदाहरण के लिए ज्ञान के अंतर्गत दो, समझ के अंतर्गत सात, प्रयोग के अंतर्गत पांच व सजनात्मक के अंतर्गत तीन मानसिक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है।

(iv) इस उपागम में मानव व्यवहार के तीनों पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया है।

(v) इस उपागम में सजनात्मक उद्देश्य के अन्तर्गत केवल तीन मानसिक प्रक्रियाओं का उल्लेख है जबकि टोरैन्स (Torance) ने पांच तरह की मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन किया है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) राबर्ट मेगर उपागम के अनुसार व्यवहारपरक उद्देश्य लिखने के लिए किस विधि का उपयोग करना चाहिए?

(ii) राबर्ट मिलर उपागम किन उद्देश्यों से सम्बन्धित है?

(iii) आर०सी०ई०एम० उपागम किस सिद्धान्त पर आधारित है।

4.7 सारांश

इस अध्याय में हमने सीखा कि विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में किस प्रकार लिखा जा सकता है। उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए ब्लूम का शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण आधार रूप में प्रयोग किया जाता है। ब्लूम के वर्गीकरण में शिक्षण उद्देश्यों को विद्यार्थियों के अंतिम व्यवहार के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। शिक्षण उद्देश्य तभी सार्थक होते हैं जब उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जाए अर्थात् उनकी सहायता से विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना और परिवर्तन का मूल्यांकन करना संभव हो। उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिएबहुत से उपागमों का विकास किया गया है। इनमें से मुख्य उपागम राबर्ट मेगर उपागम, राबर्ट मिलर उपागम एवं आर०सी०ई०एम० उपागम हैं। राबर्ट मेगर ने ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्षों के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 'कार्यसूचक क्रियाओं' की सूची प्रस्तुत की है जबकि राबर्ट मिलर ने केवल क्रियात्मक पक्ष के विभिन्न स्तरों से संबंधित उद्देश्यों की सूची प्रस्तुत की है। इन दोनों उपागमों में मानसिक योग्यताओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है, 'कार्यसूचक क्रियाओं' की सूची अत्यधिक लम्बी है और इन क्रियाओं की विभिन्न स्तरों में पुनरावत्ति की गई है। आर०सी०ई०एम० उपागम में ब्लूम द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण को संशोधित करके चार वर्गों एवं सत्रह मानसिक योग्यताओं में बांटा गया है। इसमें 'कार्यसूचक क्रियाओं' को कोई स्थान नहीं दिया गया है और यह ज्ञानात्मक उद्देश्यों के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मॉडल उत्तर

(i) राबर्ट मेगर उपागम के अनुसार व्यवहारपरक उद्देश्य लिखने के लिए निम्नलिखित विधि का उपयोग करना चाहिए—

(a) अंतिम व्यवहार की पहचान

(b) महत्वपूर्ण परिस्थितियों की व्याख्या

(c) मापदण्ड का विशिष्टीकरण

(ii) क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्य

(iii) क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर

4.8 मुख्य शब्द

विशिष्ट उद्देश्य—वे शैक्षिक उद्देश्य जिनकी सहायता से अनुदेशन की दिशा निर्धारित की जाती है और मूल्यांकन की प्रविधियों का विशिष्टकरण किया जाता है।

व्यवहारपरक शब्दावली—ऐसे शब्दों का प्रयोग करना जो विद्यार्थी के अंतिम व्यवहार को प्रदर्शित करें।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Bloom, B.S. et al 'Taxomomy of Educational Objectives', David Mikey, NewYork

शर्मा, आर०ए० 'शिक्षण—अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ

ओबराय, एस०सी० 'शिक्षण—अधिगम के मूल तत्व', शोभित प्रकाशन, भिवानी

शर्मा, रवीन्द्र कुमार 'शिक्षण—अधिगम के मूल तत्व', श्री राम पब्लिकेशन, भिवानी

इकाई-II(a)

अध्याय-1: ऊर्जा के प्रकार (Energy-Types)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- ऊर्जा के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकें।
- एक प्रकार की ऊर्जा का दूसरी प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तन का वर्णन कर सकें।
- ऊर्जा के भिन्न–भिन्न रूपों में परस्पर संबंध बता सकें।

सरंचनाः

1.1 प्रस्तावना
1.2 ऊर्जा के प्रकार
1.3 एक प्रकार की ऊर्जा का दूसरी प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तन
1.4 ऊर्जा के भिन्न–भिन्न रूपों में परस्पर संबंध
1.5 सारांश
मॉडल उत्तर
1.6 मुख्य शब्द
1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

चैम्बर शब्दकोष के अनुसार ऊर्जा का अर्थ है जोश अर्थात् कार्य करने की क्षमता। जब कार्य होता है तो ऊर्जा की खपत होती है। खपत की गई ऊर्जा किये गए कार्य पर निर्भर होती है। अतः हम कह सकते हैं कि 'कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा' कहते हैं। आपने अनुभव किया होगा कि यदि कुछ देर अथवा कुछ दिन खाना न खाया जाए तो कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। खाना खाने के बाद फिर पहले की भांति कार्य करने योग्य हो जाते हैं। भोजन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है तथा कार्य करने की क्षमता देता है। दैनिक जीवन में ऊर्जा का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए–

1. यदि हम एक हथौड़ी से किसी लकड़ी में एक कील लगाने का प्रयत्न करें, जितना जोर लगा कर हथौड़ी को कील पर मारा जाता है, कील लकड़ी में उतनी ही गहराई तक जाती है। लकड़ी में जाने के लिए कील को ऊर्जा कहां से मिली?
2. किसी बर्तन में पानी डाल कर गर्म करें। बर्तन को ढक्कन से ढक दें। जब पानी उबलने लगेगा तो भाप ढक्कन को उठाकर बर्तन से बाहर आने लगेगी। क्या भाप में भी ऊर्जा है?
3. ट्रक, स्कूटर, ट्रेक्टर को चलाने तथा गति में रखने के लिए डीजल अथवा पेट्रोल (ईंधन) डालना पड़ता है। जब इनमें ईंधन समाप्त हो जाता है, तब वे रूक जाते हैं। उन्हें चलाने तथा गति में रखने के लिए फिर से ईंधन डालना

पड़ता है। ऐसा क्यों है? पेट्रोल अथवा डीजल गाड़ियों के इंजन को चलाने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है।

4. विद्युत पंखे का स्विच दबाओ। पंखा चलने लगेगा। अब पंखा बन्द करने के लिए स्विच को दबाओ। कुछ देर में पंखा घूमना बन्द कर देगा। ऐसा क्यों हुआ? क्या पंखे को घूमने के लिए आवश्यक ऊर्जा विद्युत से प्राप्त हुई?

5. एक चुम्बक लेकर उसको लोहे की कील में रखो। कुछ कीलें चुम्बक से चिपक जाएंगी। ऐसा क्यों हुआ? क्या लोहे की कीलों को उठाने के लिए चुम्बक में ऊर्जा सीमित है?

1.2 ऊर्जा के प्रकार

ऊर्जा के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. ***गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy):*** जो ऊर्जा किसी वस्तु में उसकी गति के कारण होती है, उसे गतिज ऊर्जा कहते हैं, जैसे–बहते हुए पानी, चलती हुई रेलगाड़ी, गतिशील वायु आदि की ऊर्जा भी गतिज ऊर्जा है।

2. ***स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy):*** जो ऊर्जा किसी वस्तु में उसकी स्थिति के कारण हो, उसे स्थितिज ऊर्जा कहते हैं जैसे–मेज पर पड़ी पुस्तक, छत पर पड़ा पत्थर आदि की ऊर्जा स्थितिज ऊर्जा है।

   घड़ी अथवा स्प्रिंग वाले किसी खिलौने को जब आप चाबी देते हो तो वास्तव में इसके अन्दर लगे हुए स्प्रिंग की स्थिति में परिवर्तन करते हो। इससे आप उसमें स्थितिज ऊर्जा देते हो, जिस कारण वह घड़ी अथवा खिलौना चलते रहते हैं।

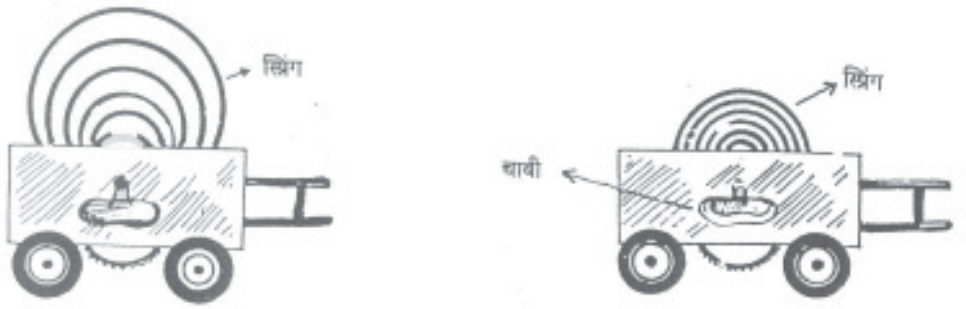

(क) चाबी देने से पहले **(ख) चाबी देने के बाद**

स्प्रिंग वाला खिलौना

3. ***रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy):*** भोजन शरीर को ऊर्जा देता है। यदि कुछ दिन भोजन न खाओ तो कमजोरी महसूस करते हो और कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। भोजन शरीर में जाकर कई रासायनिक अभिक्रियाएं करता है, जिनके कारण ऊर्जा बनती है तथा उस ऊर्जा से शरीर अनेकों कार्य करता है।

   ऐसी ऊर्जा जो अणुओं में रासायनिक अभिक्रिया के कारण प्राप्त होती है, रासायनिक ऊर्जा कहलाती है।

   जब आप माचिस की तीली जलाते हो तो तीली को डिब्बी के एक तल पर रगड़ते हो, जिससे रासायनिक अभिक्रिया होती है तथा ऊर्जा प्राप्त होती है।

4. ***ध्वनि ऊर्जा (Sound Energy):*** ध्वनि भी एक प्रकार की ऊर्जा है। इसके द्वारा भी वस्तुओं में गति लाई जा सकती है। जब ध्वनि आपके कान में पड़ती है तो क्या होता है? इस ध्वनि के कारण कान का पर्दा विशेष प्रकार से कंपन करता है। वह कंपन आपके मस्तिष्क में पहुंचती है और ध्वनि आपको सुनाई देती है।

   ध्वनि के साथ सम्बन्धित ऊर्जा को ध्वनि ऊर्जा कहते हैं।

5. ***ऊष्मा ऊर्जा (Heat Energy):*** हम दैनिक जीवन में ऊष्मा ऊर्जा को घरों तथा उद्योगों में उपयोग में लाते हैं, जैसे पानीपत के ताप विद्युत संयंत्र में ऊष्मा ऊर्जा का उपयोग बिजली के उत्पादन के लिए किया जाता है। ईंधन, परमाणु ऊर्जा तथा रासायनिक ऊर्जा इसक मुख्य स्त्रोत हैं।

   किसी वस्तु में ऊष्मा के कारण जो ऊर्जा प्राप्त होती है, उसे ऊष्मीय ऊर्जा कहते हैं।

6. ***प्रकाश ऊर्जा (Light Energy):*** प्रकाश भी ऊर्जा का एक रूप है। प्रकाश के साथ संबंधित ऊर्जा को प्रकाश ऊर्जा कहते हैं। प्रकाश ऊर्जा का उपयोग पौधे अपना भोजन बनाने के लिए करते हैं। कैमरे से फोटो के लिए भी प्रकाश ऊर्जा कार्य करती है।

7. ***विद्युत ऊर्जा (Electric Energy):*** विद्युत से प्राप्त ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा कहते हैं। यह ऊर्जा एक नई प्रकार की ऊर्जा है, जिसका ज्ञान मनुष्य को लगभग 100 वर्ष पूर्व हुआ। इसकी उपयोगिता इतनी अधिक हो गई है कि अब यह कड़ी, कोयला तथा पेट्रोल का स्थान लेने लगी है। यह घरों तथा उद्योगों में काम आती है। इसका मुख्य उपयोग प्रकाश तथा ऊष्मा प्राप्त करने के लिए, गाड़ियां, टयूबवैल तथा अन्य मशीनें चलाने के लिए होता है।

8. ***चुम्बकीय ऊर्जा (Magnetic Energy):*** चुम्बक में जो ऊर्जा उसके चुम्बकत्व के कारण होती है, उसे चुम्बकीय ऊर्जा कहते हैं। आपने पढ़ा कि चुम्बक लोहे जैसी चुम्बकीय वस्तुओं को अपनी ओर खींचता है। इस कारण चुम्बक चुम्बकीय वस्तुओं को उठाने के काम आता है। विद्युत से चलने वाले बहुत से यंत्र (बिजली की टंकी, बिजली का पंखा, टेलिफोन) चुम्बकीय ऊर्जा का ही उपयोग करते हैं।

9. ***परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy):*** वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि परमाणुओं के अन्दर भी ऊर्जा छिपी है। जिसे परमाणु ऊर्जा कहते हैं इस पर नियंत्रणके पश्चात् अब तो इसका उपयोग मनुष्य की भलाई के लिए होने लगा है। परमाणु ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा बनाने के लिए बिजली घर ट्राम्बे, तारापुर, कोटा (राजस्थान), नरोरा (उत्तर प्रदेश) में लगाए गए हैं।

10. ***पेशीय ऊर्जा (Muscular Energy):*** जब आप कोई गेंद फेंकते हो तो अपनी मांस–पेशियों में स्थित पेशीय ऊर्जा का उपयोग करते हो। इसके कारण गेंद गति में आ जाती है अथवा गेंद में गतिज ऊर्जा आ जाती है। यह कार्य करते समय ऊर्जा में निम्नलिखित परिवर्तन आ जाते हैं।

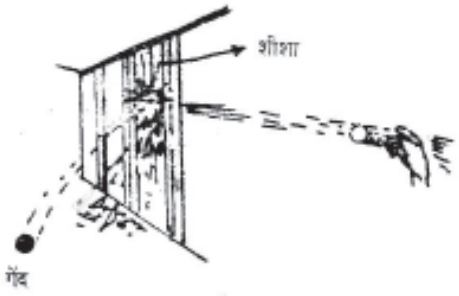

चित्रः गेंद से गति का स्थानांतरण

   मांस पेशियों की पेशीय ऊर्जा गेंद की गतिज ऊर्जा में बदल गई।

1.3 एक प्रकार की ऊर्जा का दूसरी प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तन

आप जानते हो कि कोई भी कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। जब आप ऊर्जा का उपयोग करके कोई कार्य करते हो तो कार्य करने के लिए लगाई गई ऊर्जा का क्या बनता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए कुछ उदाहरण समझने का प्रयत्न करें।

यदि इस प्रकार फेंकी हुई गेंद किसी शीशे से जा लगे तो उस शीशे के टुकड़े–टुकड़े हो जाएंगे और गेंद कुछ धीमी

गति से शीशे के दूसरी ओर जा गिरेगी। गेंद की गतिज ऊर्जा द्वारा किए गए इस कार्य में ऊर्जा में क्या परिवर्तन आए?

1. शीशा तोड़ने के लिए गेंद ने कुछ गतिज ऊर्जा का उपयोग किया जिस कारण उसकी गति कम हुई अथवा उसकी गतिज ऊर्जा कम हो गई।
2. शीशे के टुकड़े बिखर गए अर्थात् गेंद की कुछ ऊर्जा के कारण टूटे हुए शीशे के टुकड़ों में गतिज ऊर्जा आई।
3. कुछ ध्वनि उत्पन्न हुई। इस प्रकार गेंद की कुछ गतिज ऊर्जा ध्वनि ऊर्जा में बदल गई।

जब कोई कार्य करने के लिए ऊर्जा का उपयोग किया जाता है तो वास्तव में ऊर्जा किसी अन्य प्रकार की ऊर्जा में बदल जाती है।

दिवाली के अवसर पर जब आप पटाखे चलाते हो तो ऊर्जा का रूपांतरण किस प्रकार होता है?

पटाखे वास्तव में विस्फोटक मिश्रण है। उनमें रासायनिक ऊर्जा है। जब आप पटाखे चलाते हो तब रासायनिक ऊर्जा कई रूप धारण कर लेती है।

1. पटाखे चलाने से ध्वनि उत्पन्न होती है। इसलिए कुछ रासायनिक ऊर्जा ध्वनि ऊर्जा में बदल जाती है।
2. इससे कुछ चमक पैदा होती है। इसलिए, कुछ रासायनिक ऊर्जा प्रकाश ऊर्जा में बदल जाती है।
3. कागज जिसमें रासायनिक पदार्थ लपेटा हुआथा, उसके टुकड़े होकर बिखर जाते हैं। इसलिए कुछ रासायनिक ऊर्जा गतिज ऊर्जा में बदल जाती है।
4. यदि उसे आग लग जाए तो कुछ रासायनिक ऊर्जा ऊष्मा ऊर्जा में बदल जाएगी।

पेट्रोलियम पदार्थों में रासायनिक ऊर्जा का रूपांतरण अधिकतर नीचे दिए गए ढंगों से होता है–

ट्रैक्टर, ट्रक बस के इंजनों में	गतिज ऊर्जा	
स्टोव में	ऊष्मा ऊर्जा	मुख्यतया
लालटेन में	प्रकाश ऊर्जा	

आप जानते हैं कि भोजन शरीर में जाकर कार्य करने की क्षमता बढ़ाता है तथा शरीर का ताप बनाए रखने में सहायक है। इसलिए भोजन की रासायनिक ऊर्जा का मुख्यतया ऊष्मा ऊर्जा तथा गतिज ऊर्जा में रूपांतरण हो जाता है।

कुछ पदार्थों में विद्युत ऊर्जा का रूपांतरण चित्र में दिया गया है।

बल्ब में	प्रकाश ऊर्जा	
हीटर में	ऊष्मा ऊर्जा	
बिजली चुम्बक में.....	चुम्बकीय ऊर्जा	मुख्यतया
बिजली की रेल में.....	गतिज ऊर्जा	

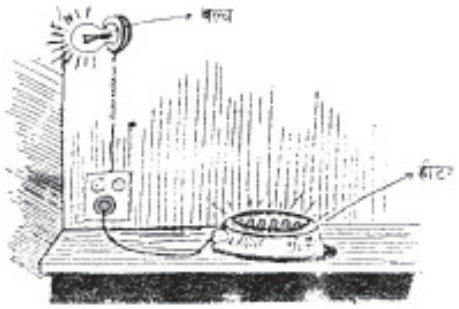

1.4 ऊर्जा के भिन्न-भिन्न रूपों में परस्पर संबंध

भिन्न–भिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के परस्पर दो प्रकार के सम्बन्ध कहे जा सकते हैं–

1. एक प्रकार की ऊर्जा दूसरी प्रकार की ऊर्जा में बदली जा सकती है। उदाहरणार्थ–जलती हुई मोमबत्ती में रासायनिक ऊर्जा प्रकाश ऊर्जा में बदल जाती है।

2. जब एक प्रकार की ऊर्जा का किसी अन्य प्रकार की ऊर्जा में रूपांतरण होता है तब ऊर्जा का कुछ भाग ऐसे रूप में बदल जाता है जिसका उस समय कोई लाभ नहीं होता। बिजली के बल्ब में सारी की सारी विद्युत ऊर्जा प्रकाश ऊर्जा में नहीं बदलती। इसका कुछ भाग ऊष्मा में भी बदल जाता है।

साईकिल चलाने के लिए लगाई गई सारी की सारी पेशीय ऊर्जा भी साईकिल को गतिज ऊर्जा देने के काम नहीं आती। क्या आप इससे सहमत हैं?

अपनी प्रगति जांचिए

(i) ऊर्जा के विभिन्न प्रकारों के नाम बताओ।

(ii) विद्युत ऊर्जा एवं रासायनिक ऊर्जा के दो–दो उदाहरण दो।

(iii) 'ऊर्जा कभी व्यर्थ नहीं होती' इस कथन की व्याख्या करो।

1.5 सारांश

कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। हम ऊर्जा का प्रयोग विभिन्न कार्य करने के लिए करते हैं। इन कार्यों के आधार पर ऊर्जा के विभिन्न प्रकार–गतिज ऊर्जा, स्थितिज ऊर्जा, रासायनिक ऊर्जा, ध्वनि ऊर्जा, ऊष्मा ऊर्जा, प्रकाश ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा, चुम्बकीय ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा एवं पेशीय ऊर्जा है। ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। ऊर्जा केवल एक रूप से दूसरे रूप में स्थानांतरित की जा सकती है। जबभी ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में स्थानांतरण किया जाता है, ऊर्जा का कुछ भाग ऊष्मा के रूप में व्यय हो जाता है।

मॉडल उत्तर

(i) ऊर्जा के निम्नलिखित प्रकार हैं–गतिज ऊर्जा, स्थितिज ऊर्जा, रासायनिक ऊर्जा, ध्वनि ऊर्जा, ऊष्मा ऊर्जा, प्रकाश ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा, चुम्बकीय ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा एवं पेशीय ऊर्जा।

(ii) विद्युत ऊर्जा–बल्ब की ऊर्जा, विद्युत हीटर की ऊर्जा।
रासायनिक ऊर्जा–माचिस की तीली को रगड़ने पर उत्पन्न ऊर्जा, कोयले की ऊर्जा

(iii) 1.3 में देखें

1.7 मुख्य शब्द

ऊर्जा–'कार्य करने की क्षमता'

ऊष्मा–'ऊर्जा का एक रूप'

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

'कक्षा सात के लिए विज्ञान', SCERT, Gurgaon.

कोहली, वि०के० 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं', विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला

इकाई-II(a)

अध्याय-2: ऊष्मा का संचरण (Transmission of Heat)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- ऊष्मा संचरण का वर्णन कर सकें।
- ऊष्मा के चालन की व्याख्या कर सकें।
- ऊष्मा के संवहन की व्याख्या कर सकें।
- ऊष्मा के विकिरण की व्याख्या कर सकें।

सरंचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 ऊष्मा का संचरण
2.3 ऊष्मा का चालन
2.4 ऊष्मा का संवहन
2.5 ऊष्मा का विकिरण
2.6 सारांश
मॉडल उत्तर
2.7 शब्दावली
2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

जब आप धूप में खड़े होते हैं अथवा आग के सामने बैठते हैं, तो आपको गर्मी का अनुभव होता है। बर्फ का टुकड़ा हाथ पर रखने से ठण्डा लगता है। अतः ऊष्मा वह भौतिक साधन है जिसके द्वारा हमें गरमी या सरदी का अनुभव होता है। आप जानते हैं कि ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है।

2.2 ऊष्मा का संचरण

सर्दियों में जब आप अंगीठी के पास बैठ कर हाथ सेकते हैं, तो आपके हाथों को ही नहीं अपितु सारे शरीर को गर्मी का अनुभव होता है। गरम दूध को आप खाली गिलास में डालें गिलास भी गरम हो जाएगा। किसी बर्तन से पानी लेकर जलते हुए स्टोव पर रखें, कुछ देर में पानी स्टोव की लौ से ऊष्मा लेकर उबलने लगता है। यदि लोहे की छड़ का एक सिरा ऊष्मा में रखा जाए, तो कुछ देर पश्चात् दूसरा सिरा भी गरम हो जाता है, परन्तु दूसरा सिरा पहले सिरे की अपेक्षा कम गरम हो पाता है। इसी प्रकार जब हम एक चम्मच को चाय से भरे प्याले में डालते हैं, तो चम्मच कुछ गरम हो जाती है और चाय कुछ ठण्डी। इन सभी क्रियाओं से यह सिद्ध होता है कि ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है।

''ऊष्मा के एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलने की क्रिया को ही ऊष्मा का 'संचरण' कहते हैं।''

दो वस्तुओं के बीच अथवा एक वस्तु से दो बिन्दुओं के बीच ऊष्मा का संचरण उनके तापान्तर (Temp. difference) के कारण होता हैं। ऊष्मा सदैव अधिक ताप से कम ताप की ओर संचरित होती है। यह ऊष्मा का संचरण तब तक होता है जब तक कि तापान्तर बना रहता है। दो वस्तुओं के बीच ऊष्मा का संचरण दोनों वस्तुओं के समान ताप होने तक होता है। यदि एक ही वस्तु के विभिन्न भागों में ऊष्मा संचरण हो रहा हो, तो विभिन्न भागों के ताप बराबर होने तक संचरण होता रहता है।

ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक निम्नलिखित तीन विधियों से संचरित होती है–

1. चालन (Conduction)
2. संवहन (Convection)
3. विकिरण (Radiation)

इनको समझने के लिए नीचे वाली उपमा बड़ी उपयोगी हैं मान लो कि हमारे पास सेबों की एक टोकरी है और उनको कक्षा के बालकों में बांटना है। बालकों की एक पंक्ति बनाओ, जिसका एक सिरा सेबों की टोकरी के पास हो। अब सेब निम्न विधि द्वारा बांटे जा सकते हैं–

पहला बालक एक सेब उठाकर अपने पास रख ले तथा फिर एक–एक उठाकर दूसरे बालक को देता रहे। दूसरा बालक भी एक सेब अपने पास रख लें तथा शेष एक–एक करके तीसरे बालक को देता रहे और यह क्रिया उस समय तक चलती रहे जब तक कि सेब अन्तिम बालक तक न पहुंच जाए। इस उपमा से स्पष्ट है कि–

(i) केवल सेब ही बालकों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा रहे हैं परन्तु बालक अपना स्थान नहीं छोड़ते।

(ii) प्रत्येक बालक एक–एक सेब अपने पास रख लेता है।

(iii) टोकरी के पास वाला सबसे पहले सेब प्राप्त करता है। और दूसरा उसके बाद तीसरा दूसरे के बाद इत्यादि।

यदि बालकों को कण माना जाए और सेबों को ऊष्मा तो ठीक इसी उदाहरण की तरह ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान पर कणों की सहायता से संचरित होती है।

2.3 ऊष्मा का चालन (Conduction of Heat)

यह ऊष्मा के संचरण की वह विधि है जिसमें ऊष्मा वस्तु के गरम भाग से ठण्डे भाग की ओर कणों की सहायता से संचरित होती है परन्तु कण स्वयं नहीं चलते। स्पष्ट है कि यह विधि बालकों में सेब बांटने की पहली विधि से मिलती है। सारे ठोस पदार्थ इसी विधि से गरम होते हैं। जब हम किसी धातु की छड़ के एक सिरे को आग में रखते हैं और दूसरे सिरे को हाथ में पकड़ते हैं तो अनुभव करते हैं कि धीरे–धीरे दूसरा सिरा भी गरम होने लगता है और थोड़ी देर में इतना गरम हो जाता है किउसे पकड़े रहना कठिन हो जाता है।

दाल, सब्जी पकाने की पतीली में चम्मच रखने से उसका पकड़ने वाला सिरा भी चालन विधि द्वारा गरम हो जाता है।

ऊष्मा चालन को निम्नलिखित प्रयोग द्वारा समझा जा सकता है–

1. तांबे की तार के एक टुकड़े के सिरे को स्टैण्ड में कसो। इस तार पर मोम की सहायता से छोटी–छोटी लोहे की कीलें चिपकाओ। अब इस तार के एक सिरे को स्पिरिट लैम्प से गरम करो। तार गरम होने पर लोहे की कीलें एक–एक करके गरम किए गए सिरे की ओर से गिरनी आरम्भ होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तांबे के मोटे तार के टुकड़े के एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर, धीरे–धीरे ऊष्मा संचरित होती है।

ऊष्मीय चालकता की व्याख्या द्रव्य की अणु प्रकृति से की जा सकती है। सभी पदार्थ अणुओं से मिलकर बने हैं। ये अणु अपने स्थान पर दोलन करते हैं। जब छड़ के एक सिरे को आग में रखते हैं, तो इस सिरे के अणु ऊष्मीय ऊर्जा प्राप्त करके तेजी से दोलन करते हैं। ये तेज दोलित अणु अपने पड़ौसी अणुओं को प्रभावित करते हैं जिसमें ये अणु तेजी से दोलन करते हैं। यह प्रक्रम आगे चलता रहता है और ऊष्मीय ऊर्जा एक सिरे से दूसरे सिरे तक स्थानांतरित होती रहती है।

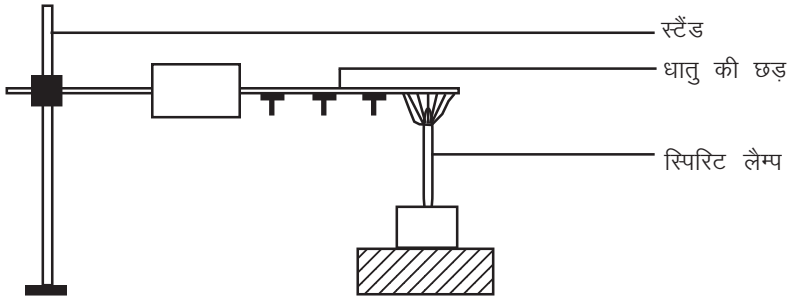

ऊष्मा चालन दर्शाने का प्रयोग

यह समझने के लिए कि विभिन्न वस्तुओं की चालकता भिन्न–भिन्न होती है, निम्नलिखित प्रयोग करों–

एल्यूमिनियम और लोहे की बनी दो समान लम्बाई व समान मोटाई की छड़ें लो। दोनों छड़ों पर मोम की सहायता से बराबर–बराबर दूरी पर लोहे की कीलें चिपका दो। उस बिन्दु को स्पिरिट लैम्प से गरम करो जहां पर दोनो छड़ें एक–दूसरे को स्पर्श करें। छड़ों को गरम करने से मोम पिघलने लगता है। परन्तु छड़ों में बराबर दूरी पर लगी कीलों में से पहली कील एल्यूमिनियम की छड़ से गिरती है तथा बादमें लोहे की छड़ से। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि एल्यूमिनियम लोहे की अपेक्षा ऊष्मा का अधिक चालक है। जिन पदार्थों में ऊष्मा उनके एक सिरे से एक दूसरे सिरे तक आसानी से पहुंच जाती है, ऊष्मा के **सुचालक** कहलाते हैं।

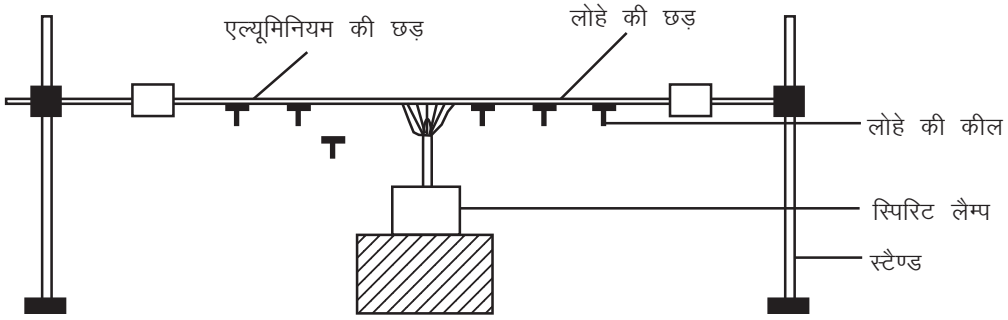

ऊष्मा चालन भिन्न–भिन्न पदार्थों में भिन्न–भिन्न होता है।

सभी धातुएं ऊष्मा की सुचालक है। चांदी और तांबा विशेष रूप से बहुत अच्छे **सुचालक** हैं। वायु, लकड़ी, चमड़ा, ऊन, कागज आदि में से ऊष्मा का स्थानांतरण कम अथवा नहीं होता है। अतः ये पदार्थ ऊष्मा के **कुचालक** है।

2.4 ऊष्मा का संवहन (Convection of Heat)

संवहन ऊष्मा के संचरण की वह विधिहै जिसमें ऊष्मा वस्तु के कणों द्वारा एक भाग से दूसरे भाग में चली जाती है। वस्तु के ठंडे कण ऊष्मा के स्त्रोत (Source) के पास जाते हैं और गरम होकर हल्के हो जाने के कारण वे ऊपर उठते हैं और दूसरे ठण्डे कण उनके स्थान पर गरम हो जाने के लिए आ जाते हैं। सभी द्रव तथा गैसें इसी रीति द्वारा गरम

होती है। संवहन विधि में ठण्डे कणों के आने पर और गरम कणों के जाने से एक क्रम बन जाता है, जिसे संवहन धारा (Convection Current) कहते हैं।

किसी बर्तन का द्रव भी इसी प्रकार से गरम होता है। बर्तन की तली का द्रव ऊष्मीय साधन से सीधे सम्पर्क के कारण जल्दी गरम हो जाता है। द्रव गरम होकर हल्का हो जाता है तथा ऊपर उठने लगता है। ठण्डा द्रव ऊपर से नीचे तली की ओर आ जाता है। यह द्रव भी गरम होने के बाद ऊपर उठ जाता है और इसके स्थान पर कम ताप का द्रव आ जाता है। इस प्रकार पूरा द्रव गरम हो जाता है।

संवहन को समझने के लिए निम्नलिखित प्रयोग करो–

प्रयोग–1

एक परखनली में पानी भरो। इसमें एक बर्फ का टुकड़ा एक भार के साथ बांधकर डालो, जिससे वह परखनली की तली में बैठ जाए। इस चित्र की तरह परखनली को पकड़ कर द्रव के तल को गर्म करो। गरम करने पर हम देखते हैं कि नली के ऊपरी भाग का पानी उबलने लगता है, परन्तु परखनली की बर्फ बहुत कम पिघलती है। इस प्रयोग से दो बातें स्पष्ट जाती हैं–

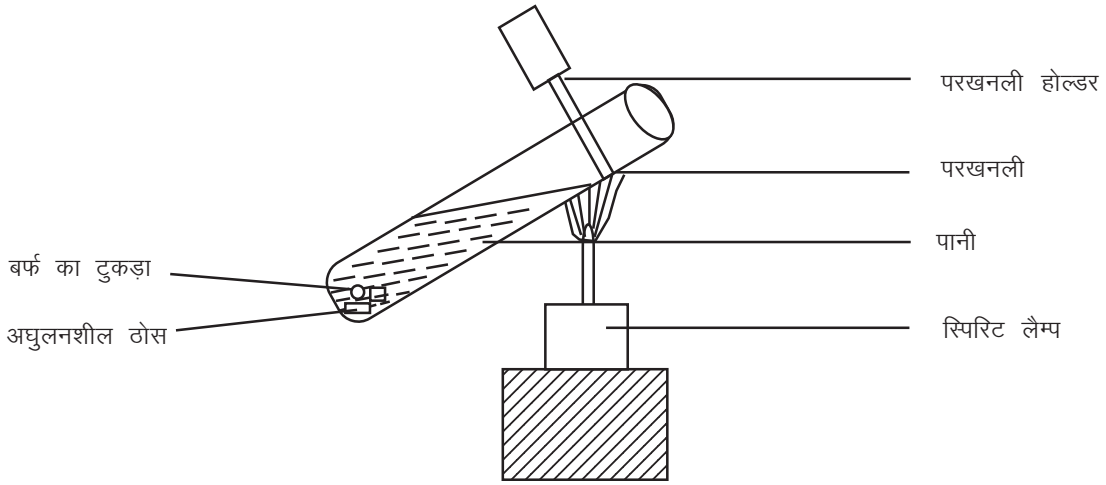

(i) पानी ऊष्मा का कुचालक है।

(ii) पानी को ऊपर की ओर गरम करने पर नीचे की ओर ऊष्मा का संवहन नहीं होता। द्रवों में ऊष्मा का संवहन केवल नीचे से ऊपर की ओर होता है।

प्रयोग–2

गैसें (वायु) भी ऊष्मा की कुचालक है–

एक परखनली लो। इसके मुंह में उंगली डालकर परखनली की तलीको गरम करो। हम देखते हैं कि परखनली को देर तक गरम करते रहने पर भी उंगली गरम अनुभव नहीं करता है। यह प्रयोग किसी अन्य गैस के साथ दोहराया जा सकता है। अतः हम देखते हैं कि वायु एवं अन्य सभी गैसें ऊष्मा की कुचालक हैं।

2.5 ऊष्मा का विकिरण (Radiation of Heat)

हम जानते हैं कि पथ्वी से कुछ ऊँचाई तक हवा है और उसके बाद सूर्य तक कोई माध्यम नहीं है। फिर भी हमें सूर्य से ऊष्मा और प्रकाश मिलते हैं। चालन की क्रिया में पदार्थ के अणु एक से दूसरे को ऊष्मा देते हैं। संवहन की क्रिया में भी पदार्थ के अणु एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हुए ऊष्मा ले जाते हैं। अतः किसी पदार्थ के माध्यम के बिना ऊष्मा का चालन तथा संवहन नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि सूर्य सेऊष्मा किसी अन्य विधि से पथ्वी तक पहुंचती है।

जिस विधि में ऊष्मा बिना किसी माध्यम की सहायता से संचरित होती है उसे विकिरण कहते हैं। अतः विकिरण ऊष्मा

संचरण की वह विधि है जिसमें ऊष्मा एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर सीधी रेखाओं में जाती है और बीच के माध्यम को गरम नहीं करती।

प्रयोग–

एक फ्लास्क के मुंह पर एक मुड़ी हुई कांच की पतली नली लगाओ। इस नली में थोड़ा सा रंगीन द्रव डालो। फ्लास्क के आधे भाग पर बाहर की ओर कालिख (काजल या काला रंग) और दूसरे आधे भाग पर सफेद रंग लगाओ।

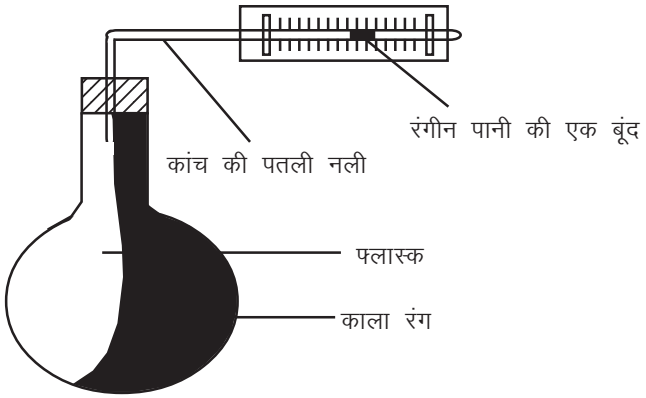

अब फ्लास्क के काले भाग के समीप एक गर्म पानी से भरी केतली या पतीली रखो। फ्लास्क का काला भाग केतली की गरमी को आसानी से शोषित कर लेता है, जिसके कारण कांच की नली का रंगीन द्रव गतिशील हो जाता है। यह ताप में परिवर्तन के कारण होता हैं अतः इस उपकरण को तापदर्शी कहा जाता है।

उबलते हुए पानी की केतली को तापदर्शी के काले कालिख वाले भाग से लगभग 30cm की दूरी पर रखो। कुछ समय बाद हम देखते हैं कि तापदर्शी की नली का रंगीन द्रव दाईं ओर को खिसकने लगता है। द्रव के खिसकने का कारण यह है कि उबलते हुए पानी की ऊष्मा के कारण तापदर्शी के अन्दर की हवा गरम हो जाती है। परिणामस्वरूप हवा फैल जाती है। और हवा के फैलने के कारण द्रव खिसकता है। तापदर्शी और पतीली के बीच में केवल हवा है जो ऊष्मा की कुचालक हैं इस क्रिया में चालन के द्वारा ऊष्मा का संचरण नहीं होता।

तापदर्शी और पतीली के बीच एक कार्ड बोर्ड का टुकड़ा रखते हैं। हम देखते हैं कि अब रंगीन द्रव दाईं ओर नहीं खिसकता है। यदि संवहन विधि द्वारा ऊष्मा फ्लास्क तक गई होती तो इस बार भी फ्लास्क गरम हो जाता। अतः ऊष्मा का स्थानान्तरण संवहन विधि द्वारा भी नहीं हुआ।

अतः इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊष्मा किसी अन्य विधि द्वारा फ्लास्क तक पहुंची है। इस विधि को **ऊष्मा का विकिरण** कहते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) ऊष्मा के संचरण की विभिन्न विधियों के नाम बताओ।

(ii) चालन एवं संवहन में अंतर स्पष्ट करो।

2.6 सारांश

ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है। यह वह भौतिक साधन है जिसके द्वारा हमें सर्दी या गर्मी का अनुभव होता है। ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति करती है। ऊष्मा के एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति करने करने की क्रिया को ऊष्मा का संचरण कहा जाता है। ऊष्मा सदैव अधिक ताप से कम ताप वाले स्थान की ओर संचरित होती है। ऊष्मा संचरण की तीन विधियां–चालन, संवहन और विकिरण है।

चालन विधि में ऊष्मा वस्तु के गरम भाग से ठण्डे भाग की ओर कणों की सहायता से संचरित होती है परन्तु कण स्वयं नहीं चलते। संवहन विधि में ऊष्मा वस्तु के कणों द्वारा एक भाग से दूसरे भाग की ओर संचरित होती है। विकिरण में ऊष्मा बिना किसी माध्यम के संचरित होती है।

मॉडल उत्तर

(i) ऊष्मा संचरण की विभिन्न विधियां–चालन, संवहन और विकिरण हैं।

(ii) चालन विधि में ऊष्मा वस्तु के गरम भाग से ठण्डे भाग की ओर कणों की सहायता से संचरित होती है परन्तु कण स्वयं नहीं चलते। जबकि संवहन विधि में ऊष्मा वस्तु के कणों द्वारा एक भाग से दूसरे भाग की ओर संचरित होती है।

2.7 मुख्य शब्द

ऊष्मा–वह भौतिक साधन अथवा ऊर्जा का रूप जिससे हमें गर्मी या सर्दी का अनुभव होता है।

संवहन धारा–ठण्डे कणों का ऊष्मा स्त्रोत की ओर आने और गर्म कणों का स्त्रोत से दूर जाने से बना क्रम

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

'कक्षा सात के लिए विज्ञान', NCERT, Delhi

इकाई-II(a)

अध्याय-3: परमाणु संरचना (Atomic Structure)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- कैथोड़ किरणों की उत्पत्ति की व्याख्या कर सकें।
- कैथोड़ किरणों के गुणों की सूची बना सकें।
- ऐनोड़ किरणों की उत्पत्ति की व्याख्या कर सकें।
- ऐनोड़ किरणों के गुणों की सूची बना सकें।
- प्रोटॉन का वर्णन कर सकें।
- इलैक्ट्रॉन का वर्णन कर सकें।
- न्यूट्रॉन का वर्णन कर सकें।
- रदरफोर्ड के प्रयोग की व्याख्या कर सकें।
- रदरफोर्ड नाभिकीय मॉडल का वर्णन कर सकें।
- परमाणु संख्या एवं द्रव्यमान संख्या बता सकें।
- रदरफोर्ड मॉडल की कमी की व्याख्या कर सकें।
- परमाणु की वर्तमान संकल्पना का वर्णन कर सकें।
- परमाणु के अंदर इलैक्ट्रानों की व्यवस्था की व्याख्या कर सकें।
- पोटाशियम तथा कैल्शियम तत्वों की असामान्य स्थिति बता सकें।
- कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास बता सकें।

सरंचनाः

3.1 प्रस्तावना
3.2 कैथोड़ किरणों की उत्पत्ति
3.3 कैथोड़ किरणों के गुण
3.4 इलैक्ट्रॉन
3.5 ऐनोड़ किरणों की उत्पत्ति
3.6 प्रोटॉन
3.7 न्यूट्रॉन
3.8 रदरफोर्ड की खोज
3.9 परमाणु का रदरफोर्ड नाभिकीय मॉडल
3.10 परमाणु संख्या
3.11 द्रव्यमान संख्या
3.12 परमाणु के रदरफोर्ड मॉडल की कमी
3.13 परमाणु की वर्तमान (बोर) संकल्पना

3.14 परमाणु के अन्दर इलैक्ट्रॉनों की व्यवस्था
3.15 पोटाशियम तथा कैल्शियम तत्वों की असामान्य स्थिति
3.16 कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के इलैक्ट्रॉनिक विन्यास
3.17 सारांश
मॉडल उत्तर
3.18 मुख्य शब्द
3.19 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

परमाणु तीन मूलकणों (fundamental particles) से बने हैंः इलेक्ट्रॉन (electrons), प्रोटॉन (Protons) और न्यूट्रॉन (neutrons)। इलेक्ट्रॉन पर ऋण–आवेश (negative charge) होता है, प्रोटॉन पर धन–आवेश (positive charge) होता है, जबकि न्यूट्रॉन पर कोई आवेश नहीं होता है, यह उदासीन (neutral) है।

प्रोटॉन और न्यूट्रॉन, परमाणु के केन्द्र पर छोटे से नाभिक (nucleus) में उपस्थित होते हैं। परमाणु का लगभग सम्पूर्ण द्रव्यमान नाभिक में होता है क्योंकि इलेक्ट्रॉन, जो कि नाभिक के बाहर होते हैं, में अत्यधिक कम द्रव्यमान (mass) होता है। प्रोटॉनों की उपस्थिति के कारण, नाभिक पर धन–आवेश होता है।

इलेक्ट्रॉन नाभिक के बाहर रहते हैं। परमाणु में इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर निश्चित वत्तीय मार्गों में जो ऊर्जा–स्तर या कोश (Shells) कहलाते हैं, तेजी से परिक्रमा करते हैं क्योंकि परमाणु पूर्ण रूप से वैद्युत उदासीन होता (धन या ऋण आवेश रहित) है, इसलिए, नाभिक के बाहर इलेक्ट्रॉनों की संख्या, नाभिक के अन्दर प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होती है।

सभी तत्वों (हाइड्रोजन छोड़कर) के परमाणु तीन अवपरमाण्विक कणों (sub-atomic particles): इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से बने हुये हैं। हाइड्रोजन परमाणु केवल एक इलेक्ट्रॉन और एक प्रोटॉन से बना हुआ है। इसमें कोई न्यूट्रॉन नहीं होता है। विभिन्न तत्वों के परमाणु, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की संख्या में भिन्न होते हैं। हम अब वर्णन करेंगे कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कैसे खोजे गये तथा परमाणु की संरचना बताने के लिए एक साथ रखे गये।

3.2 कैथोड किरणों की उत्पत्ति-इलेक्ट्रॉन की खोज (Production of Cathode Rays-Discovery of Electron)

परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की उपस्थिति को जे०जे० थॉमसन (J.J. Thomson) द्वारा, अत्यधिक निम्न दाब पर गैस में से उच्च वोल्टता की विद्युत प्रवाहित करके, सन् (1897) में प्रदर्शित किया गया। उच्च वैद्युत वोल्टता प्रयोग करने का उद्देश्य गैस के परमाणु को सूक्ष्म कणों में तोड़ने के लिए वैद्युत ऊर्जा उपलब्ध कराना है। आगे बढ़ने से पहले, हम विसर्जन नलिका की संरचना का वर्णन करेंगे जिसका उपयोग कैथोड किरणों को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है और जिससे इलेक्ट्रॉन की खोज हो सकी।

सामान्य विसर्जन नलिका कांच की बनी एक लम्बी नली होती है जिससे दोनों सिरो पर धातु की एक–एक प्लेट लगी रहती है। (चित्र 1)। इन धातु–प्लेटों को इलेक्ट्रोड कहते हैं। इलेक्ट्राड, जो बैटरी के धन–ध्रुव से जुड़ा होता है, एनोड (धन–इलेक्ट्रोड) कहलाता है और वह इलेक्ट्रोड जो बैटरी के ऋण–ध्रुव से जुड़ा होता है, कैथोड (ऋण–इलेक्ट्रॉड) कहलाता है। विसर्जन नलिका में एक पार्श्वनली होती है जिसके द्वारा निर्वात–पम्प (vacuum pump) का उपयोग करके वायु (या दूसरी गैसों) को बाहर निकाला जा सकता है ताकि प्रयोगों को निम्न दाब पर सम्पन्न कराया जा सके। निम्नलिखित तर्कों में हम विसर्जन नलिका में वायु को गैस की तरह उपयोग करेंगे–

(i) जब विसर्जन नलिका के अन्दर वायु, वायुमण्डलीय दाब पर होती है और इलेक्ट्रोडों को 10,000 (या अधिक) वोल्ट की उच्च वैद्युत वोल्टता उपलब्ध करायी जाती है, विसर्जन नलिका में वायु में से विद्युत–धारा प्रवाहित नहीं होती है।

(ii) यदि विसर्जन नलिका के अंदर वायु का दाब लगभग मर्करी के 1 मि०मी० तक कम कर दिया जाता है और उच्च वोल्टता को फिर से उपलब्ध कराया जाता है, वायु में से विद्युत–धारा प्रवाहित होने लगती है और नली के अंदर वायु द्वारा प्रकाश उत्सर्जित किया जाता है। विसर्जन नलिका में ली गयी गैस के अनुसार प्रकाश का रंग परिवर्तित होता है।

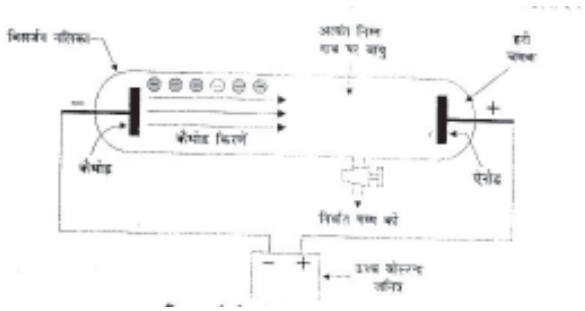

चित्रः कैथोड किरणों की उत्पत्ति

(iii) जब विसर्जन नलिका में वायु का दाब लगभग मर्करी के 0.001 मि०मी० तक कम कर दिया जाता है और इलेक्ट्रोडों को उच्च वोल्टता उपलब्ध करायी जाती है, वायु द्वारा प्रकाश का उत्सर्जन रूक जाता है। यद्यपि, विसर्जन नलिका के अंदर अब अंधेरा दिखायी देता है, कैथोड के विपरीत सिरे पर विसर्जन नलिका की दीवारें हरे प्रकाश से चमकने लगती है (चित्र 1)।

अब यह ज्ञात हो चुका है कि कुछ अदश्य किरणें कैथोड पर उत्पन्न होती है और जब यह किरणें कांच की नली से टकराती हैं, वे हरा प्रकाश उत्सर्जित करती है। क्योंकि यह किरणें कैथोड पर उत्पन्न होती हैं, वे कैथोड किरणें कहलाती हैं।

3.3 कैथोड किरणों के गुण
(Properties of Cathode Rays)

1. **कैथोड किरणें सीधी रेखाओं में अभिगमन करती हैं।** जब किसी अपारदर्शी वस्तु जैसे धातु का धनचिन्ह (metal cross) विसर्जन नलिका के अन्दर कैथोड किरणों के मार्ग में रखा जाता है, कैथोड के विपरीत सिरे पर धातु के धनचिन्ह की छाया बनती है (चित्र 2)।

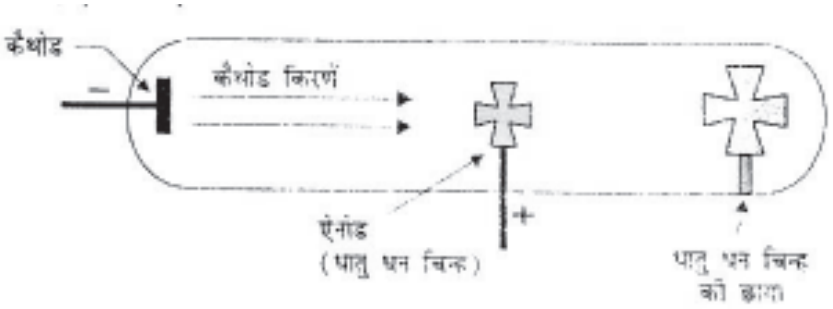

चित्रः कैथोड किरणें, अपने मार्ग में रखे वस्तुओं की छाया डालती है।

धातु के धन–चिन्ह की छाया तभी बन सकती है, जबकि कैथोड किरणें सीधी रेखा में अभिगमन करें और धातु के धन–चिन्ह के कोनों की ओर न मुड़ सकती हों। यह वास्तविकता कि कैथोड किरणें अपने मार्ग में रखे हुए वस्तु की छाया डालती है, दर्शाती है कि कैथोड किरणें सीधी रेखा में अभिगमन करती हैं।

2. **कैथोड किरणें यांत्रिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं।** यदि अभ्रक (mica) के ब्लेडों वाले हल्के क्षेपणी पहिये (paddle wheel) को विसर्जन नलिका में इस प्रकार से रखा जाता है कि कैथोड किरणें केवल क्षेपणी पहिये के

ऊपरी भाग के ब्लेडों से टकराती हैं, क्षेपणी पहिया घूमने लगता है। (चित्र 3)।

चित्रः कैथोड किरणें अपने मार्ग में रखे हुए क्षेपणी पहिये को घुमा सकती है।

क्षेपणी पहिया तभी घुमाया जा सकता है जबकि कैथोड किरणें, द्रव्यमान (mass) और गतिज ऊर्जा (kinetic energy) युक्त द्रव्य कणों (material particles) से बनी हों यह वास्तविकता कि कैथोड किरणें यांत्रिक प्रभाव (जैसे हल्के क्षेपणी पहिये का घूमना) उत्पन्न कर सकती है, प्रदर्शित करती है कि कैथोड किरणें द्रव्यमान और गतिज ऊर्जा युक्त कणों की किरणपुंज हैं।

3. **कैथोड किरणें ऋण आवेशी हैं।** जब कैथोड किरणों के मार्ग में वैद्युत क्षेत्र प्रयोग किया जाता है, वे वैद्युत क्षेत्र के धन प्लेट की ओर मुड़ जाती हैं। (चित्र 4)।

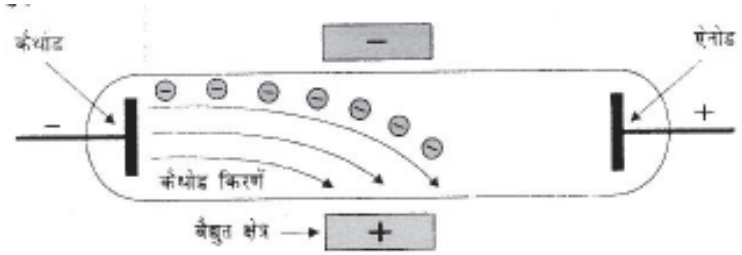

चित्रः कैथोड किरणों पर वैद्युत क्षेत्र का प्रभाव। वे वैद्युत क्षेत्र के धन प्लेटों की ओर मुड़ जाती हैं।

कैथोड किरणें, वैद्युत क्षेत्र के धन प्लेट की ओर तभी मुड़ सकती हैं, जब उनमें ऋण आवेश हो। (क्योंकि विपरीत आवेश एक–दूसरे को आकर्षित करते हैं)। इसलिए, यह वास्तविकता कि कैथोड किरणें वैद्युत क्षेत्र के धन प्लेट की ओर मुड़ती है, प्रदर्शित करती है कि कैथोड किरणें ऋण आवेशी कणों से बनी है। कैथोड किरणें चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा भी मुड़ जाती हैं। चुम्बकीय क्षेत्र में भी कैथोड किरणों के मुड़ने की दिशा प्रदर्शित करती हैं कि उनमें गतिशील ऋण आवेशी कण होते हैं।

4. **कैथोड किरणों की प्रकृति, विसर्जन नलिका में ली गयी गैस की प्रकृति अथवा कैथोड के द्रव्य पर निर्भर नहीं करती है।**

5. **कैथोड किरण के कण का द्रव्यमान, परमाणु जिससे यह बना है, द्रव्यमान की तुलना में काफी कम होता है।**

उपर्युक्त विवरण से हम निष्कर्ष निकालते हैं कि कैथोड किरणें विसर्जन नलिका के अन्दर कैथोड से ऐनोड की ओर उच्च वेग से गतिशील ऋण आवेशी कणों की धारा है। ऋण कणों की प्रकृति, विसर्जन नलिका में ली गयी गैस की प्रकृति अथवा कैथोड के द्रव्य पर निर्भर नहीं करती है। विसर्जन नलिका में भिन्न–भिन्न गेसें लेने अथवा कैथोड के लिए भिन्न–भिन्न धातुएं करने पर भी समान प्रकार के ऋण कण उत्पन्न होते हैं। विभिन्न गैसों से प्राप्त कैथोड किरण के कणों के लिए आवेश–द्रव्यमान ($\frac{e}{m}$ अनुपात) ज्ञात किया गया और एक जैसा पाया गया। इसने दर्शाया कि सभी

प्रकार के परमाणुओं में एक जैसे ऋण कण होते हैं। कैथोड किरणों में उपस्थित ऋण आवेशी कण इलेक्ट्रॉन (electron) कहलाते हैं। हम अब कह सकते हैं कि कैथोड किरणें इलेक्ट्रॉन कहलाने वाले ऋण आवेशी कणों की धारा है जो कि विसर्जन नलिका के कैथोड से निकलते हैं जब कम दाब पर गैस में से विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है। दूसरे शब्दों में, कैथोड किरणें तीव्र गतिवाले इलेक्ट्रानों से बनी होती है। क्योंकि सभी गैसें कैथोड किरणें बनाती हैं, इसका तात्पर्य है कि सभी परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन होते हैं। अतः इलेक्ट्रॉन सभी परमाणुओं के सामान्य अवयव है।

कैथोड किरणें कैसे बनती हैं?
(How Cathode Rays are Formed)

विसर्जन नलिका में ली गयी गैस परमाणुओं से बनी होती है और सभी परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन होते हैं जब हम उच्च वैद्युत वोल्टेज प्रयोग करते हैं, वैद्युत ऊर्जा गैस के परमाणुओं में से कुछ इलेक्ट्रानों को बाहर निकालती है। यह इलेक्ट्रॉन कैथोड किरणें बनाते हैं। इसलिए, कैथोड किरणें का बनना प्रदर्शित करता है कि सभी परमाणुओं में उपस्थित कणों में से एक ऋण आवेशी इलेक्ट्रॉन है। अब हम इलेक्ट्रॉन का विस्तार से वर्णन करेंगे।

3.4 इलेक्ट्रॉन
(Electron)

इलेक्ट्रॉन सभी तत्वों के परमाणुओं में पाये जाने वाला ऋण आवेशी कण है। इलेक्ट्रॉन परमाणु में नाभिक के बाहर स्थित होते हैं। केवल हाइड्रोजन परमाणु में एक इलेक्ट्रॉन होता है, अन्य सभी परमाणुओं में से एक से अधिक परमाणु होते हैं।

इलेक्ट्रॉन के लक्षण
(Characteristics of an Electron)

(i) ***द्रव्यमान (Mass):*** इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान, हाइड्रोजन परमाणु (जो कि न्यूनतम द्रव्यमान परमाणु है।) के द्रव्यमान का लगभग $\frac{1}{1840}$ होता है। क्योंकि हाइड्रोजन परमाणु का द्रव्यमान 1 ए०एम०यू० है, हम कह सकते हैं कि इलेक्ट्रॉन का आपेक्षिक द्रव्यमान (relative mass) $\frac{1}{1840}$ ए०एम०यू० है। इलेक्ट्रॉन का निरपेक्ष या वास्तविक (absolute) द्रव्यमान, यद्यपि 9×10^{-28} ग्राम है।

(ii) ***आवेश (Charge):*** इलेक्ट्रॉन पर निरपेक्ष या वास्तविक आवेश ऋण आवेश का 1.6×10^{-19} कूलाम (coulomb) होता है। अब, ज्ञात किया जा चुका है कि किसी कण पर 1.6×10^{-19} कूलाम सबसे कम ऋण आवेशहोता हैं इसलिए, इसे ऋण आवेश की इकाई माना गया है। इसका तात्पर्य है कि इलेक्ट्रॉन पर 1 इकाई ऋण आवेश होता है। दूसरे शब्दों में, इलेक्ट्रॉन का आपेक्षिक आवेश है, –1 (ऋण एक)।

3.5 ऐनोड किरणों (या धन किरणों) की उत्पत्ति—प्रोटॉन की खोज
(Production of Anode rays (or positive rays)–Discovery of Proton)

कैथोड किरणों की उत्पत्ति से ज्ञात हुआ कि सभी परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन कहलाने वाले ऋण आवेशी कण होते हैं। अब, परमाणु वैद्युत उदासीन होता है, इसलिए, इलेक्ट्रॉनों के ऋण आवेश को संतुलित करने के लिए इसमें कुछ धन आवेशी कणों काहोना आवश्यक है। वास्तव में यह प्रयोगों द्वारा पाया गया कि सभी परमाणुओं में प्रोटॉन कहलानेवाले धन आवेशी कण होते हैं। परमाणुओं में प्रोटॉनों की उपस्थिति गोल्डस्टीन (Goldstein) द्वारा दर्शायी गयी। हम अब एनोड किरणों (या धन किरणों) की उत्पत्ति का वर्णन करेंगे जिस ने प्रोटॉन की खोज का रास्ता बताया।

धन किरणों की उत्पत्ति में छिद्रित कैथोड वाली एक विसर्जन नलिका का उपयोग किया जाता है। छिद्रित कैथोड, छेदों वाला एक कैथोड होता है। यह छिद्र उनमें से धन किरणों को निकलने के लिए होते हैं। जब लगभग 1000 वोल्ट की उच्च वोल्टता छिद्रित कैथोड वाली मरकरी के लगभग 0.001 मि०मी० के अत्यंत निम्न दाब पर वायु की

धारक विसर्जन नलिका में प्रयोग की जाती है, कैथोड के पीछे हल्की लाल चमक दिखलाई देती है (चित्र 5)।

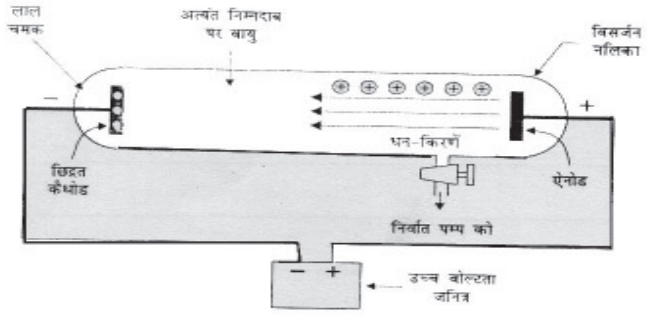

चित्रः एनोड किरणों या धन किरणों की उत्पत्ति

अब यह ज्ञात है कि एनोड पर कुछ किरणें उत्पन्न होती हैं और जब यह किरणें विसर्जन नलिका की दीवारों से टकराती हैं, वे हल्का लाल प्रकाश उत्पन्न करती हैं। यह किरणें क्योंकि एनोड (धन इलेक्ट्रॉन) पर उत्पन्न होती हैं, वे एनोड किरणें या धन किरणें कहलाती हैं। धन किरणों के गुणों का अध्ययन वैसे ही प्रयोगों को करके किया गया जैसे कि कैथोड किरणों पर प्रयोगों को किया गया था। एनोड किरणों के कुछ गुणों को नीचे दिया गया है।

एनोड किरणों (या धन किरणों) के गुण
(Properties of Anode Rays (or positive rays)

1. **एनोड किरणें सीधे रेखाओं में अभिगमन करती हैं।** इसे इस वास्तविकता द्वारा प्रदर्शित किया जाता है कि वे अपने मार्ग में रखे हुए वस्तुओं की छाया डालती है।
2. **ऐनोड किरणें यांत्रिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं।** इसे इस वास्तविकता द्वारा प्रदर्शित किया जाता है कि वे अपने मार्ग में रखे हुए हल्के क्षेपणी पहिये (पैडल व्हील) को घुमा सकती हैं।
3. **ऐनोड किरणें धन आवेशी हैं।** इसे इस वास्तविकता द्वारा प्रदर्शित किया जाता है कि ऐनोड किरणें वैद्युत क्षेत्र के ऋण प्लेट की ओर मुड़ जाती है।
4. **ऐनोड किरणों की प्रकृति विसर्जन नलिका में ली गयी गैस पर निर्भर होती है।**
5. **ऐनोड किरण के कण का द्रव्यमान प्रायः उस परमाणु के बराबर होता है, जिससे वह बना होता है।**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एनोड किरणें (या धन किरणें) विसर्जन नलिका के एनोड से निकलने वाले धन आवेशी कणों की धारा है, जब बहुत ही कम दाब पर गैस में से विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है। अतः, एनोड किरणें धन आवेशी कणों से बनी हुई हैं। धन किरण के कणों का आवेश और द्रव्यमान उस गैस पर निर्भर होता है जिसे विसर्जन नलिका में लिया जाता है। भिन्न–भिन्न गैसें भिन्न–भिन्न प्रकार की धन किरणें उत्पन्न करती हैं जिनमें कणों के भिन्न–भिन्न द्रव्यमान और भिन्न–भिन्न आवेश होते हैं, दूसरे शब्दों में आवेश–द्रव्यमान अनुपात ($\frac{e}{m}$ अनुपात) विभिन्न गैसों से उत्पन्न धन किरणों के लिए स्थिर नहीं होते हैं, वे विसर्जन नलिका में गैस की प्रकृति के साथ बदलते रहते हैं। हाइड्रोजन गैस सबसे हल्की गैस और हाइड्रोजन परमाणु सबसे हल्का परमाणु है। इसलिए, हाइड्रोजन गैस से प्राप्त धन कण सबसे हल्के होते हैं और उनका आवेश–द्रव्यमान अनुपात सबसे अधिक होता है। हाइड्रोजन गैस से प्राप्त धन किरणे, एक जैसे धन कणों से बनी होती हैं। ये कण प्रोटॉन (proton) कहलाते हैं। अतः हाइड्रोजन गैस से प्राप्त धन किरणें प्रोटॉनों से बनी होती हैं। हाइड्रोजन परमाणु से इलेक्ट्रॉन को हटाने से प्रोटॉन बनता है।

धन किरणें कैसे बनती हैं
(How Positive Rays are Formed)

विसर्जन नलिका के अंदर गैस पर जब उच्च वैद्युत वोल्टता प्रयोग की जाती है, वैद्युत ऊर्जा गैस परमाणुओं को ऋण आवेशी कणों (इलेक्ट्रॉनों) और धन आवेशी कणों में तोड़ देती है। यह धन आवेशी कण एनोड किरणें या धन किरणें बनाते हैं। अतः एनोड किरणें, गैस परमाणुओं से एक या अधिक इलेक्ट्रॉन हटाने से बने हुये धन आवेशी कणों से बनी होती है।

3.6 प्रोटॉन (Proton)

प्रोटॉन, सभी तत्वों के परमाणुओं में पाये जाने वाला एक धन आवेशी कण है। प्रोटॉन, परमाणु के नाभिक में उपस्थित होते हैं। केवल हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक में एक प्रोटॉन होता है, अन्य सभी तत्वों के परमाणुओं में एक से अधिक प्रोटॉन होते हैं।

प्रोटॉन के लक्षण (Characteristics of A Proton)

(i) ***द्रव्यमान (Mass):*** प्रोटॉन वास्तव में हाइड्रोजन परमाणु है जो अपना इलेक्ट्रॉन खो चुका होता है। इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान, क्योंकि बहुत कम होता है, हम कह सकते हैं कि प्रोटॉन का द्रव्यमान, हाइड्रोजन परमाणु के द्रव्यमान के बराबर होता है। परन्तु हाइड्रोजन परमाणु का द्रव्यमान 1 ए०एम०यू० है, इसलिए, प्रोटॉन का आपेक्षिक द्रव्यमान (relative mass) 1 ए०एम०यू० है। यदि हम प्रोटॉन के द्रव्यमान की तुलना इलेक्ट्रॉन के साथ करें, प्रोटॉन का द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन से 1840 गुना होता है। प्रोटॉन का निरपेक्ष द्रव्यमान (absolute mass) 1.6×10^{-26} ग्राम है।

(ii) ***आवेश (Charge):*** प्रोटॉन का आवेश, इलेक्ट्रॉन के आवेश के बराबर और विपरीत होता है। प्रोटॉन का निरपेक्ष आवेश धन आवेश का 1.6×10^{-19} कूलाम होता है। यह किसी कण द्वारा धारण किये जाने वाला सबसे कम आवेश होता है। इसलिए, इसे धन आवेश की इकाई मान लिया गया है। इसका तात्पर्य है कि प्रोटॉन पर 1 इकाई धन आवेश होता है। दूसरे शब्दों में, प्रोटॉन का आपेक्षिक आवेश +1 (धन एक) है।

3.7 न्यूट्रॉन (Neutron)

प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन की खोज के बाद देखा गया कि परमाणु के सम्पूर्ण द्रव्यमान का परिकलन, उसमें उपस्थित केवल प्रोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कार्बन परमाणु में 6 प्रोटॉन और 6 इलेक्ट्रॉन होते हैं। अब, इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान इतना कम होता है कि उसकी उपेक्षा की जा सकती है, इसलिए, कार्बन का परमाणु द्रव्यमान केवल 6 होना चाहिए, जो कि 6 प्रोटॉनों का द्रव्यमान है। यह, यद्यपि, गलत है क्योंकि कार्बन का वास्तविक परमाणु द्रव्यमान 12 है। तब, हम इस 6 इकाई के अतिरिक्त द्रव्यमान को किस प्रकार समझा सकते हैं? इस समस्या का हल चैडविक (Chadwick) द्वारा अन्य मूल कण की खोज से किया गया। यह कण न्यूट्रॉन (neutron) कहलाता है। न्यूट्रॉन, परमाणु नाभिक में पाये जाने वाला एक उदासीन कण है। सामान्य हाइड्रोजन परमाणु जिसमें कोई न्यूट्रॉन नहीं होता है, के अतिरिक्त सभी तत्वों के परमाणुओं में न्यूट्रॉन होते हैं। अतः, हाइड्रोजन परमाणु में न उपस्थित होने वाला मूल कण न्यूट्रॉन (neutron) है। हाइड्रोजन परमाणु में केवल एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन होता है।

न्यूट्रॉन के लक्षण (Characteristics of A Neutron)

(i) ***द्रव्यमान (Mass):*** न्यूट्रॉन का द्रव्यमान, प्रोटॉन के द्रव्यमान के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में, न्यूट्रॉन का आपेक्षिक द्रव्यमान 1 ए०एम०यू० है।

(ii) ***आवेश (Charge):*** न्यूट्रॉन पर कोई आवेश नहीं होता है। वह वैद्युत उदासीन (electrically neutral) है। अब हम समझाने की स्थिति में हैं कि कार्बन का परमाणु द्रव्यमान 12 क्यों है? अब यह ज्ञात हो चुका है कि कार्बन परमाणु में 6 प्रोटॉन और 6 न्यूट्रॉन है, प्रत्येक का द्रव्यमान 1 ए०एम०यू० है। अब,

कार्बन का परमाणु द्रव्यमान = प्रोटॉनों का द्रव्यमान + 6 न्यूट्रॉनों का द्रव्यमान

$$= 6 \times 1 + 6 + 1 = 12$$

हम अब प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन की, उनके आपेक्षिक द्रव्यमानों और आवेशों के सम्बन्ध में तुलना करेंगे।

प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन के बीच तुलना
(Comparison between Proton, Neutron and Electron)

मूल कण या अवपरमाण्विक कण	आपेक्षिक द्रव्यमान	आपेक्षिक आवेश	परमाणु में स्थान
(i) प्रोटॉन	1 ए०एम०यू०	+1	नाभिक के अंदर
(ii) न्यूट्रॉन	1 ए०एम०यू०	0	नाभिक के अंदर
(iii) इलेक्ट्रॉन	$\frac{1}{1840}$ ए०एम०यू०	–1	नाभिक के बाहर

3.8 रदरफोर्ड का प्रयोग—नाभिक की खोज
(Rutherford's Experiment–Discovery of Nucleus)

इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की खोज के बाद, यह स्पष्ट हो गया कि परमाणु इन तीनों मूलकणों से बना है। इसके बाद यह पता लगाने के लिए प्रयोग किये गये कि परमाणु में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन किस प्रकार व्यवस्थित है। वह रदरफोर्ड का अल्फा कण प्रकीर्णन प्रयोग (Rutherford's alpha particle scattering experiment) था जिसने परमाणु के अंदर, सभी प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों को धारण करने वाले छोटे से धन आवेशी नाभिक (nucleus) की खोज को मार्ग दिखाया। इस प्रयोग का वर्णन करने से पहले, हमें अल्फा कण (जिन्हें α कण भी लिखा जाता है) काअर्थ जान लेना आवश्यक है। अल्फा कण एक धन आवेशी कण है जिस पर दो इकाई धन आवेश और 4 इकाई द्रव्यमान होता है। यह वास्तव में हीलियम आयन, होता है। अल्फा कण रेडियम और पोलोनियम जैसे रेडियोऐक्टिव तत्वों द्वारा उत्सर्जित किये जाते हैं। वे कुछ हद तक द्रव्य को बेध सकते हैं। निम्नलिखित प्रयोग में हम स्वर्ण पन्नी (gold foil) का उपयोग करेंगे। स्वर्ण पन्नी, सोने की काफी पतली शीट होती है। इसे स्वर्ण पत्र (gold leaf) भी कहा जाता है। हम अब रदरफोर्ड के प्रयोग का वर्णन करेंगे।

जब अल्फा कणों को बहुत ही पतली स्वर्ण पन्नी से टकराने दिया जाता है, यह पाया जाता है कि:

(i) अधिकांश अल्फाकण, अपने मूलपथ से बिना किसी विचलन के, स्वर्णपन्नी को पार करके सीधे निकल जाते हैं (देखें चित्र 6)।

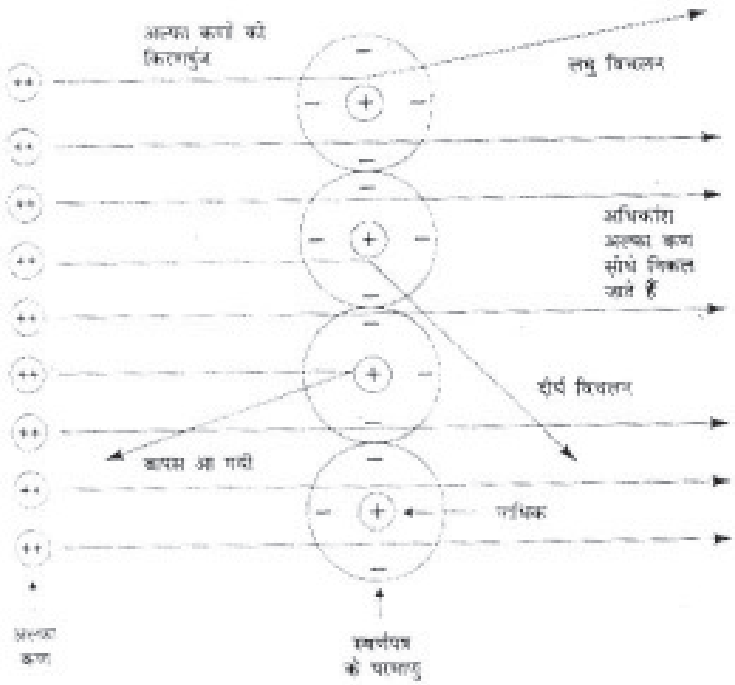

चित्रः स्वर्ण पन्नी (या स्वर्ण पत्र) के परमाणुओं द्वारा अल्फा कणों का प्रकीर्णन

(ii) थोड़े अल्फा कण छोटे कोणों से विचलित होते हैं और थोड़े वहत कोणों से विचलित होते हैं।

(iii) बहुत ही थोड़े अल्फाकण, स्वर्णपन्नी से टकराने पर, पूर्णतया प्रतिक्षित (rebound) होते हैं और अपने मार्ग पर वापस लौट आते हैं। (जैसे कोई गेंद कठोर दीवार से टकराने पर वापस लौट आती है।)

रदरफोर्ड ने इन प्रेक्षणों को निम्न प्रकार समझायाः

स्वर्ण पन्नी परमाणुओं से बनी होती है। यदि परमाणु अपने आयतन में हर जगह ठोस होते, तो उनसे टकराने वाला प्रत्येक अल्फाकण अपने मार्ग को बदल देता और विचलित हो जाता है। क्योंकि अधिकांश अल्फाकण बिना किसी विचलन के स्वर्णपन्नी को पार करके सीधे बाहर निकल जाते हैं, यह प्रदर्शित करता है कि परमाणु के अंदर बहुत अधिक खाली स्थान है।

हम जानते हैं कि समान आवेश एक–दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं। इसलिए, एक धन आवेशी पिंड, दूसरे धन आवेशी पिंड को प्रतिकर्षित करेगा। यह प्रेक्षण कि कुछ अल्फा कण छोटे और बड़े कोणों से विचलित होते हैं, प्रदर्शित करता है कि परमाणु में एक ''धन आवेश का केन्द्र'' होता है जो धन आवेशी अल्फा कणों को प्रतिकर्षित करता है और उन्हें, उनके मूल मार्ग से विचलित कर देता है। परमाणु में धन आवेश के इस केन्द्र को नाभिक (nucleus) कहते हैं। अतः, पतली स्वर्ण–पन्नी द्वारा अल्फा कणों का प्रकीर्णन परमाणु में धन आवेशी नाभिक के अस्तित्व को प्रदर्शित करता है।

बहुत थोड़े से अल्फा कण अपने मार्ग पर वापस लौट आते हैं। इस वास्तविकता को केवल नाभिक के धन आवेश के कारण प्रतिकर्षण के आधार पर नहीं समझाया जा सकता है। इसे, यद्यपि, यह मानकर समझाया जा सकता है कि नाभिक अत्यधिक सघन एवं कठोर होता है। इसलिए, यह प्रेक्षण कि बहुत थोड़े अल्फा कण स्वर्ण पन्नी से टकराने पर पूर्ण रूप से पुनः वापस लौटते हैं, प्रदर्शित करता है कि नाभिक अत्यधिक सघन और कठोर है जो उसमें से अल्फा कणों को आर–पार निकलने नहीं देता है। क्योंकि नाभिक काफी सघन होता है, परमाणु का लगभग सम्पूर्ण द्रव्यमान उसके नाभिक में केन्द्रित रहता है। क्योंकि अल्फा कणों की संख्या जो विचलित होती है, बहुत कम है, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि सम्पूर्ण परमाणु के आकार की तुलना में नाभिक का आकार बहुत छोटा होना चाहिए।

उपर्युक्त विचारों से हम निष्कर्ष निकालते हैं कि परमाणु के नाभिक के बारे में रदरफोर्ड का अल्फा कण (α –कण) प्रकीर्णन प्रयोग निम्नलिखित महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता हैः

(i) परमाणु का नाभिक धन आवेशी होता है।

(ii) परमाणु का नाभिक अत्यधिक सघन और कठोर होता है।

(iii) परमाणु का नाभिक, सम्पूर्ण परमाणु के आकार की तुलना में काफी छोटा होता है।

नाभिक
(Nucleus)

नाभिक, परमाणु के केन्द्र में एक छोटा सा धन आवेशी भाग है। नाभिक में सभी प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन होते हैं, इसलिए, प्रायः परमाणु का सम्पूर्ण द्रव्यमान नाभिक में केन्द्रित होता है (इलेक्ट्रॉन, जो कि नाभिक के बाहर रहते हैं, का द्रव्यमान नगण्य होता है)। नाभिक पर धन आवेश, उसमें प्रोटॉन की उपस्थिति के कारण होता है। नाभिक के अंदर प्रोटॉनों की संख्या, नाभिक पर धन आवेश की संख्या को सुनश्चित करती है। न्यूट्रॉन जो कि नाभिक के अंदर ही उपस्थित होते हैं, आवेश रहित होते हैं, वे उदासीन होते हैं। परमाणु के नाभिक का आयतन, परमाणु के बाह्य भाग के आयतन की तुलना में काफी कम होता है। परमाणु में धन आवेशी नाभिक की उपस्थिति, रदरफोर्ड के अल्फा कण प्रकीर्णन प्रयोग द्वारा प्रदर्शित की गयी थी।

3.9 परमाणु का रदरफोर्ड नाभिकीय मॉडल (Rutherford's Nuclear Model of Atom)

अल्फा कण प्रकीर्णन प्रयोग के आधार पर, रदरफोर्ड ने परमाणु की संरचना का निम्नलिखित चित्रण प्रस्तुत किया—

परमाणु में सभी प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों को धारण करने वाला धन आवेशी भाग सघन तथा काफी छोटा नाभिक होता है। नाभिक ऋण आवेशी इलेक्ट्रॉनों द्वारा घिरा होता है। यह बताया गया कि इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर काफी अधिक वेग से परिक्रमा करते हैं जिसके कारण वे विपरीत आवेशी नाभिक के अंदर नहीं गिरते हैं। क्योंकि परमाणु वैद्युत उदासीन होता है, इसलिए, परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या, उसमें उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होती है। धन आवेशी परमाणुओं और ऋण आवेशी इलेक्ट्रॉनों के बीच स्थिर वैद्युत आकर्षण (electrostatic attraction), परमाणु को निश्चित स्थिति में संगठित रखता है।

सबसे सरल परमाणु हाइड्रोजन का है। इसमें एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन होता है। रदरफोर्ड के सिद्धान्त के अनुसाार, हाइड्रोजन परमाणु में एक प्रोटॉन युक्त छोटा नाभिक होता है, और उसके चारों ओर परिक्रमा करता हुआ एक इलेक्ट्रॉन होता है (चित्र 7)। नाभिक प्रायः परमाणु के केन्द्र में होता है। क्योंकि हाइड्रोजन परमाणु में बराबर संख्या में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन (प्रत्येक 1) होते हैं, वह वैद्युत उदासीन है। कृपया ध्यान दें कि सामान्य हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक में कोई न्यूट्रॉन नहीं होते हैं।

चित्रः हाइड्रोजन परमाणु की संख्या
यहां = प्रोटॉन = इलेक्ट्रॉन

चित्रः हीलियम परमाणु की सरंचना
= प्रोटॉन, = न्यूट्रॉन = इलेक्ट्रॉन

अगला सरलतम् परमाणु हीलियम का है। हीलियम परमाणु में 2 प्रोटॉन और 2 न्यूट्रॉन धारी एक छोटा सा केन्द्रीय नाभिक, होता है और इस नाभिक के चारों और 2 इलेक्ट्रॉन परिक्रमा करते हैं (चित्र 8)। क्योंकि हीलियम परमाणु में बराबर संख्या में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन (प्रत्येक 2) होते हैं, इसलिए, वह वैद्युत उदासीन हैं।

3.10 परमाणु–संख्या (Atomic Number)

किसी तत्व के एक परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या, उस तत्व की परमाणु संख्या कहलाती है। अर्थात्

तत्व की परमाणु संख्या = तत्व के एक परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या

उदाहरणार्थ, सोडियम तत्व के एक परमाणु में 11 प्रोटॉन है, इसलिए सोडियम की परमाणु–संख्या 11 है। एक ही तत्व के सभी परमाणुओं में, उनके नाभिकों में प्रोटॉन की समान संख्या होती है और इस कारण उनकी समान परमाणु–संख्या होती है। भिन्न–भिन्न तत्वों के परमाणुओं में, उनके नाभिकों के अंदर प्रोटॉनों की संख्या भिन्न–भिन्न होती है, इसलिए उनकी भिन्न–भिन्न परमाणु–संख्या होती है। **किन्हीं दो तत्वों की परमाणु-संख्या समान नहीं हो सकती है।** क्योंकि प्रत्येक तत्व की अपनी एक निश्चित परमाणु–संख्या होती है, इसलिए **किसी तत्व की पहचान करने के लिए परमाणु-संख्या का उपयोग किया जा सकता है।** उदाहरणार्थ, परमाणु संख्या 6 से हमें पता चलता है कि यह कार्बन तत्व है। किसी अन्य तत्व की परमाणु संख्या 6 नहीं हो सकती। अतः, यह प्रोटॉनों की संख्या (या परमाणु–संख्या) ही है जो एक तत्व के परमाणुओं की, दूसरे तत्व के परमाणुओं से भिन्नता प्रकट करती है। किसी तत्व की परमाणु–संख्या को प्रायः अक्षर Z से अंकित करते हैं। **परमाणु-संख्या को परमाणु क्रमांक भी कहते हैं।**

सामान्य परमाणु (या उदासीन परमाणु) में, प्रोटॉनों की संख्या उसमें उपस्थित इलेक्ट्रॉनों की संख्या के बराबर होती है। इसीलिए, हम यह भी कह सकते हैं कि **किसी तत्व की परमाणु-संख्या, उस तत्व के उदासीन परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या के बराबर होती है।** अर्थात्

तत्व की परमाणु–संख्या = एक उदासीन परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या

उदाहरणार्थ, सोडियम के एक उदासीन परमाणु में 11 इलेक्ट्रॉन होते हैं, इसलिए सोडियम की परमाणु–संख्या 11 है। यहां पर यह ध्यान देना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि किसी तत्व की परमाणु–संख्या, उस तत्व के केवल उदासीन परमाणु में उपस्थित इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या के बराबर होती है और न कि आयन में। क्योंकि, किसी उदासीन परमाणु में ही प्रोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों की संख्या बराबर होती है। दूसरी ओर, सामान्य परमाणु इलेक्ट्रॉनों को ग्रहण करके अथवा इलेक्ट्रॉनों का परित्याग करके आयन बनाते हैं, इसलिए आयनों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या प्रोटॉनों से कम या अधिक होती है।

रासायनिक अभिक्रिया में किसी परमाणु के केवल इलेक्ट्रॉन ही भाग लेते हैं, प्रोटॉन रासायनिक अभिक्रिया में भाग नहीं लेते हैं। इसलिए, रासायनिक अभिक्रिया में, परमाणुओं के अंदर इलेक्ट्रॉनों की संख्या में ही परिवर्तन हो सकता है, परन्तु प्रोटॉनों की संख्या वही रहती है। अतः, **रासायनिक अभिक्रिया के दौरान किसी तत्व की परमाणु-संख्या नहीं बदलती है, वह पहले के समान ही रहती है।**

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि किसी तत्व की परमाणु–संख्या से हमें दो बातों का पता चलता है'

(i) यह हमें तत्व के एक परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या बतलाती है।

(ii) यह हमें तत्व के एक उदासीन परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या बतलाती है।

उदाहरणार्थ, सोडियम की परमाणु संख्या 11 है। यह हमें बतलाती है कि एक सोडियम परमाणु में 11 प्रोटॉन है। इससे यह भी पता चलता है कि सामान्य सोडियम परमाणु में 11 इलेक्ट्रॉन हैं। हम अब किसी तत्व की द्रव्यमान संख्या (mass number) के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

3.11 द्रव्यमान–संख्या (Mass Number)

किसी परमाणु में प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन होते हैं। क्योंकि इलेक्ट्रॉनों का द्रव्यमान नगण्य होता है, परमाणु का वास्तविक द्रव्यमान केवल प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों द्वारा निर्धारित किया जाता है। **किसी तत्व के एक परमाणु में उपस्थिति प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की कुल संख्या को उसकी द्रव्यमान संख्या कहा जाता है।** अर्थात्

द्रव्यमान संख्या = प्रोटॉनों की संख्या + न्यूट्रॉनों की संख्या

अब, प्रोटॉन का द्रव्यमान = 1 ए०एम०यू०

और, न्यूट्रॉन का द्रव्यमान = 1 ए०एम०यू०

इसलिए, द्रव्यमान संख्या = प्रोटॉनों की संख्या × 1 + न्यूट्रॉनों की संख्या × 1

या, द्रव्यमान संख्या = प्रोटॉनों का द्रव्यमान + न्यूट्रॉनों का द्रव्यमान

परंतु प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों का कुल द्रव्यमान परमाणु द्रव्यमान (atomic mass) कहलाता है, इसलिएः

द्रव्यमान संख्या = परमाणु द्रव्यमान

अतः, किसी परमाणु की द्रव्यमान संख्या से हमें परमाणु के द्रव्यमान का ज्ञान होता है। किसी तत्व की द्रव्यमान संख्या को प्रायः अक्षर A से व्यक्त करते हैं। हम अब किसी तत्व की परमाणु–संख्या और द्रव्यमान संख्या के बीच संबंध को प्राप्त करेंगे। हमने अभी देखा किः

द्रव्यमान संख्या = प्रोटॉनों की संख्या + न्यूट्रॉनों की संख्या

क्योंकि किसी परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या तत्व की परमाणु–संख्या के बराबर होती है, हम उपर्युक्त सम्बन्ध में 'प्रोटॉनों की संख्या' के स्थान पर 'परमाणु–संख्या' रखकर उसे पुनः लिख सकते हैं। अर्थात्

द्रव्यमान संख्या = परमाणु-संख्या + न्यूट्रॉनों की संख्या

परमाणु–संख्या और द्रव्यमान संख्या को किसी तत्व के प्रतीक पर दर्शाया जा सकता है। परमाणु–संख्या को उस तत्व के प्रतीक के नीचे बायीं ओर लिखा जाता है, जबकि परमाणु द्रव्यमान को उस तत्व के प्रतीक के ऊपरी बायीं ओर लिखा जाता है। उदाहरणार्थ, कार्बन के परमाणु को जिसकी परमाणु–संख्या 6 और द्रव्यमान संख्या 12 है, इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं।

नीचे की संख्या (6) कार्बन की परमाणु–संख्या को दर्शाती है और ऊपरी संख्या (12) कार्बन के द्रव्यमान संख्या को दर्शाती है।

समस्याः किसी तत्व के परमाणु संख्या की गणना कीजिए जिसके नाभिक में द्रव्यमान संख्या 23 और न्यूट्रॉन संख्या 12 है। तत्व का प्रतीक क्या है।

हलः हमें ज्ञात है किः

द्रव्यमान = प्रोटॉनों की संख्या + न्यूट्रॉनों की संख्या

परन्तु प्रोटॉनों की संख्या, परमाणु संख्या कहलाती है।

इसलिए, द्रव्यमान संख्या = परमाणु संख्या + न्यूट्रॉनों की संख्या

और, 23 = परमाणु संख्या + 12

इसलिए, परमाणु संख्या = 23–12

= 11

परमाणु संख्या 11 वाला तत्व सोडियम है और इसका प्रतीक Na है। यदि, हम परमाणु–संख्या और द्रव्यमान–संख्या को भी दर्शायें, तो इसका प्रतीक $^{23}_{11}Na$ होता है, जहां 11 परमाणु–संख्या है और 23 द्रव्यमान–संख्या है।

3.12 परमाणु के रदरफोर्ड मॉडल की कमी (Drawback of Rutherford's Model of Atom)

परमाणु के रदरफोर्ड मॉडल की प्रमुख कमी है कि यह परमाणु के स्थायित्व को नहीं समझ पाता है। यह बात निम्नलिखित विचार से अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

परमाणु के रदरफोर्ड मॉडल में, ऋण आवेशी इलेक्ट्रॉन वत्ताकार मार्गों में धन आवेशी नाभिक के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं। अब, हम जानते हैं कि जब कोई वस्तु वत्ताकार मार्ग में गति करती है, तो उसकी गति बढ़ जाती है। इसका अर्थ है कि नाभिक के चारों ओर परिक्रमा करते हुए इलेक्ट्रॉनों की गति बढ़ जाती है।

भौतिकी के विद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त (electromagnetic theory) के अनुसार,यदि आवेशी कण की गति बढ़ जाती है, तो उसे ऊर्जा की लगातार विकिरण (या ऊर्जा का परित्याग) करते रहना आवश्यक है। अब, यदि हम परमाणु के रदरफोर्ड मॉडल पर इस विद्युत चुम्बकीयसिद्धान्त का प्रयोग करें, तो इसका अर्थ होगा कि त्वरित (या बढ़ी हुई) गति से नाभिक के चारों ओर परिक्रमा करते हुए ऋण आवेशी इलेक्ट्रॉन, विकिरण द्वारा लगातार अपनी ऊर्जा को खोते रहेंगे। अतः, परिक्रमा करते हुए इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा धीरे–धीरे कम होगी औरउनका वेग भी कम होता जाएगा। इलेक्ट्रॉन तब विपरीत आवेशी नाभिक द्वारा अधिक प्रबलता से आकर्षित होंगे जिसके कारण वे नाभिक के काफी अधिक समीप आ जायेंगे और अंततः सर्पिल मार्ग (spiral path) अपनाते हुए इलेक्ट्रॉन नाभिक में गिर जायेंगे। (जैसा कि चित्र

9 में दिखाया गया)। यह परमाणु को अत्यंत अस्थायी बना देगा और इस कारण परमाणु एकाएक नष्ट हो जाएगा।

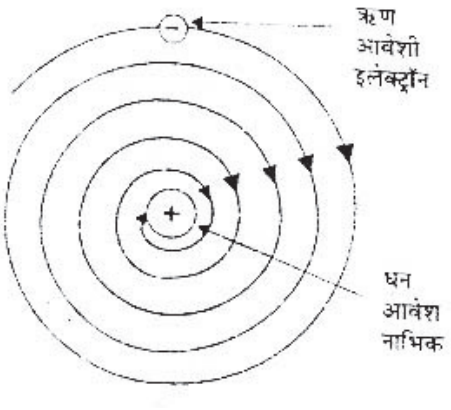

चित्रः ऊर्जा खोने वाला इलेक्ट्रॉन नाभिक के अंदर किसी प्रकार गिर सकता था, को प्रदर्शित करने वाला चित्र

परन्तु यह बिल्कुल भी नही होता है। हम जानते हैं कि इलेक्ट्रॉन परमाणु नाभिक के अंदर नहीं गिरते हैं। वस्तुतः, परमाणु अत्यंत स्थायी होते हैं और अपने आप नष्ट नहीं होते हैं। कुछ भी हो, रदरफोर्ड मॉडल परमाणु के स्थायित्व की व्याख्या नहीं कर पाता है।

परमाणु के स्थायित्व को समझाने के लिए, सन् 1913 में नील बोर (niels bohr) ने परमाणु के अंदर नयी व्यवस्था दी। **नील बोर के अनुसार, इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर केवल 'निश्चित कक्षाओं' (या 'निश्चित ऊर्जा स्तरों') में परिक्रमा कर सकते थे, प्रत्येक कक्षा की त्रिज्या भिन्न होती है।** प्रत्येक कक्षा इलेक्ट्रॉनों में ऊर्जा की एक विशेष मात्रा होती हैं इलेक्ट्रॉन जो नाभिक के समीप वाली कक्षा में होते हैं, उनमें निम्न ऊर्जा होती है जबकि जो नाभिक से दूर वाली कक्षा में होते हैं, उनमें उच्चतर ऊर्जा होती है। **नील बोर ने बताया किः जब इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर किसी विशिष्ट कक्षा या विशिष्ट ऊर्जा स्तर में परिक्रमा करते हैं, इलेक्ट्रॉन ऊर्जा का विकिरण नहीं करते हैं (या ऊर्जा नहीं खोते हैं), ऐसा होने पर भी नाभिक के चारों ओर इसके परिक्रमा करने की गति बढ़ जाती है।** और क्योंकि इलेक्ट्रॉन अपनी निश्चित कक्षाओं मे नाभिक के चारों ओर परिक्रमा करते हुए ऊर्जा नहीं खोते हैं, वे नाभिक के अंदर नहीं गिरते हैं, और इस कारण परमाणु स्थायी बना रहता है। कृपया नोट करें कि नाभिक के चारों ओर वत्तीय मार्गों या कक्षाओं (जहां इलेक्ट्रॉन गति करते हैं), को ''ऊर्जा स्तर'' या ''इलेक्ट्रॉन कोश'' भी कहा जाता है। हम अब परमाणु के वर्तमान संकल्पना पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

3.13 परमाणु की वर्तमान संकल्पना-परमाणु की बोर संकल्पना (Present concept of Atom–Bohr's concept of Atom)

नील बोर द्वारा दी गयी परमाणु की वर्तमान संकल्पना के अनुसारः

1. परमाणु तीन कणों से बना हैः इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन। इलेक्ट्रॉन पर ऋण आवेश होता है, प्रोटॉन पर धन आवेश होता है जबकि न्यूट्रॉन पर कोई आवेश नहीं होता है, वे उदासीन होते हैं। ऋण इलेक्ट्रॉनों पर कोई आवेश नहीं होता है, वे उदासीन होते हैं। ऋण इलेक्ट्रॉनों और धन प्रोटॉनों की बराबर संख्या में उपस्थिति के कारण, परमाणु पूर्णरूपेण वैद्युत उदासीन होता है।
2. प्रोटॉन और न्यूट्रॉन परमाणु के केन्द्र पर छोटे से नाभिक में स्थित होते हैं, प्रोटॉनों की उपस्थिति के कारण, नाभिक धन आवेशी होता है।
3. इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर वत्तीय भागों में तेजी से परिक्रमा करते हैं जिन्हें ऊर्जा स्तर (energy levels) या कोश (shells) कहते हैं। ऊर्जा स्तरों या कोशों को दो तरीकों से प्रदर्शित किया जाता हैः 1, 2, 3, 4, 5 और 6

अंकों द्वारा अथवा K, L, M, N, O और P अक्षरों द्वारा। ऊर्जा स्तरों को केन्द्र से बाहर की ओर गिना जाता है।

4. प्रत्येक ऊर्जा स्तर (या कोश) ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा से सम्बन्धित होता है, नाभिक के सबसे समीप वाले कोश में न्यूनतम ऊर्जा होती है और नाभिक से सबसे दूर वाले कोश में उच्चतम ऊर्जा होती है।

5. इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जब तक कि वे किसी ऊर्जा स्तर में परिक्रमा करते हैं, और परमाणु स्थायी रहता है। इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा में केवल तभी परिवर्तन होता है जबकि वह निम्नतर ऊर्जा स्तर से, उच्चतर ऊर्जा स्तर में कूदता है अथवा जब वह उच्चतर ऊर्जा स्तर से निम्नतर ऊर्जा स्तर में आता है। जब कोई इलेक्ट्रॉन ऊर्जा ग्रहण करता है, वह निम्नतर ऊर्जा स्तर से उच्चतर ऊर्जा स्तर में कूदता है और जब इलेक्ट्रॉन उच्चतर ऊर्जा स्तर से निम्नतर ऊर्जा स्तर में आता है, वह ऊर्जा खोता (या निकालता) है।

3.14 परमाणुओं के अन्दर इलेक्ट्रॉनों की व्यवस्था (Arrangement of Electrons in the Atoms)

इलेक्ट्रॉन ऋण आवेशी होते हैं, इसलिए वे नाभिक के बाहर ऋण आवेशों का मेघ (cloud) बनाते हैं। इस मेघमें, इलेक्ट्रॉन विभिन्न ऊर्जा स्तरों या कोशों में अपनी स्थितिज ऊर्जा (potential energy) के अनुसार व्यवस्थित रहते हैं। इलेक्ट्रॉनों के ऊर्जा स्तर 1, 2, 3, 4, 5 और 6 अंकों द्वारा अंकित किये जाते हैं जबकि कोशों को K, L, M, N, O और P अक्षरों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पहला (1) ऊर्जा स्तर K कोश

दूसरा (2) ऊर्जा स्तर L कोश

पहला (3) ऊर्जा स्तर M कोश

पहला (4) ऊर्जा स्तर N कोश, इत्यादि।

ऊर्जा स्तरों या कोशों को, नाभिक के चारों ओर वत्तों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कोशों के केन्द्र से बाहर की ओर गिनते हैं (देखें चित्र, 10)। उदाहरणार्थ, निम्नतर ऊर्जा युक्त K कोश नाभिक के सबसे समीप होता है; L कोश जिसमें कुछ अधिक ऊर्जा होती है, नाभिक के कुछ दूर होता है; इत्यादि। यह स्पष्ट है कि परमाणु का सबसे बाहरी कोश उच्चतम ऊर्जा स्तर पर होता है।

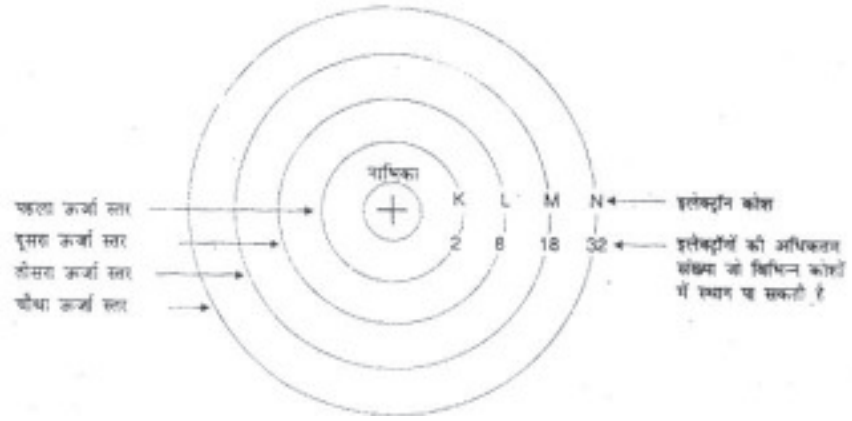

चित्रः परमाणु में ऊर्जा स्तर या इलेक्ट्रॉन कोश (यह चित्र केवल पहले चार ऊर्जा कोशों K, L, M, और N को प्रदर्शित करता है)।

आप जानते हैं कि कोई भी निकाय (या व्यवस्था) उस समय सबसे अधिक स्थायी होता है जब उसमें न्यूनतम ऊर्जा होती है। इसलिए, इलेक्ट्रॉन सबसे पहले निम्न ऊर्जा स्तर में स्थान ग्रहण करते हैं (यह परमाणु को अधिक स्थायी

बना देगा)। अब, K कोश न्यूनतम ऊर्जा स्तर पर है, इसलिए सभी इलेक्ट्रॉन पहले K कोश भरते हैं, फिर L कोश, M कोश, N कोश इत्यादि, इत्यादि। **किसी तत्व के परमाणु के भिन्न-भिन्न कोशों में इलेक्ट्रॉनिक व्यवस्था को तत्व का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास (electronic configuration) कहते हैं।** किसी तत्व का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास लिखने के लिए, हमें दो बातें जानना आवश्यक है–

(i) हमें, तत्व के एक परमाणु में इलेक्ट्रॉन की संख्या ज्ञात होना चाहिए।

(ii) हमें इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या ज्ञात होनी चाहिए जिन्हें परमाणु के विभिन्न कोशों में स्थान दिया जा सकता है।

किसी तत्व के एक परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या, उस तत्व के परमाणु–क्रमांक से ज्ञात हो जाती है, क्योंकि किसी तत्व के एक परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या, उस तत्व के परमाणु–क्रमांक (या परमाणु–संख्या) के बराबर होती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी तत्व की परमाणु संख्या 12 है, तो उसके परमाणु में 12 इलेक्ट्रॉन होते हैं।

इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या, जिसे ऊर्जा स्तर या कोश विशेष में रखा जा सकता है, को बोर (Bohr) और बरी (Burry) द्वारा बताया गया। बोर–बरी की योजना के अनुसारः

(अ) **इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या जिसे परमाणु के किसी ऊर्जा स्तर में स्थान दिया जाता है, को $2n^2$ द्वारा दिया जाता है (जहां n उस ऊर्जा स्तर की संख्या है)।** हम अब इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या की गणना करते हैं जिसे किसी परमाणु के पहले चार ऊर्जा स्तरों में स्थान दिया जा सकता है।

(i) पहले (1) ऊर्जा स्तर के लिए $n = 2$

इसलिए, पहले (1) ऊर्जा स्तर में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या $= 2n^2$

$= 2\times(1)^2$

$= 2$

(ii) दूसरे (2) ऊर्जा स्तर के लिए $n = 2$

इसलिए, दूसरे (2) ऊर्जा स्तर में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या $= 2n^2$

$= 2\times(2)^2$

$= 8$

(iii) तीसरे (3) ऊर्जा स्तर के लिए $n = 3$

इसलिए, तीसरे (3) ऊर्जा स्तर में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या $= 2n^2$

$= 2\times(3)^2$

$= 18$

(iv) चौथे (4) ऊर्जा स्तर के लिए $n = 4$

इसलिए, चौथे (4) ऊर्जा स्तर में इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या $= 2n^2$

$= 2\times(4)^2$

$= 32$

अतः इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या जिसे पहले ऊर्जा स्तर में स्थान दिया जा सकता है, 2 है, दूसरे ऊर्जा स्तर के लिए 8 है, तीसरे ऊर्जा स्तर के लिए 18 है, और चौथे ऊर्जा स्तर के लिए 32 है। अब, पहला ऊर्जा स्तर K कोश कहलाता है। दूसरा ऊर्जा स्तर L कोश कहलाता है, तीसरा ऊर्जा स्तर M कोश कहलाता है और चौथा ऊर्जा स्तर N कोश कहलाता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि इलेक्ट्रॉनों की अधिकतम संख्या जिसे K केश में स्थान

दिया जाता है, 2 है, L कोश के लिए 8 है, M कोश के लिए 18 है और N कोश के लिए 32 है। इसे तालिका रूप में निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता हैः

इलेक्ट्रॉन कोश	अधिकतम क्षमता
1. K कोश	2 इलेक्ट्रॉन
2. L कोश	8 इलेक्ट्रॉन
3. M कोश	18 इलेक्ट्रॉन
4. N कोश	32 इलेक्ट्रॉन

(ब) **किसी परमाणु के बाह्यतम कोश में 8 से अधिक इलेक्ट्रॉन नहीं हो सकते हैं, यद्यपि इसमें अधिक इलेक्ट्रॉनों को रखने की क्षमता होती है।** अर्थात्, किसी परमाणु का बाह्यतम कोश अधिकतम केवल 8 इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर सकता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी परमाणु का बाह्यतम कोश M कोश है, तो यह केवल अधिकतम 8 इलेक्ट्रॉन रख सकता है, यद्यपि इसकी अधिकतम मूल्यांकित क्षमता 18 इलेक्ट्रॉन है। यह इस तथ्य के कारण होता है कि 'बाह्यतम कोश में 8 इलेक्ट्रॉनों का होना' परमाणु को काफी स्थायी बना देता है। (यदि, बाह्यतम कोश पहला कोश या K कोश है, तो यह अधिकतम केवल 2 इलेक्ट्रॉन रख सकता है।)

इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हम तत्वों का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास लिखना सीखते हैं।

समस्या 1: तत्व X का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास लिखिए जिसकी परमाणु संख्या 12 है।

हलः तत्व X की परमाणु–संख्या 12 है जिसका अर्थ है कि X के एक परमाणु में 12 इलेक्ट्रॉन है। सबसे पहले इलेक्ट्रॉन K कोश में जायेंगे जो अधिकतम दो इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर सकता है। अतः, प्रथम 2 इलेक्ट्रॉन K कोश में स्थान ग्रहण करेंगे और इसके लिए हम $\frac{K}{2}$ लिखते हैं। K कोश भरने के बाद, इलेक्ट्रॉन L कोश में जायेंगे। अब, L कोश अधिकतम 8 इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर सकता है जिसके लिए हम $\frac{L}{8}$ लिखते हैं। इस प्रकार 2+8=10 इलेक्ट्रॉन स्थान पा लेते हैं, और हमारे पास 2 और इलेक्ट्रॉन बचते हैं। शेष 2 इलेक्ट्रॉन M कोश में जायेंगे और इसके लिए हम $\frac{M}{2}$ लिखते हैं। सभी इलेक्ट्रॉन कोशों को एक साथ लिखने पर, तत्व X का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास हो जाता हैः

$$\frac{K}{2},\ \frac{L}{8},\ \frac{M}{2}$$

कृपया नोट करें कि तत्वों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास लिखते समय, K, L और M इत्यादि कोशों को लिखना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ, परमाणु–संख्या 12 वाले तत्व X का इलेक्ट्रॉन विन्यास साधारणतः 2, 8, 2 के रूप में लिखा जा सकता है। यद्यपि उनके कोशों को भी दर्शाना अच्छा होता है। X के परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की व्यवस्थाको चित्र 11 में दिखाया गया है।

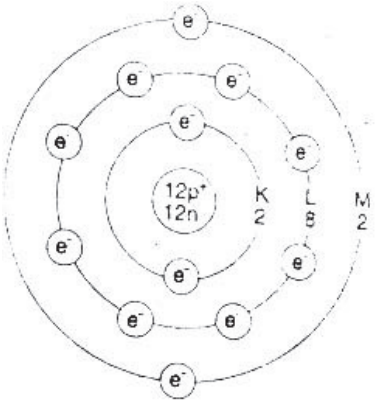

चित्रः समस्या 1 के लिए चित्र

समस्या 2: धन आवेशी सोडियम आयन, Na^+ का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास क्या होगा? इसकी परमाणु–संख्या क्या होगी?

हलः सोडियम की परमाणु–संख्या 11 है। इसलिए, उदासी सोडियम परमाणु (Na) में 11 इलेक्ट्रॉनिक होते हैं।

(i) धन आवेशी सोडियम आयन (Na^+), सोडियम परमाणु में से 1 इलेक्ट्रॉन निकल जाने पर बनता है। इसलिए, सोडियम आयन में 11–1=10 इलेक्ट्रॉन होते हैं। अतः, सोडियम अयन का इलेक्ट्रॉन विन्यास $\begin{matrix}K & L\\ 2, & 8\end{matrix}$ होगा।

(ii) किसी तत्व की परमाणु संख्या, उसके परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होती है। क्योंकि, सोडियम परमाणु और सोडियम आयन, दोनों ही प्रोटॉनों की संख्या समान होती है, इसलिए, सोडियम आयन की परमाणु संख्या, सोडियम परमाणु के समान ही होगी, जो कि 11 है।

समस्या 3: एक तत्व के M कोश में 2 इलेक्ट्रॉन है। इस तत्व की परमाणु–संख्या क्या है?

हलः इस तत्व के M कोश में 2 इलेक्ट्रॉन है। इसका अर्थ है कि K और L कोश (जो M कोश से पहले होते हैं) इलेक्ट्रॉनों से पूर्ण भरे हैं। अब, K कोश में अधिकतम 2 इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं जिसे $\begin{matrix}K\\ 2\end{matrix}$ के रूप में लिखा जा सकता है, और L कोश में अधिकतम 8 इलेक्ट्रॉन स्थान पा सकते हैं जिसे $\begin{matrix}L\\ 8\end{matrix}$ के रूप में लिखा जा सकता है। M कोश में 2 इलेक्ट्रॉन है जिसे $\begin{matrix}K\\ 2\end{matrix}$ के रूप में लिखा जा सकता है। इस तत्व के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास को अब इस प्रकार लिखा जा सकता हैः

$$\begin{matrix}K & L & M\\ 2, & 8, & 2\end{matrix} \quad \text{.....(या केवल 2, 8, 2)}$$

इस तत्व में K कोश में 2 इलेक्ट्रॉन, L कोश में 8 इलेक्ट्रॉन और M कोश में 2 इलेक्ट्रॉन है। इसलिए, उसके परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या 2+8+2=12 है। किसी तत्व के एक परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की संख्या उसकी परमाणु–संख्या के बराबर होती है इसलिए, इस तत्व की परमाणु संख्या 12 है।

3.15 पोटैशियम तथा कैल्शियम तत्वों की असामान्य स्थिति (The Special case of Potassium and Calcium Elements)

पोटैशियम की परमाणु–संख्या 19 है और उसका इलेक्ट्रॉनिक विन्यास हैः

$$\begin{matrix}K & L & M & N\\ 2, & 8, & 8, & 1\end{matrix}$$

कैल्श्यिम की परमाणु–संख्या 20 है और उसका इलेक्ट्रॉनिक विन्यास हैः

$$\begin{matrix}K & L & M & N\\ 2, & 8, & 8, & 2\end{matrix}$$

हम जानते हैं कि M कोश में 18 इलेक्ट्रॉन तक स्थान पा सकते हैं, परन्तु पोटैशियम और कैल्शियम की स्थिति में, M कोश में केवल 8 इलेक्ट्रॉन हैं और अगले इलेक्ट्रॉन N कोश में प्रवेश कर सकते हैं। अर्थात् चौथा ऊर्जा स्तर N, 18 इलेक्ट्रॉनों से तीसरे ऊर्जा स्तर M के पूर्ण हो जाने से पहले ही भरना आरंभ कर देता है।

पोटैशियम का जैसे–जैसे आकार बढ़ता है, ऊर्जा स्तर या कोश एक दूसरे के समीप हो जाते हैं और आखिरकार चौथा ऊर्जा कोश N तीसरे ऊर्जा कोश M का अतिव्यापन (overlap) कर लेता है। M कोश अधिकतम 18 इलेक्ट्रॉनों को ले सकता है, परंतु जब इस कोश में 8 इलेक्ट्रॉन हो जाते हैं, अतिव्यापन होता है और M कोश पुनः भरना आरम्भ करे, उससे पहले अधिकतम 2 इलेक्ट्रॉन N कोश में स्थान ग्रहण करते हैं। इसलिए, पोटैशियम में N कोश में 1 इलेक्ट्रॉन

होता है और कैल्शियम में N कोश में 2 इलेक्ट्रॉन होते हैं। कैल्शियम के बाद, M कोश पुनः भरना आरम्भ करता है, इसलिए अगले तत्व स्कैण्डियम (scandium) जिसकी परमाणु संख्या 21 है, का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास है।

K L M N
2, 8, 9, 2

कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास
(Electronic Configurations of some Important Elements)

तत्व	प्रतीक	परमाणु-संख्या	इलेक्ट्रॉनिक विन्यास (या इलेक्ट्रॉनिक व्यवस्था) K L M N
1. हाइड्रोजन (Hydrogen)	H	1	1
2. **हीलियम (Helium)**	**He**	2	2
3. लिथियम (Lithium)	Li	3	2, 1
4. बेरिलियम (Berylium)	Be	4	2, 2
5. बोरॉन (Boron)	B	5	2, 3
6. कार्बन (Carbon)	C	6	2, 4
7. नाइट्रोजन (Nitrogen)	N	7	2,5
8. ऑक्सीजन (Oxygen)	O	8	2, 6
9. फ्लुओरीन (Fluorine)	F	9	2,7
10. निऑन (Neon)	**Ne**	**10**	**2, 8**
11. सोडियम (Sodium)	Na	11	2, 8, 1
12. मैग्निशियम (Magnesium)	Mg	12	2, 8, 2
13. एल्यूमिनियम (Aluminium)	Al	13	2, 8, 3
14. सिलिकॉन (Silicon)	Si	14	2, 8, 4
15. फॉस्फोरस (Phosphorus)	P	15	2, 8, 5
16. सल्फर (Sulphur)	S	16	2, 8, 6
17. क्लोरीन (Chlorine)	Cl	17	2, 8, 7
18. ऑरगॉन (Argon)	**Ar**	**18**	**2, 8, 8**
19. पोटैशियम (Potassium)	K	19	2, 8, 8, 1
20. कैल्शियम (Calcium)	Ca	20	2, 8, 8,2

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रोटौन, इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रान पर क्या आवेश होता है?

(ii) कैथोड़ किरणों के क्या गुण होते हैं?

(iii) रदरफोर्ड के नाभिकीय मॉडल का वर्णन करो।

(iv) परमाणु संख्या एवं द्रव्यमान संख्या को परिभाषित कीजिए।

(v) ऑक्सीजन, पोटाशियम, सल्फर और सोडियम का इलैक्ट्रॉनिक विन्यास लिखो।

3.17 सारांश

परमाणु के तीन मूलकण होते हैं–इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन। परमाणु में इलैक्ट्रानों की उपस्थिति को जे०जे० थॉमसन ने अत्यधिक निम्न दाब पर गैस में से उच्च वोल्टता की विद्युत को प्रवाहित करके प्रदर्शित किया। इलैक्ट्रॉन सभी तत्वों के परमाणुओं में पाये जाने वाले ऋण आवेशी कण हैं। परमाणुओं में प्रोटॉनों की उपस्थिति गोल्डस्टीरन द्वारा दर्शायी गई। प्रोटॉन सभी तत्वों के परमाणुओं में पाये जाने वाला एक धन आवेशी कण है। परमाणु में प्रोटॉनों और इलैक्ट्रॉनों की उपस्थिति के कारण परमाणु विद्युत उदासीन होता है। न्यूट्रॉन परमाणु के नाभिक में उपस्थित विद्युत उदासीन कण होते हैं। किसी तत्व के परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या, उस तत्व की परमाणु संख्या कहलाती है। किसी तत्व के परमाणु में उपस्थित प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की कुल संख्या को उसकी द्रव्यमान संख्या कहा जाता है। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन परमाणु के नाभिक में उपस्थित होते हैं और इलैक्ट्रॉन बाह्य कोषों में नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। किसी तत्व के परमाणु के भिन्न कोशों में इलैक्ट्रॉनिक व्यवस्था को तत्व का इलैक्ट्रॉनिक विन्यास कहा जाता है।

मॉडल उत्तर

(i) प्रोटॉन पर इकाई धन आवेश, इलैक्ट्रॉन पर इकाई ऋण आवेश और न्यूट्रॉन पर कोई आवेश नहीं होता।

(ii) 3.3 में देखें

(iii) रदरफोर्ड के नाभिकीय मॉडल के अनुसार परमाणु में सभी प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों को धारण करने वाला धन आवेशी सघन तथा काफी छोटा नाभिक होता है। नाभिक ऋण इलैक्ट्रॉनों द्वारा घिरा होता है। इलैक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर काफी अधिक वेग से परिक्रमा करते हैं जिसके कारण वे विपरीत आवेशी नाभिक के अंदर नहीं गिरते हैं। परमाणु विद्युत उदासीन होता है इसलिए परमाणु में इलैक्ट्रॉनों की संख्या, उसमें उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होती है। धन आवेशी परमाणुओं और ऋण आवेशी इलैक्ट्रॉनों के बीच स्थिर विद्युत आकर्षण, परमाणु को निश्चित स्थिति में संगठित रखता है।

(iv) किसी तत्व के एक परमाणु में उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या उस तत्व की परमाणु संख्या कहलाती है।

किसी तत्व के एक परमाणु में उपस्थित प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की कुल संख्या उसकी द्रव्यमान संख्या कहलाती है।

(v)

	परमाणु क्रमांक	इलैक्ट्रॉनिक विन्यास
ऑक्सीजन	8	2, 6
पोटाशियम	19	2, 8, 8,1
सल्फर	16	2, 8, 6
सोडियम	11	2, 8, 1

3.18 मुख्य शब्द

परमाणु—तत्व का वह छोटा कण जो इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से बना होता है।

इलैक्ट्रॉन—परमाणु में उपस्थित ऋण आवेशी कण

प्रोटॉन—परमाणु में उपस्थित धन आवेशी कण

न्यूट्रॉन—परमाणु में उपस्थित उदासीन कण

3.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' कक्षा IX के लिए, नई दिल्ली

सिंह, लखमीर, कौर, मनजीत 'कक्षा IX के लिए रसायन विज्ञान', चांद बुक डिपो, नई दिल्ली

इकाई-II(a)

अध्याय-4: चुम्बकत्व (Magnetism)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- चुम्बक के ध्रूवों को पहचान सकें।
- दो चुम्बकों के परस्पर व्यवहार की व्याख्या कर सकें।
- भू–चुम्बकत्व का वर्णन कर सकें।
- चुम्बक बनाने की विभिन्न विधियों की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।

सरंचनाः

4.1 प्रस्तावना
4.2 चुम्बक के ध्रुव
4.3 दो चुम्बकों का परस्पर व्यवहार
4.4 भू–चुम्बकत्व
4.5 चुम्बक बनाने की विधियां
4.6 सारांश
मॉडल उत्तर
4.7 मुख्य शब्द
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

ईसा से कई शताब्दियों पूर्व, यूनान के लोग एक विशेष प्रकार के काले पत्थर के बारे में जानते थे। यूनान के लोहारों का एक विशेष समूह इस काले पत्थर से चमत्कार दिखाया करता था। यह पत्थर एशिया माइनर के मैग्नेशिया नामक क्षेत्र में पाया जाता था। मैग्नेशिया क्षेत्र में मिलने के कारण ऐसे पत्थरों को मैग्नेटाइट कहा जाता था। इसी कारण अंग्रेजी में इसका नाम मैगनेट (Magnet) पड़ा। हिन्दी भाषा में इसे चुम्बक कहते हैं। इस पत्थर में लोहे के टुकड़ों को अपनी ओर आकर्षित का गुण होता है।

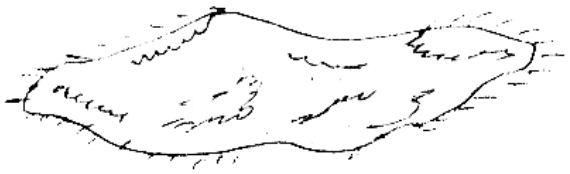

चित्र 4.1: मैग्नेटाइट (लोडस्टोन)

बाद में इस पत्थर के अन्य गुण के बारे में भी पता चला। इसे धागे के साथ बांध कर लकड़ी के स्टैण्ड से स्वतन्त्रतापूर्वक

लटकाने पर इसका एक सिरा उत्तर दिशा की ओर रहता है। दिशा बताने के इस गुण के कारण इन पत्थरों को लोडस्टोन (Load stone) अर्थात् दिशा बताने वाला पत्थर भी कहा जाने लगा।

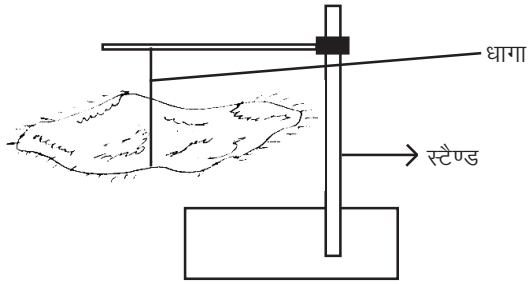

चित्र 4.2: स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाया गया लोडस्टोन

किसी ऐसे पदार्थ का टुकड़ा जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने तथा स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाए जाने पर उत्तर–दक्षिण दिशा में ठहरने का गुण हो, चुम्बक कहलाता है। चित्र 4.3 में साधारणतया प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ चुम्बक दिखाए गए हैं।

छड़ चुम्बक **U आकार का चुम्बक**

चित्र 4.3: चुम्बक के प्रकार

4.2 चुम्बक के ध्रुव (Poles of Magnet)

मेज पर गत्ते का एक टुकड़ा रखें और इस पर थोड़ा सा लोह चूर्ण फैला दें। एक छड़ चुम्बक को इस लोहचूर्ण में रख कर उठा ले।

आप क्या देखते हैं? क्या लौह चूर्ण चुम्बक के सब स्थानों पर समान मात्रा में चिपकता है? आप देखोगे कि लोह चूर्ण चुम्बक के साथ अनियमित रूप से चिपका हुआ है। अधिकतम चूर्ण सिरों से चिपका है और मध्य की ओर क्रमशः कम होता जाता है। छड़ चुम्बक के सिरे, जहां पर लोहचूर्ण अधिक चिपका हुआ होता, चुम्बक के ध्रुव (Pole) कहलाते है।

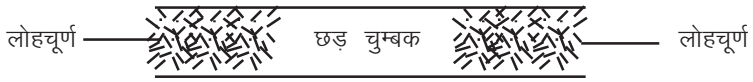

चित्र 4.4:

अब एक छड़ चुम्बक को धागे के साथ मध्य बिन्दु से बांध कर स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाएं, क्या चुम्बक स्थिर अवस्थामें आ जाता है? कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए।

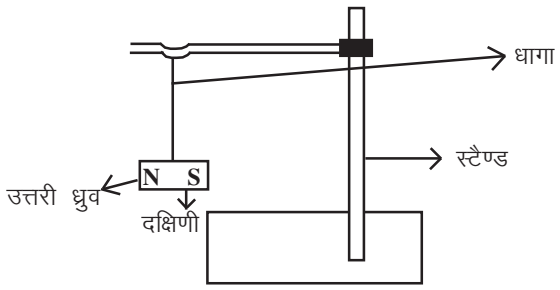

चित्र 4.5: स्वतंत्रतापूर्वक लटकाया गया चुम्बक

यह किस दिशा में स्थिर होता है? आप देखोगे कि चुम्बक उत्तर–दक्षिण दिशा में आकर ठहर जाता है। अब चुम्बक को अव्यवस्थित कर दीजिए और कुछ समय तक प्रतीक्षा कीजिए। आप देखोगे कि विराम अवस्था में आने के पश्चात् इसका वही ध्रुव उत्तर दिशा की ओर रहता है जो पहले भी उत्तर दिशा की ओर था। इससे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चुम्बक का एक ध्रुव सदा उत्तर की ओर दूसरा ध्रुव सदा दक्षिण की ओर ठहरता है।

चुम्बक का जो ध्रुव सदा दक्षिण दिशा में ठहरता है उत्तरी ध्रुव (North Pole) तथा जो ध्रुव सदा उत्तर दिशा में ठहरता है दक्षिणी ध्रुव (South Pole) कहलाता है।

4.3 दो चुम्बकों का परस्पर व्यवहार (Mutual Behaviour of Two Magnets)

दो छड़ चुम्बक लो। एक चुम्बक पर A तथा दूसरे पर B अंकित करो। चुम्बक A को चित्र की भांति लटकाओ। इस चुम्बक के उत्तरी ध्रुव के पास चुम्बक B का उत्तरी ध्रुव लाओ। क्या देखते हो? दोनों ध्रुव एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं अब चुम्बक A का दक्षिणी ध्रुव चुम्बक B के उत्तरी ध्रुव के पास लाओ। क्या देखते हो? दोनों ध्रुव में आकर्षण होता है।

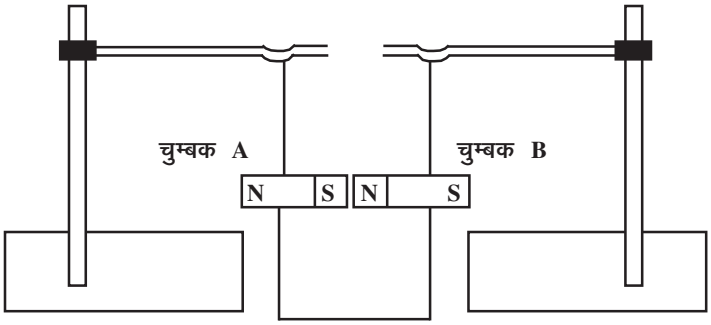

चित्र 4.6: दो चुम्बकों के विपरीत ध्रुवों में आकर्षण

अतः हम दो चुम्बकों के परस्पर व्यवहार के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चुम्बक के समान ध्रुवों में सदा प्रतिकर्षण और असमान ध्रुवों में सदा आकर्षण होता है।

दो चुम्बकों के परस्पर व्यवहार का उपयोग किसी चुम्बक के ध्रवों की प्रकृति का पता लगाने के लिए किया जाता है। मान लो एक छड़ चुम्बक के सिरों पर ध्रुव की प्रकृति मालूम करनी है। इसके लिए छड़ चुम्बक को एक चुम्बकीय सूई के उत्तरी ध्रुव के पास ले जाते हैं। यदि सूई चुम्बक की ओर आकर्षित होती है तो निश्चय ही चुम्बक का वह सिरा दक्षिणी ध्रुव होगाऔर दूसरा ध्रुव (सिरा) उत्तरी ध्रुव होगा। यदि आकर्षण के स्थान पर प्रतिकर्षण होता है तो छड़ चुम्बक का यह सिरा उत्तरी ध्रुव तथा दूसरा सिरा दक्षिणी ध्रुव होगा।

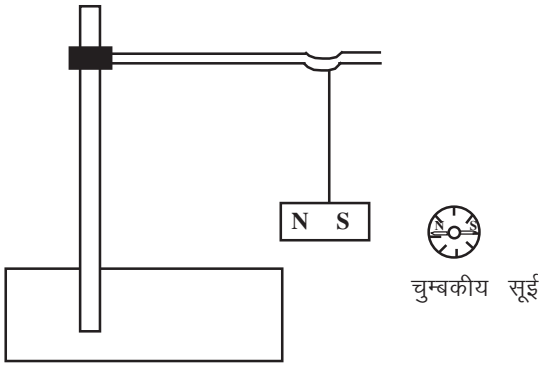

चित्र 4.7: चुम्बकीय सूई और छड़ चुम्बक के विपरीत ध्रुवों में आकर्षण

4.4 भू-चुम्बकत्व (Earth-Magnetism)

जब एक चुम्बक को धागे से बांधकर स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाया जाता है तो यह सदा उत्तर–दक्षिण दिशा में क्यों ठहरता है? इस तथ्य के रहस्य का पता 1600 ई०पू० में सर विलियम गिलबर्ट द्वारा किया गया। उसने यह बताया कि पथ्वी स्वयं एक विशाल चुम्बक है जिसकी उत्तर दिशा में पथ्वी के चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव तथा दक्षिण दिशा में चुम्बक का उत्तरी ध्रुव होता है। आप जानते हैं कि विपरीत प्रकृति के ध्रुवों में सदा आकर्षण होता है। इसलिए स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाया गया चुम्बक सदैव उत्तर–दक्षिण दिशा में ठहरता है।

पथ्वी के स्वयं एक विशाल चुम्बक होने का कारण अब खोज लिया गया है कि पथ्वी के वायुमण्डल के ऊपर आवेशित कणों की कई परते हैं जो तेजी से पथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाती रहती हैं। परिणामस्वरूप एक चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है जो पथ्वी के चुम्बकत्व के लिए उत्तरदायी है।

यह विचारणीय है कि भौगोलिक उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव पथ्वी के चुम्बकीय ध्रुवों के सम्पाती नहीं होते। यदि आपको इनमें से किसी एक दिशा का पता हो तो दूसरी दिशा का विशेष रूप से बनाए गए चार्टों द्वारा पता लगाया जा सकता है।

Ng = भौगोलिक उत्तरी ध्रुव
Sg = भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव
Nm = चुम्बकीय उत्तरी ध्रुव
Sm = चुम्बकीय दक्षिणी ध्रुव

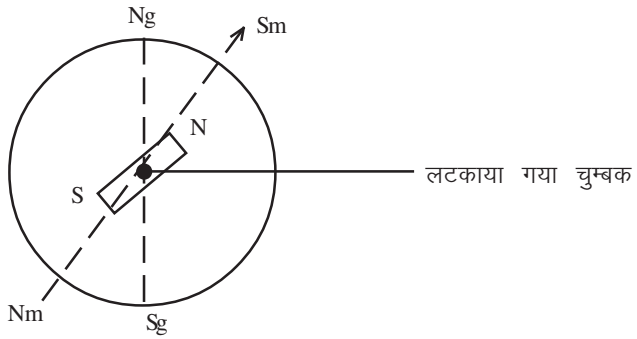

चित्र 4.8: भू-चुम्बकत्व

ज्ञात स्थानों पर इनमें से से किसी भी दिशा को मालूम करना बहुत आसान बात है। इसके अतिरिक्त दिन में आप सूर्य कीसहायता से और रात को ध्रुव तारे की सहायता से दिशा मालूम कर सकते हो। परन्तु घने जंगलों, महासागरों तथा अधिक ऊंचाई पर वायुमण्डल में दिशा मालूम करना कठिन है। इसके लिए **चुम्बकीय दिक्सूचक** (Magnetic compass) अधिक सहायक होता है।

4.5 चुम्बक बनाने की विधियां

आप जानते हो कि लोडस्टोन का एक टुकड़ा चुम्बक होता है। इसे प्राकृतिक चुम्बक कहते हैं। चुम्बक कृत्रिम रूप से भी बनाए जाते हैं। जो कृत्रिम चुम्बक (Artificial Magnet) कहलाते हैं। नर्म लोहे को आसानी से चुम्बक बनाया जा सकता है। चुम्बक बनाने की कुछ विधियां निम्नलिखित हैं।

(a) ***स्पर्श विधि (Touch Method):*** एक लोहे की सलाई लो। इसे मेज पर रखो। अब किसी छड़ चुम्बक के उत्तरी ध्रुव को सलाई के एक सिरे पर चित्रानुसार रखो और धीरे–धीरे रगड़कर इसे सलाई के दूसरे सिरे तक ले जाओ। इस क्रिया को 10-12 बार दोहराओ। दूसरे सिरे पर पहुंचकर हर बार चुम्बक को उठाकर पहले सिरे पर रखो और कभी भी उसे रगड़ते हुए वापस मत लाओ। परीक्षण करो कि क्या लोहे की सलाई भी चुम्बक बन गई है? इसके ध्रुवों की जांच करो।

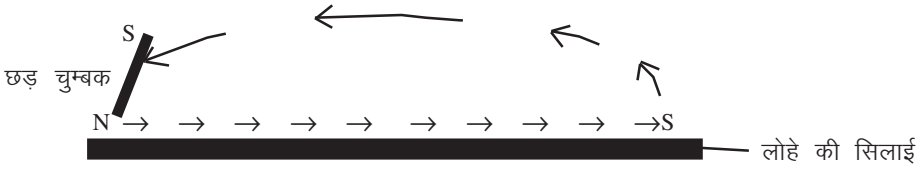

आप देखोगे कि लोहे की सलाई चुम्बक बन गई है। सलाई का वह सिरा जहां पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव रखा था, उत्तरी ध्रुव बनता है दूसरा सिरा दक्षिणी ध्रुव बनता है।

(b) ***विभाजित स्पर्श विधि (Divided Touch Method):*** इस विधि मे लोहे की सलाई के मध्य में दो छड़ चुम्बकों के विपरीत ध्रुव रखो। दोनों चुम्बकों को एक साथ धीरे–धीरे विपरीत दिशा में रगड़कर सलाई के सिरों तक ले जाओ। दोनों चुम्बकों को उठाकर फिर सलाई के मध्य में रखो। इस क्रिया को 10-12 बार दोहराओ। परीक्षण करो कि क्या लोहे की सलाई चुम्बक बन गई है? इसके ध्रुवों की जांच करो?

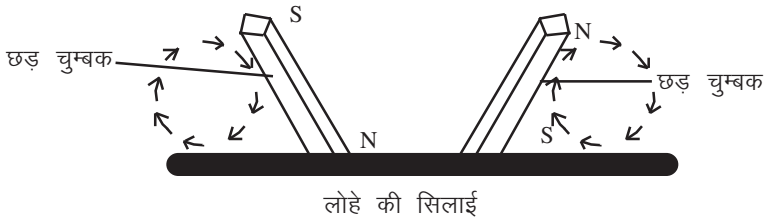

आप देखोगे कि लोहे की सलाई चुम्बक बन जाती है और एक चुम्बक का उत्तरी ध्रुव सलाई के जिस सिरे तक पहुंचता है वह दक्षिणी ध्रुव और दूसरे चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव सलाई के जिस सिरे तक पहुंचता है वह उत्तरी ध्रुव बन जाता है।

(c) ***विद्युत धारा विधि (Electric Current Method):*** लोहे की एक लम्बी कील लो। इस पर तांबे की पथक्कत की हुई तार को चित्रानुसार लपेटो। अब लपेटे हुए तार के दोनों सिरों को किसी सैल या बैटरी के धन ध्रुव और ऋण ध्रुवों से क्रमशः जोड़ो। अब कील में चुम्बकत्व की जांच करो। क्या देखते हो? इसका क्या कारण है?

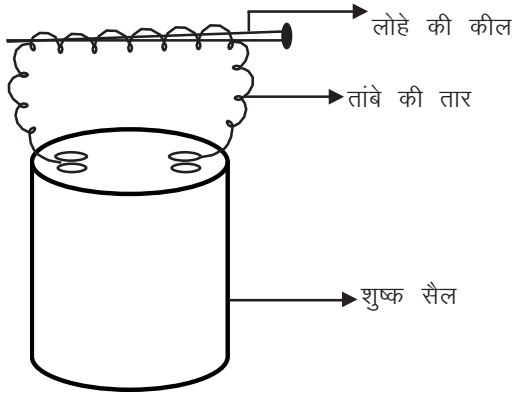

जब किसी लोहे के टुकड़े पर धागा लिपटी तांबे की तार में से विद्युत धारा प्रवाहित होती है तो लोहे का टुकड़ा चुम्बक बन जाता है। इस प्रकार से बनाए गए चुम्बक को विद्युत चुम्बक कहते हैं। विद्युत चुम्बक अधिक शक्तिशाली होती है।

चुम्बक प्रायः स्टील और लोहे से ही बनाए जाते हैं। लोहे के बने चुम्बकों की अपेक्षा स्टील के बने चुम्बक अधिक दिन तक चलते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) दो चुम्बकों के ध्रुव आपस में किस प्रकार व्यवहार करते हैं?

(ii) कृत्रिम चुम्बक बनाने की विभिन्न विधियोंके नाम बताओ।

4.6 सारांश

ऐसे पदार्थ का टुकड़ा जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने तथा स्वतंत्रतापूर्वक लटकाए जाने पर उत्तर–दक्षिण दिशा में ठहरने का गुण हो, चुम्बक कहलाता है। चुम्बक 'छड़' अथवा U–आकार का होता है। एक चुम्बक को स्वतंत्रतापूर्वक लटकाने पर वह सदा उत्तर–दक्षिण दिशा में स्थिर हो जाता है। चुम्बक का जो ध्रुव उत्तर दिशाकी ओर ठहरता है, उसे दक्षिणी ध्रुव कहा जाता है और जो ध्रुव दक्षिण दिशा की ओर ठहरता है, उत्तरी ध्रुव कहलाता है। दो चुम्बकों के समान ध्रुव एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं और विपरीत ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। चुम्बक को कृत्रिम रूप से बनाने की तीन विधियां हैं–स्पर्श विधि, विभाजित स्पर्श विधि तथा विद्युत धारा विधि।

मॉडल उत्तर

(i) दो चुम्बकों के समान ध्रुवों को एक–दूसरे के पास लाने पर वे एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं और विपरीत ध्रुवों को एक दूसरे के पास लाने पर वे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं।

(ii) कृत्रिम चुम्बक को तीन विधियों द्वारा तैयार किया जाता है–स्पर्श विधि, विभाजित स्पर्श विधि तथा विद्युत धारा विधि।

4.7 मुख्य शब्द

चुम्बक–वह पदार्थ जो लोहे को अपनी ओर आकर्षित करे और स्वतंत्रतापूर्वक लटकाने पर उत्तर–दक्षिण दिशा में ठहरे।

चुम्बकत्व–लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण।

कृत्रिम चुम्बक–वह चुम्बक जिसे मनुष्य द्वारा स्वयं बनाया जाता है।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Singh, Lakhmir Kaur, Manjit 'VII Class Science', Chand Book Col. New Delhi.

'कक्षा सात के लिए विज्ञान', NCERT, New Delhi

इकाई-II(a)

अध्याय-5: घर्षण

(Friction)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- घर्षण के कारण बता सकें।
- 'घर्षण एक आवश्यक बुराई है' इस कथन की व्याख्या कर सकें।
- घर्षण को कम करने के उपायों की सूची बना सकें।

सरंचनाः

5.1 प्रस्तावना
5.2 घर्षण का कारण
5.3 'घर्षण एक आवश्यक बुराई है'
5.4 घर्षण को कम करने के उपाय
5.6 सारांश
मॉडल उत्तर
5.7 मुख्य शब्द
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

जब हम किसी वस्तु पर बहुत थोड़ा–सा बल लगाते हैं और वह वस्तु पूर्ण रूप से स्थिर रहती है तो इसका अभिप्रपय यह होता है कि जिस तल पर वह वस्तु पड़ी है, वह तल वस्तु पर कुछ बल लगाता है तथा यह बल हमारे द्वारा लगाये गए बल के विपरीत दिशा में कार्य करता है। अर्थात् किसीस्थिर वस्तु पर एक ऐसा बल कार्य करता है जो उसकी गति के विपरीत होता है। यह विपरीत बल घर्षण है। एक चलती हुई गेंद थोड़ी देर बार धीमी हो जाती है व रूक जाती है क्योंकि गेंद और जमीन के बीच में घर्षण होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वह बल जो सदा एक वस्तु की अपने संपर्क में आने वाली दूसरी वस्तु पर गति का विरोध करता है उसे घर्षण बल अथवा घर्षण कहा जाता है। घर्षण बल हमेशा किसी वस्तु की गति की दिशा के विपरीत होता है।

5.2 घर्षण का कारण

आपने रेगमार (Sand paper) देखा होगा। रेगमार की सतह खुरदरी होती है। जब हम एक रेगमार को दूसरे पर चलाने का प्रयत्न करते हैं तो उसकी गति सहज नहीं होती क्योंकि दोनों रेगमार की खुरदरी सतह के आपस में मिलने से घर्षण उत्पन्न होता है। वास्तव में, प्रत्येक वस्तु की सतह खुरदरी होती है, चाहे वह नंगी आंखों से देखने पर समतल (Smooth) लगे। यदि हम सूक्ष्मदर्शी की सहायता से प्रत्येक वस्तु को देखें तो यह पता चलता है कि सभी वस्तुएं खुरदरी होती हैं, कुछ वस्तुएं कम एवं कुछ ज्यादा खुरदरी होती है। वस्तु की सतह पर कुछ कण छोटी–छोटी पहाड़ियों के रूप में उठे होते हैं और कुछ दूसरे कण गड्डे (Groves) बनाते हैं। ये छोटी–छोटी पहाड़ियां और गड्डे एक दूसरे से मिलकर समतल हो जाते हैं। इस प्रकार दो सतहों का जुड़ाव एक वस्तु की दूसरी वस्तु पर गति का विरोध करता

है और इससे घर्षण बल उत्पन्न होता है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि घर्षण सतहों के खुरदरेपन के कारण होता है।

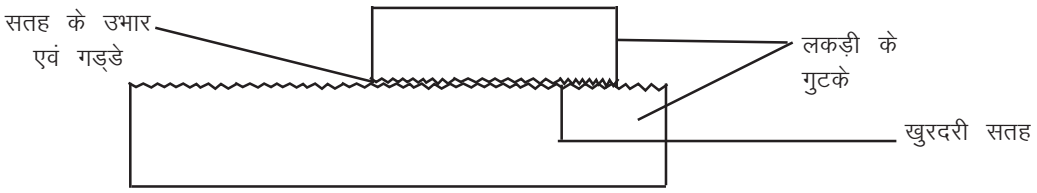

चित्र 5.1: दो लकड़ी के गुटकों की खुरदरी सतह के कारण उत्पन्न घर्षण

5.3 घर्षण एक आवश्यक बुराई है (Friction is a necssary evil)

घर्षण का हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ मामलों में घर्षण हमारे लिए लाभदायक है और हम इसे बनाये रखना अथवा बढ़ाना चाहते हैं। परन्तु कुछ मामलों में घर्षण हमारे लिए हानिकारक है और हम इसे कम करना चाहते हैं। घर्षण के विभिन्न लाभ व हानियां इस प्रकार हैं–

5.3.1 घर्षण के लाभ (Uses of Friction)

घर्षण बल हमें फिसलने से बचा कर जमीन पर चलने में सहायता करता है। जब हम अपने पांव से जमीन को धकेलते हैं तो घर्षण बल हमारे धक्के के प्रति आगे की ओर प्रतिक्रिया करता है जिससे हमें आगे की ओर धक्का लगता है। यदि हमारे जूतों की एड़ियों और जमीन के बीच घर्षण न हो तो हम चल नहीं पायेंगे। एक चिकने या फिसलने वाले फर्श पर चलना कठिन होता है क्योंकि चिकने फर्श पर घर्षण बल कम होता है और हम फिसल जाते हैं। वर्षा ऋतु में हरी काई युक्त सड़क पर चलना कठिन होता है क्योंकि काई सड़क की सतह को चिकना बना देती है और इसीलिए घर्षण बल हमें फिसलने से बचाने के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी प्रकार यदि हम सड़क पर पड़े केले के छिलके पर पांव रख दें हो हम फिसल जाते हैं क्योंकि केले का छिलका चिकना होता है और घर्षण बल कम हो जाता है।

घर्षण की अनुपस्थिति में मशीन की बेल्ट काम नहीं कर सकती और वाहनों की ब्रेक नहीं लगाए जा सकते। ब्रेक–शू (Brake-shoe) और ब्रेक–ड्रम (Brake-Drum) के बीच का घर्षण पहियों की गति कम करता है तथा टायरों और सड़क के बीच का घर्षण कार को रोकता है। यदि किसी कार के टायरों और सड़क के बीच घर्षण न हो तो कार के पहिए एक ही स्थान पर गोल–गोल घूमते रहेंगे और कार गति नहीं करेगी। घर्षण के बिना कील और पेच वस्तुओं को इकट्ठा पकड़ नहीं रख सकते और न ही गांठ बांधी जा सकती है।

घर्षण की सहायता से ही हम कागज पर लिख सकते हैं। पेन की नोक एवं कागज के बीच घर्षण होता है जो हमें लिखने योग्य बनाता है। यदि घर्षण बल न हो तो पेन या चाक से लिखना असंभव होगा। माचिस की तीली जलाना भी घर्षण का एक महत्वपूर्ण उपयोग है। जब हम माचिस की तीली के सिरे को माचिस की डिब्बी की साइड से रगड़ते हैं तो माचिस की तीली के सिरे और माचिस की साइड में घर्षण बल से ऊष्मा उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा माचिस की तीली के सिरे पर उपस्थिति रसायन को गर्म कर देती है जिससे तीली जलने लगती है। इस प्रकार घर्षण के बिना माचिस की तीली को जलाना संभव नहीं होता।

कई बार हमें घर्षण को ज्यादा लाभदायक बनाने के लिए घर्षण को बढ़ाना पड़ता है। घर्षण को धरातल का खुरदरापन बढ़ाकर बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए माचिस की तीली के सिरे और माचिस की डिब्बी की एक साइड को जान–बूझकर खुरदरा बनाया जाता है ताकि दोनों को रगड़ने से अधिक घर्षण उत्पन्न हो और माचिस की तीली आसानी से जल उठे। हम साइकिल, कार, बस और दूसरे वाहनों के पहियों में गड्डे बना कर भी घर्षण को बढ़ाते

हैं। टायरों की सतह लहरदार एवं खुरदरी बनायी जाती है जिससे सड़क और टायरों के बीच घर्षण में वद्धि हो। घर्षण बल में वद्धि होने से टायर की सड़क पर अच्छी पकड़ रहती है जिससे वाहन सड़क पर फिसलने से बचा रहता है। पुराने, घिसे हुए टायर जिनकी सतह कम खुरदरी होती है, गीली सड़क पर कम घर्षण उत्पन्न करते हैं जिससे वाहन अनियंत्रित हो सकता है और दुर्घटना हो सकती है।

दो ठोस सतहों की अपेक्षा द्रवों में घर्षण कम होता है। उदाहरण के लिए एक पानी के जहाज और पानी में घर्षण बल बहुत कम होता है। घर्षण बल जितना कम होता है वस्तु को रोकने में उतना ही अधिक समय लगता है। यही कारण है कि पानी के जहाज को रोकने में सड़क पर चलती हुई कार को रोकने की अपेक्षा अधिक समय और बल लगाना पड़ता है।

5.3.2 घर्षण की हानियां
(Harms of Friction)

हमारे दैनिक जीवन में ऐसी बहुत सी परिस्थितियां होती हैं जिनमें घर्षण हमारे लिए हानिकारक होता है या असुविधा उत्पन्न करता है। घर्षण विशेष रूप से उन मशीनों के लिए हानिकारक है जिनमें घूमने वाले पुर्जे होते हैं। मशीनों में घर्षण निम्नलिखित कारणों से हानिकारक है–

1. घर्षण मशीनों में ऊर्जा की खपत को बढ़ाकर मशीनों की कार्यक्षमता को कम करता है।
2. घर्षण से मशीनों के पुर्जों में ऊष्मा उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा धीरे–धीरे पुर्जों को हानि पहुंचाती है।
3. मशीनों में बहुत से ऐसे पुर्जे होते हैं जो लगातार गति के कारण एक दूसरे से रगड़ खाते हैं जैसे–गियर आदि। घर्षण के कारण ये रगड़ खाने वाले पुर्जे धीरे–धीरे टूट–फूट जाते हैं और इन्हें बदलना पड़ता है।
4. दैनिक जीवन में घर्षण के कारण हमारे जूतों के तले घिस जाते हैं जब हम सड़क पर चलते हैं तो हमारे जूतों के तलों और सड़क की सतह में घर्षण उत्पन्न होता है। इस घर्षण के कारण धीरे–धीरे जूतों के तले घिस या टूट जाते हैं।

5.4 घर्षण को कम करने के उपाय (Methods of Reducing Friction)

घर्षण सतह के खुरदरेपन के कारण होता है। चिकनी एवं समतल सतहों पर अपेक्षाकृत कम घर्षण होता है। इसीलिए ऐसी कोइ भी प्रक्रिया जिससे दो सतहों को चिकना या समतल बनाया जा सकता है, घर्षण को कम कर देगी। घर्षण को कम किया जा सकता है परन्तु बिल्कुल खत्म नहीं किया जा सकता। घर्षण को कम करने के कुछ मुख्य उपाय इस प्रकार हैं–

5.4.1. ***पॉलिश द्वारा:*** यदि खुरदरी सतह को पॉलिश कर दिया जाए तो वह चिकनी हो जाती है और घर्षण कम हो जाता है।

5.4.2. ***तेल या ग्रीस द्वारा:*** मशीनों के पुर्जों आदि में घर्षण कम करनेके लिए तेल या ग्रीस जैसे स्नेहकों का उपयोग किया जाता है। इससे मशीन के पुर्जों में घर्षण कम हो जाता है और टूट–फूट कम होती है।

5.4.3. ***बाल-बेयरिंग द्वारा:*** बॉल बेयरिंगके उपयोग द्वारा घर्षण को कम किया जाता है।

5.5.4. ***आकृति में परिवर्तन द्वारा:*** घर्षण कम करने के लिए वस्तु की आकृति रेखीय बनाई जाती है। वस्तु की आकृति रेखीय बनाने से वह कम रगड़ खाती है जिससे घर्षण कम होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) घर्षण से क्या अभिप्राय है?

(ii) 'घर्षण एक आवश्यक बुराई है' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

5.5 सारांश

वह बल जो सदा एक वस्तु की अपने संपर्क में आनेवाली दूसरी वस्तु पर गति का विरोध करता है, उसे घर्षण बल कहा जाता है। घर्षण मुख्यतः तल या सतह के खुरदरेपन के कारण होता है। घर्षण के हमारे दैनिक जीवन में अनेक लाभ हैं परंतु घर्षण की हानियां भी हैं। अतः यह कथन सत्य है कि 'घर्षण एक आवश्यक बुराई है'। घर्षण को पॉलिश, तेल या ग्रीस, बाल बेयरिंग तथा आकृति में परिवर्तन द्वारा कम किया जा सकता है।

मॉडल उत्तर

1. घर्षण से अभिप्राय उस विपरीत बल से है जो सदा एक वस्तु की अपने संपर्क में आने वाली दूसरी वस्तु पर गति का विरोध करता है।
2. 5.3 में देखें।

5.6 मुख्य शब्द

घर्षण—वह विपरीत बल जो गति के विरोधस्वरूप उत्पन्न होता है।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी', कक्षा 9 के लिए पाठ्यपुस्तक NCERT, Delhi

'कक्षा सात के लिए विज्ञान', SCERT, Gurgaon

इकाई-II(a)

अध्याय-6: जल एक सार्वभौमिक विलायक के रूप में (Water as Universal Solvent)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- जल की सार्वभौमिक विलायकता का वर्णन कर सकें।
- जल की सार्वभौमिक विलायकता का कारण बता सकें।
- जल की ध्रुवीय प्रकृति को प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकें।
- जल अणु की रचना बना सकें।
- जल अणु में हाइड्रोजन की बंधुता की व्याख्या कर सकें।

सरंचना:

6.1 प्रस्तावना
6.2 जल एक सार्वभौमिक विलायक
6.3 जल एक सार्वभौमिक विलायक क्यों है?
6.4 जल की ध्रुवीय प्रकृति
6.5 जल अणु की रचना
6.6 जल अणु में हाइड्रोजन की बंधुता
6.7 सारांश
मॉडल उत्तर
6.8 शब्दावली
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.1 प्रस्तावना

जल सभी जीवों के शरीर का आवश्यक अंग है। पौधे, जन्तु और मानव सभी इसी से जीवन पाते हैं। बहुतसमय तक जल को तत्व माना जाता रहा परन्तु 1781 में कैवेंडिश ने यह सिद्ध किया कि जल हाइड्रोजन (Hydrogen) और ऑक्सीजन का यौगिक है। आयतन के अनुसार जल में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन होता है। जल का रासायनिक नाम हाइड्रोजन ऑक्साइड है और इसका आण्विक सूत्र H_2O है। जल तीन रूपों–ठोस, द्रव और गैस में पाया जाता है।

6.2 जल एक सार्वभौमिक विलायक

जल एक सार्वभौमिक विलायक हैं यह बहुत से पदार्थों को अपने में घोलने की क्षमता रखता है। बहुत से पदार्थ जैसे चीनी, नमक (NaCl), कापर सल्फेट ($CuSO_4$), यूरिया, पोटैशियम नाइट्रेट (KNo_3), पोटैशियम परमेगनेट ($KMnO_4$), आदि जल में आसानी से घुल जाते हैं। कॉपर सल्फेट के घोल का रंग नीला होता है और पोटैशियम परमेगनेट के घोल का रंग जामुनी होता है। विभिन्न प्रकार के रंग पानी में घुल जाते हैं और कपड़ों को रंगने के काम आते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे कई तरल पदार्थ भी हैं जो किसी भी अनुपात में जल में मिश्रित हो जाते हैं जैसे–एल्कोहल आदि।

किसी घुलनशील पदार्थ को जल में घोलने से प्राप्त मिश्रण को जलीय घोल (Aqueous Solution) कहते हैं।

6.3 जल एक सार्वभौमिक विलायक क्यों है? (Why does Water act as Universal Solvent?)

इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. जल के अणुओं की प्रकृति ध्रुवीय होती है।
2. जल के अणुओं में अन्य यौगिकों के साथ हाइड्रोजन आबन्ध (H-bond) बनाने की क्षमता है।
3. जल अन्य पदार्थों से अभिक्रिया करके उन्हें अपने में घोल लेने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए जब जल सोडियम (Na) धातु अथवा सल्फर–डाई–ऑक्साइड गैस से क्रिया करता है तो सोडियम हाइड्रोक्साइड तथा सल्फ्यूरस अम्ल बनते हैं।

$$\underset{\text{सोडियम धातु}}{2Na} + \underset{\text{जल}}{2H_2O} \rightarrow \underset{\text{सोडियम हाइड्रोक्साइड}}{2NaOH} + \underset{\text{हाइड्रोजन}}{H_2}$$

$$\underset{\text{सल्फर–डाई–ऑक्साइड}}{SO_2} + \underset{\text{जल}}{H_2O} \rightarrow \underset{\text{सल्फ्यूरस अम्ल}}{H_2SO_3}$$

6.4 जल की ध्रुवीय प्रकृति (Polar Nature of Water)

यह जल का ऐसा गुण है जिसके कारण जल के अणु का एक सिरा धन आवेशित (Positively charged) होता है और दूसरा सिरा ऋण आवेशित (Negatively charged) होता है। इसे जल की ध्रुवीय प्रकृति कहते हैं। इसे हम निम्नलिखित प्रयोग से सिद्ध कर सकते हैं।

प्रयोग–एक ब्यूरेट को उर्ध्वाधर (vertical) स्थिति में रख कर स्टैण्ड में कस दो। इसमें थोड़ा सा जल डालो। एक बीकर ब्यूरेट के नीचे रख दो। ब्यूरेट का स्टाप कॉर्क खोल कर जल की धारा को बीकर में गिरने दो। अब एक एबोनाइट (Ebonite) की छड़ को बिल्ली की खाल से रगड़कर इसे ऋण आवेशित करो। इस आवेशित छड़ को जलकी धारा के पास लाओ। आप देखेंगे कि जल की धारा एबोनाइट की छड़ की ओर आकर्षित होगी क्योंकि विपरीत आवेश एक–दूसरे को आकर्षित करते हैं। (चित्र 6.1a)

इसी प्रयोग को अब शीशे की छड़ को सिल्क के कपड़े से रगड़ कर दोहराओ। जब हम शीशे की छड़ को सिल्क के कपड़े से रगड़ते हैं तो शीशे की छड़ धन आवेशित हो जाती है। इस आवेशित छड़ को जल की धारा के निकट लाने पर आप देखेंगे कि इस बार भी जल की धारा छड़ की ओर आकर्षित होती है (चित्र 6.1b) क्योंकि विपरीत आवेश एक–दूसरे को आकर्षित करते हैं।

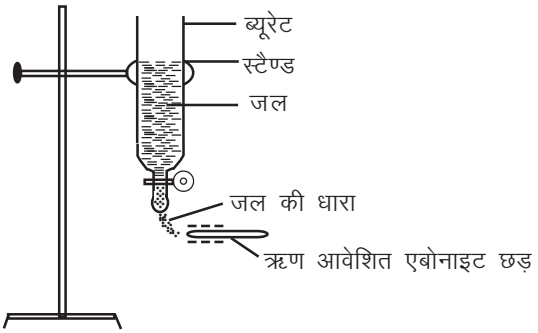

चित्र 6.1(a): जल की धारा –ve आवेशित एबोनाइट की छड़ की ओर आकर्षण (a)

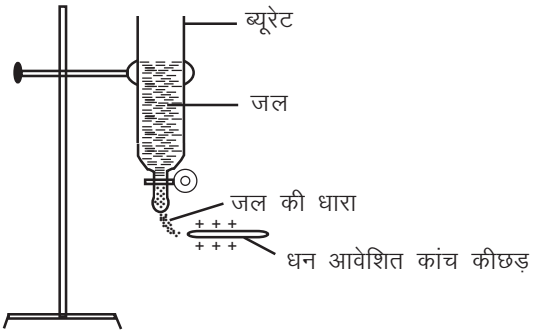

चित्र 6.1(b): जल की धारा +ve आवेशित कांच की छड़ की ओर आकर्षण (b)

इस प्रयोग से यह परिणाम निकलता है कि जल के अणु की प्रकृति ध्रुवीय है। जल के अणु का एक सिरा धन आवेशित होता है और दूसरा सिरा ऋण आवेशित होता है। छड़ चाहे धन आवेशित हो या ऋण आवेशित, प्रत्येक अवस्था में जल की धारा और छड़ के बीच में आकर्षण होता है। ऐसा होने का कारण यह है कि जल के अणु अपने आवेश को छड़ के आवेश के प्रभाव के अनुसार व्यवस्थित (arrange) कर लेते हैं। जल का ऋणात्मक आवेश वाला सिरा धनात्मक आवेश वाली छड़ के सामने आ जाता है और इसी प्रकार जल का धनात्मक आवेश वाला सिरा ऋणात्मक आवेश वाली छड़ के सामने आ जाता है। इसी ध्रुवीय प्रकृति के कारण जल एक सार्वभौमिक विलायक है। इसी कारण विद्युत संयोजी यौगिक जैसे कॉपर सल्फेट, सोडियम क्लोराइड आदि आसानी से जल में घुल जाते हैं।

6.5 जल के अणु की रचना (Structure of Water Molecule)

जल के अणु की इलैक्ट्रॉनिक संरचना इस प्रकार है–

$$H\times + \times\underset{\times\times}{\overset{\times\times}{O}}\times + \times H \rightarrow H\underset{\times\times}{\overset{\times\times}{O}}H$$

जल अणु

जल के अणु की आकृति इस प्रकार है– जल के अणु में ऑक्सीजन परमाणु पर कुछ ऋण आवेश होता है जिसे δ^- डेल्टा माइनस कहा जाता है तथा हाइड्रोजन परमाणु पर कुछ धन आवेश होता है जिसे δ^+ डेल्टा प्लस कहते हैं। ऑक्सीजन परमाणु पर कुछ ऋण आवेश और हाइड्रोजन पर कुछ धन आवेश होने के कारण जल के अणु की प्रकृति ध्रुवीय होती है।

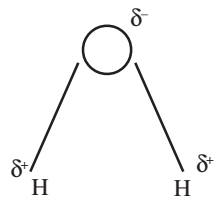

6.6 जल अणु में हाइड्रोजन की बंधुता
(Hydrogen Bonding in Water moleule)

ऑक्सीजन परमपणु, हाइड्रोजन परमाणु की अपेक्षा अधिक ऋण विद्युत आवेशी होता है इसलिए हाइड्रोजन परमाणु दूसरे यौगिकों के ऋण विद्युत आवेशी तत्वों से ढीले बंधन बनाते हैं। जल के अणु में धन आवेशित हाइड्रोजन अणु और यौगिक में ऋण आवेशित ऑक्सीजन अणु मिलकर हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। (इन्हें -----) चिन्ह द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

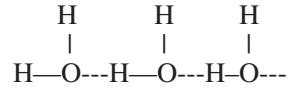

नोट–कुछ सहसंयोजक यौगिक (Covalent compounds) जैसे क्लोरोफोर्म, बैंजीन आदि पानी में अघुलनशील हैं क्योंकि इनकी प्रकृति अध्रुवीय है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) जल के अणुओं की प्रकृति कैसी होती है और क्यों?

(ii) जल के अणु में हाइड्रोजन बंधुता की व्याख्या करो।

6.7 सारांश

जल सभी जीवों के शरीरों का आवश्यक अंग है। जल में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन होती है। जल का रासायनिक सूत्र H_2O है। जल बहुत से पदार्थों को अपने में घोलने की क्षमता रखता है। जल के इस गुण को इसकी सार्वभौमिक विलायकता कहा जाता है। जल की सार्वभौमिक विलायकता के तीन कारण होते हैं–जल के अणुओं की ध्रुवीय प्रकृति, जल के अणुओं की अन्य यौगिकों के साथ हाइड्रोजन आबन्ध बनाने की क्षमता तथा जल की दूसरे पदार्थों को स्वयं में घोलने की क्षमता।

मॉडल उत्तर

1. जल के अणुओं की प्रकृति ध्रुवीय होती है। ऐसा जल के अणु में उपस्थित ऑक्सीजन परमाणु पर ऋण आवेश एवं हाइड्रोजन परमाणु पर धन आवेश के कारण होता है।

2. 6.6 में देखें।

6.8 मुख्य शब्द

सार्वभौमिक विलायकता—दूसरे पदार्थों को स्वयं में आसानी से घोलने की क्षमता।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

'कक्षा 7 के लिए विज्ञान' NCERT, Delhi

इकाई-II(b)

अध्याय-1: अध्यापन कार्य का विश्लेषण (Pedagogical Analysis)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- प्रत्ययों की पहचान कर सकें।
- व्यवहारगत परिवर्तनों की सूची बना सकें।
- क्रियाओं तथा प्रयोगों की सूची बना सकें।
- मूल्यांकन प्रक्रियाओं की सूची बना सकें।

सरंचना:

1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रत्यय की पहचान
1.3 व्यवहारगत परिवर्तनों की सूची बनाना
1.4 क्रियाओं तथा प्रयोगों की सूची बनाना
1.5 मूल्यांकन प्रक्रियाओं की सूची बनाना
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

शिक्षण वह प्रक्रिया है जो उद्दीपनों के माध्यम से वांछित व्यवहार परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। अध्यापक को शिक्षण क्रिया का संचालन करने के लिए अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इन में विषय वस्तु का चयन, उद्देश्यों का निर्धारण, अधिगम अनुभवों का सजन एवं मूल्यांकन सम्मिलित है। शिक्षण से संबंधित इन विभिन्न अवस्थाओं के विश्लेषण को 'अध्यापन कार्य का विश्लेषण' कहा जाता है। अध्यापन कार्य विश्लेषण के चार मुख्य तत्व हैं–प्रत्यय की पहचान, व्यवहारगत परिवर्तनों की सूची बनाना, क्रियाओं व प्रयोगों की सूची बनाना तथा मूल्यांकन प्रक्रियाओं की सूची बनाना।

1.2 प्रत्यय की पहचान

प्रत्यय चिंतन का एक आवश्यक अंग है। प्रत्यय हमारे चिंतन को निर्देशित करते हैं और उन्हें नेतत्व प्रदान करते हैं। यदि प्रत्यय स्पष्ट है तो हमारा चिंतन भी स्पष्ट एवं उपयुक्त रहेगा। प्रत्यय एक सामान्यकृत अर्थ होता है जिसका सम्बन्ध एक पदार्थ से होता है। प्रत्यय हमारे अनुभवों के परिणाम होते हें। उदाहरणार्थः कई धातुओं, द्रव पदार्थों को देखकर हम उनके समान गुणों या विशेषताओं के सम्बन्ध में एक सामान्य विचार बना लेते हैं इस प्रकार प्रत्यय वस्तुओं या

घटनाओं की सामान्य विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री ब्रूनर के अनुसार किसी प्रत्यय के पांच तत्व होते हैं–(i) नाम, (ii) उदाहरण (सकारात्मक एवं नकारात्मक), (iii) गुण, (iv) गुणात्मक मूल्य, (v) नियम।

अध्यापन क्रिया विश्लेषण के दौरान सबसे पहले विषय वस्तु का चयन किया जाता है और इसके पश्चात अध्यापक यह निश्चित करता है कि इस प्रकरण के किन–किन तत्वों पर अधिक बल देना चाहिए। दूसरे शब्दों में अध्यापक मुख्य प्रत्यय एवं सूक्ष्म प्रत्ययों की पहचान करता है।

1.3 व्यवहारगत परिवर्तनों की सूची बनाना

विषय–वस्तु का विश्लेषण करने अर्थात् प्रत्यय की पहचान के पश्चात् अध्यापक यह सुनिश्चित करता है कि इस प्रत्यय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों में क्या परिवर्तन अपेक्षित है। शिक्षण की योजना बनाने से पूर्व अधिगम निष्पत्तियों को निर्धारित करना आवश्यक होता है क्योंकि विद्यार्थी द्वारा इनकी प्राप्ति के लिए अध्यापक उपयुक्त अधिगम अनुभवों का चयन करता है। व्यवहारपरक उद्देश्यों के सम्बन्ध में हम इकाई–I में अध्ययन कर चुके हैं। व्यवहारपरक उद्देश्यों को निर्धारित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए–

– प्रत्येक उद्देश्य विद्यार्थी के केवल एक ही व्यवहार की ओर संकेत करे।

– विद्यार्थी का वह व्यवहार दष्टिगोचर होना चाहिए।

1.4 अधिगम क्रियाओं तथा प्रयोगों की सूची बनाना

इस चरण में ऐसी शिक्षण विधियां, तकनीकें और प्रयोग सम्मिलित किए जाते हैं जो विद्यार्थी द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हों। इन अधिगम अनुभवों को निर्धारित करते समय उपलब्ध भौतिक तथा मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखा जाता है। भौतिक विज्ञान शिक्षण में आगमन–निगमन विधि का प्रयोग करके विषय को प्रभावशाली बनाया जाता है।

1.5 मूल्यांकन प्रक्रियाओं की सूची बनाना

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के मूल्यांकन हेतु अध्यापक विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करता है। (इन तकनीकों के सम्बन्ध में आप यूनिट–5 में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे) इस चरण में अध्यापक यह सुनिश्चित करता है कि विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति ज्ञात करने के लिए वह किस प्रकार की मूल्यांकन तकनीक का प्रयोग करेगा। इन तकनीकों का प्रयोग वह शिक्षण–अधिगम के दौरान भी कर सकता है और बाद में भी।

अध्यापन कार्य विश्लेषण का उदाहरण

इस यूनिट के प्रथम भाग में दिए गए प्रकरणों में से एक से सम्बन्धित 'अध्यापन कार्य विश्लेषण' करना हम इस अध्याय में सीखेंगे।

प्रकरण–ऊष्मा संचरण

I. प्रत्यय की पहचान

मुख्य प्रत्यय (Major Concept)–ऊष्मा संचरण

सूक्ष्म प्रत्यय (Minor Concept)

1. ऊष्मा
2. ऊष्मा संचरण की विधियों के नाम
3. चालन (Conduction)
4. संवहन (Convection)
5. विकिरण (Radiation)

II. व्यवहारगत परिवर्तनों की सूची बनाना

इस प्रकरण के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी इस योग्य हो जाएंगें कि–

1. ऊष्मा को परिभाषित कर सकें।
2. ऊष्मा संचरण की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
3. ऊष्मा संचरण की विधियों के नाम बता सकें।
4. चालन विधि की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
5. संवहन विधि की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
6. विकिरण विधि की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
7. सुचालक एवं कुचालक पदार्थों में विभेद कर सकें।
8. चालन, संवहन और विकिरण से सम्बन्धित विभिन्न प्रयोग कर सकें।
9. ऊष्मा संचरण की विधियों से सम्बन्धित चित्र बना सकें।

III. क्रियाओं तथा प्रयोगों की सूची बनाना

ऊष्मा संचरण से सम्बन्धित क्रियाएं

1. गर्म पानी के गिलास को छू कर दिखाना।
2. लोहे की एक पतली सिलाई को एक सिरे को गरम करने पर दूसरे सिरे का गर्म होना अनुभव करना।
3. जलती हुई मोमबत्ती की लौ के पास हाथ ले जाकर देखना।
4. सेबों या टाफियों को विद्यार्थियों को इस प्रकार बांटना कि पहला बालक एक सेब अपने पास रख लें और फिर एक–एक उठाकर दूसरे बालक को देता रहे। दूसरा बालक भी एक सेब अपने पास रख ले और शेष एक–एक करके तीसरे बालक को देता रहे और यह क्रिया उस समय तक चलती रहे जब तक सेब अन्तिम बालक तक न पहुंच जाए।
5. सेबों या टाफियों को इस प्रकार बांटना कि पहला विद्यार्थी एक सेब ले कर पंक्ति के अन्त में चला जाए फिर दूसर और तीसरा और सभी बालक इसी प्रकार सेब लेकर अपना स्थान छोड़ कर पंक्ति के अन्त में चला जाए।

ऊष्मा संचरण से सम्बन्धित प्रयोग

प्रयोग–1

तांबे की तार के एक टुकड़े के सिरे को स्टैण्ड में कसो। इस तार पर मोम की सहायता से छोटी–छोटी लोहे की कीलें चिपकाओ। अब इसतार के एक सिरे को स्पिरिट लैम्प से गरम करो। तार गरम होने पर लोहे की कीलें एक–एक करके गरम किए गए सिरे की ओर से गिरनी आरम्भ होती है। इससे स्पष्ट होता है कि ऊष्मा तांबे की तार के टुकड़े के एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर कणों द्वारा संचरित होती है।

प्रयोग–2

एल्यूमीनियम और लोहे की बनी दो समान लम्बाई व समान मोटाई की छड़ें लें। दोनों छड़ों पर मोम की सहायता से बराबर दूरी पर लोहे की कीलें चिपका दो। उस बिन्दु को स्पिरिट लैम्प से गरम करो जहां दोनों छड़ें एक दूसरे को स्पर्श करें। छड़ों को गरम करने से मोम पिघलने लगता है परन्तु छड़ों में बराबर दूरी पर लगी कीलों में से पहली कील एल्यूमीनियम की छड़ से गिरती है तथा बाद में लोहे की छड़ से। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि एल्यूमीनियम लोहे की अपेक्षा ऊष्मा का अधिक चालक है।

प्रयोग–3

एक परखनली में पानी भरो। इसमें एक बर्फ का टुकड़ा एक भार के साथ बांधकर डालो, जिससे वह परखनली की तली में बैठ जाए। इस परखनली के द्रव के तल को परखनली की एक साइड को गर्म करो। गरम करने पर हम देखतें हैं कि नली के ऊपरी भाग का पानी उबलने लगता है, परन्तु परखनली की बर्फ बहुत कम पिघलती है। इस प्रयोग से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं:–

(i) पानी ऊष्मा का कुचालक है।

(ii) पानी को ऊपर की ओर से गरम करने पर नीचे की ओर ऊष्मा का संवहन नहीं होता। द्रवों में ऊष्मा का संवहन केवल नीचे से ऊपर की ओर होता है।

प्रयोग–4

गैसें (वायु) भी ऊष्मा की कुचालक है:–

एक परखनली लो। इसके मुंह में उंगली डालकर परखनली की तली को गरम करो। हम देखते हैं कि परखनली को देर तक गरम करते रहने पर भी उंगली गरम अनुभव नहीं होती। यह प्रयोग किसी अन्य गैस के साथ दोहराया जा सकता है। अतः हम देखते हैं कि वायु तथा अन्य सभी गैसें ऊष्मा की कुचालक है।

प्रयोग–5

एक फ्लास्क के मुंह पर एक मुड़ी हुई कांच की पतली नली लगाओ। इस नली में थोड़ा सा रंगीन द्रव डालो। फ्लास्क के आधे भाग पर बाहर की ओर कालिख (काजल या काला रंग) और दूसरे आधे भाग पर सफेद रंग लगाओ। अब फ्लास्क के काले भाग के समीप एक गर्म पानी से भरी हुई केतली या पतीली रखो। फ्लास्क का काला भाग केतली की गरमी को आसानी से शोषित कर लेता है, जिसके कारण कांच की नली का रंगीन द्रव गतिशील हो जाता है। यह ताप में परिवर्तन के कारण होता है। अतः इस उपकरण को तापदर्शी कहा जाता है।

तापदर्शी और पतीली के बीच एक कार्ड बोर्ड का टुकड़ा रखते हैं। हम देखते हैं कि अब रंगीन द्रव दाईं ओर नहीं खिसकता है। यदि संवहन विधि द्वारा ऊष्मा फ्लास्क तक गई होती तो इस बार भी फ्लास्क गरम हो जाता।

मूल्यांकन

विद्यार्थियों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए अध्यापक 'ऊष्मा संचरण' से सम्बन्धित निम्न प्रश्न पूछेगा। अध्यापक इन प्रश्नों को मौखिक या लिखित अथवा दोनों रूपों में पूछ सकता है–

1. ऊष्मा की परिभाषा दो।
2. ऊष्मा संचरण की विधियों के नाम बताओ।
3. ऊष्मा संचरण की चालन विधि की उदाहरण सहित व्याख्या करो।
4. संवहन विधि की उदाहरण सहित व्याख्या करो।
5. विकिरण विधि की उदाहरण सहित व्याख्या करो।
6. सुचालक और कुचालक पदार्थों में विभेद करो।
7. ऊष्मा की चालन विधि को प्रयोग द्वारा सिद्ध करो।
8. प्रयोग की सहायता से ऊष्मा के संवहन को स्पष्ट करो।
9. विकिरण विधि से सम्बन्धित प्रयोग की व्याख्या करो।

10. ऊष्मा संचरण की चालन एवं संवहन विधियों से सम्बन्धित चित्र बनाओ।

11. ऊष्मा संवहन की विभिन्न विधियों को चार्ट पर प्रदर्शित करो।

1.6 सारांश

अध्यापक शिक्षण को सफल बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाएं करता है। इनमें विषय–वस्तु का चयन, उद्देश्यों का निर्धारण, क्रियाओं व प्रयोगों का निर्धारण तथा मूल्यांकन आदि सम्मिलित है। शिक्षण की इन विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण शिक्षण–कला विश्लेषण अथवा अध्यापन कार्य का विश्लेषण कहा जाता है।

1.7 मुख्य शब्द

अध्यापन क्रिया विश्लेषण–शिक्षण कला से सम्बन्धित विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Singh, L.C. 'Peadgogical Analysis–NCERT, New Delhi

इकाई-III (a)

अध्याय-1: इकाई योजना एवं पाठ योजना बनाना

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- इकाई योजना का अर्थ बता सकें।
- एक अच्छी इकाई की विशेषताओं की सूची बना सकें।
- इकाई योजना के विभिन्न चरणों को पहचान सकें।
- पाठ योजना का संप्रत्यय बता सकें।
- एक अच्छी पाठ योजना की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन कर सकें।
- पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताएं बता सकें।
- पाठ योजना के मुख्य उपागमों के नाम बता सकें।
- हरबर्ट उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- इकाई उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- मूल्यांकन उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- आर०सी०ई०एम० उपागम की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- पाठ योजना तैयार कर सकें।

सरंचना:

1.1 प्रस्तावना
1.2 इकाई योजना
1.3 अच्छी इकाई की विशेषताएं
1.4 इकाई योजना के विभिन्न चरण
1.5 पाठ योजना–संप्रत्यय
1.6 पाठ योजना की विशेषताएं
1.7 पाठ योजना की आवश्यकताएं एवं महत्व
1.8 पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताएं
1.9 पाठ योजना के उपागम
1.10 हरबर्ट उपागम
1.11 इकाई उपागम
1.12 मूल्यांकन उपागम
1.13 आर०सी०ई०एम० उपागम

1.14 कुछ आदर्श पाठ योजनाएं
1.15 सारांश
मॉडल उत्तर
1.16 मुख्य शब्द
1.17 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

इकाई योजना में यह निर्धारित किया जाता है कि पाठ्यक्रम की इकाईयों का शिक्षण किस क्रम एवं किस प्रकार किया जाए। इकाई में दिए गए उपविषयों को पढ़ाने के लिए कितने पाठों, सहायक सामग्री आदि की आवश्यकता होगी और अध्यापक किस शिक्षण विधि, मूल्यांकन, तकनीकों आदि का प्रयोग करेगा। इकाई योजना बनाने के पश्चात् पाठ योजना बनाई जाती है। पाठ योजना क्या है? पाठ योजना का क्या महत्व है। पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताएं क्या हैं? पाठ योजना किस प्रकार बनाएं आदि प्रश्नोंका उत्तर आप प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

1.2 इकाई योजना-अर्थ

इकाई नियोजन अथवा इकाई योजना बनाने से अभिप्राय विषय–वस्तु को छोटे भागों अर्थात् इकाईयों में बांटने से है। इकाई योजना बनाने का मूल उद्देश्य विषय–वस्तु का उचित रूप से गठन करना है क्योंकि विषय–वस्तु के उचित गठन से सीखने की क्रिया मनोवैज्ञानिक दष्टि से स्वाभाविक बन जाती है। किसी कक्षा विशेष के लिए प्रस्तावित पाठ्यक्रम में बहुत से प्रकरण (Topics) होते हैं। ऐसे प्रकरण जो एक दूसरे से सम्बन्धित हों, एक जैसे उद्देश्यों की पूर्ति करते हों और जिनको सरलतापूर्वक समावाय किया जा सके, एक इकाई में रखे जा सकते हैं। विद्यार्थियों के व्यापक अनुभव क्षेत्रों के आधार पर भी पाठ्यक्रम को कई इकाईयों में बांटा जा सकता है। शिक्षक कुल प्राप्त समय के साथ इन इकाइयों की तुलना करके यह ज्ञात कर सकता है कि एक इकाईको कितने दिनों या सप्ताहों में समाप्त करना है। फिर वह इकाई को पाठों की संख्या में बांट सकता है। जहां तक संभव हो, प्रत्येक पाठ अपने आप में पूर्ण होना चाहिए।

बासिंग के अनुसार, ''एक इकाई में व्यापक रूप से सम्बन्धित एवं अर्थपूर्ण क्रियाओं को स्थान दिया जाता है जिससे महत्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान किये जा सके, उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आ जाए।

1.3 अच्छी इकाई की विशेषताएं (Characteristics of a Good Unit)

(i) इसके लक्ष्य एवं उद्देश्य स्पष्ट एवं सुनिश्चित होने चाहिएं।

(ii) इसका दूसरे विषयों एवं दैनिक जीवन के अनुभवों से समावाय किया जा सके।

(iii) यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हो।

(iv) इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं को उचित स्थान दिया जाए।

(v) इसमें विद्यार्थियों के अनुभवों को महत्व दिया जाए।

(vi) यह विद्यार्थियों में अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तन ला सकें।

(vii) एक अच्छी इकाई की लम्बाई बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए।

(viii) यह विभिन्न प्रयोग–प्रदर्शनों, प्रयोजन आदि के आयोजन को बढ़ावा दे।

1.4 इकाई योजना के चरण (Steps of a Unit Plan)

किसी इकाई योजना के निम्नलिखित चरण हो सकते हैं।

(i) विषय–जीव विज्ञान

(ii) उपविषय–(इकाई का शीर्षक)

(iii) कक्षा–(जिसे पढ़ाना है)

(iv) समय–(कालांश संख्या)

(v) सहायक सामग्री .....

(vi) विषय वस्तु .....

(vii) उपइकाई–(नाम एवं नं०).....

(viii) उद्देश्य.....

(प्रत्येक उप–इकाई के लिए)

(ix) अध्यापक क्रियाएं .....

(x) विद्यार्थी क्रियाएं .....

(xi) अध्यापक–विद्यार्थी क्रियाएं .....

(xii) गह कार्य .....

(xiii) अनुसरणात्मक कार्य .....

(xiv) मूल्यांकन .....

(xv) संदर्भ

इकाई योजना बनाने के लिए आगे दो प्रारूप दिये गये हैं। प्रारूप I इकाई के विभिन्न घटकों की जानकारी प्रदान करता है जबकि प्रारूप II प्रत्येक उप–इकाई/प्रकरण से सम्बन्धित पाठ, व्यवहारपरक उद्देश्यों, शिक्षण विधि, गह कार्य, मूल्यांकन आदि की जानकारी प्रदान करता है। पहले प्रारूप I भरा जाना चाहिए और उसके बाद प्रत्येक प्रकरण के विस्तारपूर्वक नियोजन के लिए प्रारूप II भरा जाना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए–1

(i) इकाई योजना से क्या अभिप्राय है?

(ii) इकाई योजना के विभिन्न चरण कौन से हैं?

इकाई योजना बनाना

प्रारूप I

विषय ..... कक्षा .....

इकाई .....

इकाई के मुख्य उद्देश्य .....

क्रम सं० S.No.	उपविषय Topics	सहायक पाठों की संख्या No. of Lessons Required	समय अवधि Time Period	विषय वस्तु का क्षेत्र Scope of Content	शिक्षण विधि Method of Teaching	सहायक सामग्री Teaching Aids
1.						
2.						
3.						
4.						
5.						
6.						
7.						
8.						
9.						
10.						
11.						
12.						

प्रारूप II

उपविषय (प्रारूप 1 से)

पाठ संख्या .....

क्रम सं०	उप–प्रकरण	व्यवहारपरक उद्देश्य	अध्यापक–छात्र क्रिया	विद्यार्थियों को दत्त कार्य	मूल्यांकन
1.					
2.					
3.					
4.					
5.					
6.					
7.					
8.					
9.					
10.					

1.5 पाठ-योजना (Lesson Planning)

पाठ–योजना से अभिप्राय कक्षा शिक्षण के लिए वैज्ञानिक रूप में की गई क्रमबद्ध तैयारी से है। पाठ–योजना शिक्षण प्रक्रिया का व्यावहारिक रूप होती है। बिना पाठ–योजना के योग्यतम शिक्षक भी कक्षा में असफल हो सकता है। पाठ–योजना के स्वरूप के विषय में विभिन्न शिक्षा–शास्त्रियों में मतभेद हो सकता है किन्तु इसकी आवश्यकता पर दो मत नहीं हो सकते। पाठ–योजना एक प्रकार से उन कथनों का शीर्षक होती है जो यह विवरण देते हैं कि शिक्षक को किस अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करनी है तथा किन–किन साधनों द्वारा इन्हें कक्षा की क्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त किया जा सकता हैं। पाठ–योजना का जन्म शिक्षण की पूर्व–अवस्था (Pre-active stage) में होता है। पाठ–योजना के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न शिक्षा–शास्त्रियों द्वारा दी गई कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. **अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा शब्दकोष के अनुसार,** ''पाठ–योजना किसी पाठ के उन आवश्यक बिन्दुओं की रूपरेखा है जिन्हें उस क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिस क्रम में उन्हें अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना होता है।''

   "A lesson-plan is the outline of those important points of a lesson arranged in a order in which they are to be presented to students by the teacher."

   International Dictionary of Education, **Ed. G. Terry Page & J.B. Thomas**

2. **कार्टर वी. गुड के अनुसार,** '' पाठ–योजना पाठ के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की शिक्षण रूप रेखा है। इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं का गठन उस क्रम में किया जाता है जिस क्रम में उन्हें प्रस्तुत किया जाना है। इसमें उद्देश्यों, अपेक्षित बिन्दुओं, पूछे जाने वाले प्रश्नों, सन्दर्भ सामग्री एवं दत्त कार्यों आदि का समावेश होता है।''

   "A lesson-plan is a teaching outline of the important points of lesson arranged in order in which they are to be presented. It may include objectives, points to be made, questions to be asked, reference materials and assignments." **Cater V. Good**

3. **बिनिंग एवं बिनिंग के अनुसार,** ''दैनिक पाठ–योजना में उद्देश्यों को परिभाषित करना पाठ्यवस्तु का चयन करना, उसे क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करना, विधियों तथा प्रक्रिया का निर्धारण सम्मिलित हैं।''

   "Daily lesson planning involves defining the objectives, selecting and arranging the subject-matter and determining the methods and procedures." **Binning and Binning**

पाठ–योजना महत्वपूर्ण शिक्षण बिन्दुओं की सूची है; यह कक्षा–कक्ष में की जाने वाली क्रियाओं की क्रमबद्ध रूपरेखा है; यह कक्षा में उपयोग की जाने वाली विधियों एवं प्रविधियों से सम्बन्धित सुझाव है। पाठ–योजना अध्यापक को कक्षा में आने वाली परिस्थितियों एवं चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करती है। इससे अध्यापक में आत्मविश्वास विकसित होता है। परन्तु पाठ–योजना का कठोरतापूर्वक पालन करना बिल्कुल आवश्यक नहीं है। यदि आवश्यकता हो तो अध्यापक पाठ–योजना अथवा इसके किसी अंश में परिवर्तन कर सकता है। (A lesson-plan is not a blue print that one has to adhere to at all costs. It is rather, a guide, an index of sequence of classroom activities, a list of important teaching points; suggestion for procedures that may be followed during the period. The teacher may and should modify the plan or change any part of it whenever necessary.)

1.6 पाठ-योजना की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Lesson-plan)

पाठ–योजना शिक्षक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह शिक्षक को दिशा निर्देश प्रदान करती हैं, अपेक्षित उद्देश्यों एवं उपलब्धियों का ज्ञान करवाती हैं और विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति में सहायता करती है। पाठ–योजना की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. पाठ–योजना शिक्षक को संगठित एवं सुव्यवस्थित रूप से चिन्तन करने के लिए अभिप्रेरित करती है।
2. पाठ–योजना शिक्षक को आत्मविश्वास अर्जित करने में सहायता करती हैं। प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षक में आत्मविश्वास होना आवश्यक है।
3. पाठ–योजना द्वारा शिक्षक कक्षा में पढ़ाई जाने वाली विषय–वस्तु के उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इन उद्देश्यों के आधार पर वह विद्यार्थियों के व्यवहार में आने वाले अपेक्षित परिवर्तनों की जानकारी भी प्राप्त करता है।
4. पाठ–योजना शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक सामग्री तथा साधन एकत्रित करने में सहायता करती है।
5. यह शिक्षक को कक्षा में की जाने वाली क्रियाओं का निर्धारण एवं आयोजन करने में सहायता करती है। कौन–कौन सी शिक्षण क्रियाएं करनी हैं, किस प्रकार करनी हैं, सहायक सामग्री का उपयोग कब तथा कैसे करना है आदि का निर्णय पाठ–योजना में कर लिया जाता है।
6. इससे शिक्षक एक कक्षा या सत्र में पढ़ाई जाने वाली सामग्री को पाठन समय के अनुरूप व्यवस्थित कर लेता है।
7. पाठ–योजना शिक्षक में क्रमबद्ध रूप में कार्य करने की क्षमता का विकास करती है जिससे वह पाठ्य सामग्री का तथा जीवन–सम्बन्धी कार्यों का सफलतापूर्वक नियोजन कर सकें।
8. पाठ–योजना के माध्यम से शिक्षक विषय–वस्तु से सम्बन्धित समस्याओं के विभिन्न पक्षों एवं उनके समाधान के सम्बन्ध में कक्षा में जाने से पूर्व विचार कर सकता है।
9. इससे नवीन ज्ञान का विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से उचित प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।
10. पाठ–योजना से विद्यार्थियों की विभिन्न मानसिक शक्तियों – तर्क शक्ति, विचार शक्ति, कल्पना शक्ति, निर्णय शक्ति आदि का निश्चित दिशा में विकास किया जा सकता है।
11. पाठ–योजना के उपयोग द्वारा पढ़ाये जाने वाले सभी उपविषयों (Topics) में निरन्तरता बनी रहती है।
12. कक्षा में सभी विद्यार्थी एक समान नहीं होते। पाठ–योजना द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य किया जाता है।
13. पाठ–योजना द्वारा शिक्षक को उचित एवं महत्वपूर्ण प्रश्न करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
14. पाठ–योजना विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं शिक्षण में उनकी रूचि बनाए रखने में शिक्षक की सहायता करती है।
15. पाठ–योजना शिक्षक का दष्टिकोण स्पष्ट करती है।
16. यह निर्देशात्मक सामग्री के प्रयोग पर बल देती है।
17. यह शिक्षक को अमूर्त प्रत्ययों के शिक्षण में सहायता देती है।
18. यह शिक्षण कार्य का मूल्यांकन करने में सहायता करती है।
19. पाठ–योजना शिक्षण को विधिवत् एवं नियमित बनाती है जिससे शिक्षण–प्रक्रिया में होने वाले अपव्यय को रोका जा सकता है।
20. पाठ–योजना पर्याप्त रूप से पाठ का सार प्रस्तुत करती है और इसमें कक्षा में दिये जाने वाले कार्यों एवं गह कार्य की निश्चित व्यवस्था होती है।
21. पाठ–योजना अगले पाठों में सुधार करने के लिए प्रेरित करती है।

1.7 अच्छी पाठ-योजना की विशेषताएं
(Characteristics of a Good Lesson-plan)

एक अच्छी पाठ–योजना में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. एक अच्छी पाठ–योजना उचित रूप से नियोजित होती है जिसमें उपविषय या प्रकरण के अनुरूप सहायक सामग्री, शिक्षण–विधियों, प्रविधियों एवं युक्तियों का चयन किया जाता है।
2. एक अच्छी पाठ–योजना में लचीलापन होना आवश्यक है जिससे पाठ को नयी परिस्थितियों में उचित प्रकार क्रियान्वित किया जा सके।
3. एक अच्छी पाठ–योजना कक्षा–कक्ष में होने वाली गतिविधियों की सूचक होती है। उदाहरण के लिए शिक्षक कब श्यामपट्ट का उपयोग करेगा? कौन से प्रश्न पूछेगा? आदि बातों का पहले ही संकेत दे देती है।
4. अच्छी पाठ–योजना सहायक सामग्री की आवश्यकता का संकेत देती है।
5. अच्छी पाठ–योजना शिक्षा मनोविज्ञान एवं अधिगम सिद्धान्तों पर आधारित होती है।
6. अच्छी पाठ–योजना में उद्देश्यों को विवेकपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है।
7. अच्छी पाठ–योजना विषय वस्तु एवं शिक्षण–विधि का वर्णन करती है।
8. अच्छी पाठ–योजना विद्यार्थियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों की सूची प्रदान करती है।
9. अच्छी पाठ–योजना अधिगम के मूल्यांकन में सहायता करती है।

1.8 पाठ-योजना बनाने से पूर्व आवश्यकताएं
(Pre-requisites for Preparing a Lesson-plan)

1. शिक्षक जिस प्रकरण की पाठ–योजना बना रहा है उससे सम्बन्धित पाठ्य विषय तथा व्यावहारिक विषयों पर उसका पूर्ण आधिपत्य होना चाहिए।
2. शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्यों, दार्शनिक एवं सामाजिक आधारों का ज्ञान होना चाहिए। उसे शिक्षण विधि के चयन में दर्शन एवं मनोविज्ञान दोनों की सहायता लेनी चाहिए।
3. शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। उसे विद्यार्थियों के स्तर, आयु, रूचियों विभिन्नताओं आदि के अनुरूप विषय–वस्तु का नियोजन करना चाहिए।
4. शिक्षक को उपलब्ध संसाधनों तथा सहायक सामग्री का निश्चयपूर्वक बोध होना चाहिए। उसे साधनों तथा सामग्री के आधार पर पाठ–योजना बनानी चाहिए।
5. पाठ–योजना उपलब्ध पाठन समय अर्थात् कालांश के अनुसार बनानी चाहिए। यह न तो अधिक विस्तत होनी चाहिए और न ही संकुचित।
6. पाठ–योजना से पूर्व विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को ज्ञात करना आवश्यक है।
7. शिक्षक को विभिन्न शिक्षण विधियों, प्रविधियों, तकनीकों एवं व्यूह–रचनाओं का ज्ञान होना चाहिए।

1.9 पाठ-योजना के उपगाम
(Approaches to Lesson-plan)

पाठ–योजना बनाने के लिए विभिन्न शिक्षा–शास्त्रियों ने अपने–अपने शैक्षिक अनुसंधानों से सम्बन्धित शैक्षिक सिद्धान्तों के

आधार पर विभिन्न उपागमों का विकास किया है। इनमें से कुछ मुख्य उपागम निम्नलिखित हैं–

1. हरबर्ट उपागम (Herbartian Approach)
2. मौरीसन या इकाई उपागम (Morrison's Unit Approach)
3. ब्लूम या मूल्यांकन उपागम (Bloom's Evaluation Approach)
4. आर. सी. ई. एम. उपागम (R. C. E. M. Approach)

अपनी प्रगति जांचिए–2

(i) अच्छी पाठ योजना की क्या विशेषताएं होनी चाहिए?

(ii) पाठ योजना से क्या अभिप्राय है?

(iii) पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताओं की सूची बनाओ।

1.10 हरबर्ट उपागम (Herbartian Approach)

यह पाठ–योजना का प्राचीनतम उपागम है। इस उपागम का विकास जर्मनी के प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री जे. एफ. हरबर्ट (J. F. Herbart) एवं उसके सहयोगियों ने किया। इसीलिए यह उपागम हरबर्ट उपागम के नाम से जाना जाता है। हरबर्ट उपागम पाठ्य–वस्तु केन्द्रित (Subject-matter centered) है। इसमें विद्यार्थियों की रूचि, अभिरूचि, योग्यता आदि की ओर ध्यान न देकर विषय–वस्तु के प्रस्तुतीकरण को अधिक महत्व दिया जाता है। इसके अनुसार यदि नया ज्ञान पुराने ज्ञान से सम्बन्धित करके पढाया जाए तो ज्ञान अधिक स्थायी होता है। इसलिए इसमें पूर्व ज्ञान परीक्षण पर बल दिया जाता है। हरबर्ट ने शिक्षण की पाठ–योजना को पांच पदों में बांटा है। इन पांच पदों के आधार पर ही पाठ–योजना तैयार की जाती है। अतः इसे पंचपदीय उपागम (Five Step Approach) भी कहा जाता है। अधिकांश शिक्षा महाविद्यालयों में पाठ–योजना तैयार करने के लिए हरबर्ट उपागम का प्रयोग किया जाता है।

1.10.1 हरबर्ट उपागम की विशेषताएं

यह उपागम परम्परागत मानव व्यवस्था सिद्धान्त (Classical Human Organization Theory) पर आधारित है। इस उपागम की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(i) यह उपागम पाठ्य–वस्तु केन्द्रित है।

(ii) इस उपागम में विषय–वस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है।

(iii) इस उपागम में विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों, मूल्यों, अभिवत्तियों, सम्बन्धों आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता।

(iv) इस उपागम में स्मति स्तर के शिक्षण को महत्व दिया जाता है इसलिए इसमें रटने की प्रवत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(v) इस उपागम में 'संचित ज्ञान सूत्र' (Aperceptive Masses) पर बल दिया जाता है। इसके अनुसार ज्ञान बाहर से दिया जाता है और वह एकत्रित होता रहता है। इस एकत्रित ज्ञान को हम पूर्व–ज्ञान कहते है। यदि नये ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाये तो सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली ढंग से होगी।

1.10.2 हरबर्ट उपागम के पद

हरबर्ट उपागम के निम्नलिखित पांच पद हैं–

(I) **प्रस्तावना (Introduction)** – यह हरबर्ट उपागम का प्रथम पद होता है। इसे तैयारी (Preparation) अथवा उद्देश्य कथन (Statement of aims) भी कहा जाता है। प्रस्तावना से अभिप्राय है–भूमिका बनाना। जिस प्राकर बीज बोने से पहले भूमि को तैयार करना आवश्यक होता है उसी प्रकार विद्यार्थी को नया ज्ञान प्रदान करने से पहले उसके पूर्व ज्ञान की जानकारी प्राप्त करना और पाठ से सम्बन्धित भूमिका बनाना आवश्यक है। प्रस्तावना विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान

पर आधारित होती है। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ने में प्रस्तावना सेतु की भांति कार्य करती है। प्रस्तावना करने की विभिन्न विधियां हो सकती हैं। भौतिक विज्ञान शिक्षक पाठ को प्रस्तावित करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग कर सकता है जैसे–चार्ट दिखाकर, कक्षा–कक्ष में उपस्थित वस्तु दिखाकर, प्रश्न पूछकर, कोई सत्य घटना सुनाकर अथवा दष्टान्त देकर एवं प्रयोग करके। प्रस्तावना विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी नवीन ज्ञान प्राप्त कने के लिए अभिप्रेरित हो सकें। प्रस्तावना बहुत अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिए और इसमें 5-6 प्रश्नों से अधिक नहीं पूछे जाने चाहिए। जहां तक संभव हो, ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर हां अथवा नहीं हो, न पूछे जाए। प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक को पाठ के उद्देश्य की स्पष्ट, संक्षिप्त एवं सरल शब्दावली में घोषणा करना चाहिए जैसे–'आज हम प्रकाश के अपवर्तन' के विषय में पढ़ेंगें। उद्देश्य कथन के पश्चात् पाठ आरम्भ किया जाता है। इस प्रकार प्रस्तावना में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है–

(i) छात्र–अध्यापक एवं कक्षा के परिचय सम्बन्धी विवरण जैसे–रोल न०, कक्षा, विषय, उपविषय, कालांश, दिनांक, विद्यार्थियों की औसत आयु आदि।

(ii) सहायक–सामग्री का विवरण।

(iii) सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्य।

(iv) पूर्व ज्ञान परीक्षा।

(v) उद्देश्य कथन के लिए पूर्व ज्ञान का प्रयोग।

(vi) विद्यार्थियों की पाठ में रूचि जाग्रत करना

जे. वैल्टन ने 'प्रस्तावना' का सार व्यक्त करते हुए हुए ठीक ही कहा है– विद्यार्थी कहां पर हैं और उन्हें कहां पहुंचाने के लिए प्रयत्न करना है, अच्छे शिक्षण की ये दो आवश्यक बाते हैं।''

(II) **प्रस्तुतीकरण (Presentation)** – यह हरबर्ट उपागम का दूसरा चरण है। विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं उद्देश्य की घोषणा के पश्चात् अध्यापक पाठ्य–सामग्री को विद्यार्थियों के समस्त प्रस्तुत करता है। एक प्रकार से प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया ही शिक्षण कार्य का प्रारम्भ है। इस पद में अध्यापक अपनी सुविधा के अनुसार पाठ को कई भागों या इकाइयों में बांटता है जो एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल पाठ्य–सामग्री को उचित क्रम में प्रस्तुत करता है। प्रत्येक इकाई को रूचिकर बनाने के लिए अध्यापक विभिन्न शिक्षण साधनों का उपयोग करता है जैसे–व्याख्या, विवरण, वर्णन, विकासात्मक प्रश्न, प्रदर्शन, प्रयोग, दष्टान्त, दश्य–श्रव्य साधन आदि। इन साधनों का चयन विद्यार्थियों की योग्यताओं, आवश्यकताओं एवं संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है। विषय–सामग्री को मनोवैज्ञानिक क्रम में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस पद में अध्यापक विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों का पालन करता है। जैसे– सरल से कठिन, ज्ञात से अज्ञात, मूर्त से अमूर्त आदि।

प्रस्तुतीकरण में अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

(i) विषय–सामग्री कितनी प्रस्तुत की जाये।

(ii) विषय–सामग्री को कितने भागों/इकाइयों में बांटा जाये।

(iii) विभिन्न भागों में किस प्रकार तथा कब समन्वय किया जाये।

(iv) विद्यार्थियों द्वारा कितनी क्रियाएं करवाई जायें।

(v) पाठ्य–सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए किन शिक्षण–विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाये।

(vi) किन–किन शिक्षण सिद्धान्तों एवं सूत्रों का प्रयोग किया जाये।

III. **सम्बन्धीकरण अथवा तुलना (Association or Comparison)** – यह हरबर्ट उपागम का तीसरा पद है। इसे स्पष्टीकरण भी कहा जाता है। इस पद का प्रयोग उच्च कक्षाओं में ही किया जाता है क्योंकि उच्च कक्षाओं में विद्यार्थियों का मानसिक विकास एवं ज्ञान पर्याप्त होता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों के सामने तथ्यों का मौखिक रूप से स्पष्टीकरण करता है। नये विचारों का पूर्व ज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अध्यापक विद्यार्थियों के सामने कुछ तथ्य एवं उदाहरण प्रस्तुत करता है और उन्हें उन पर विचार करके अन्तिम तथ्यों से उनकी तुलना करने एवं निष्कर्ष निकालने के लिए कहा जाता है। तुलना का यह चरण किसी नये सिद्धान्त को पढ़ाते समय विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। कभी कभी इस पद को प्रस्तुतीकरण का ही एक भाग माना जाता है।

IV. **सामान्यीकरण** (Generalisation) – सम्बन्धीकरण अथवा स्पष्टीकरण के आधार पर विद्यार्थियों को कुछ न कुछ निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलती है और उनमें सामान्य सिद्धान्तों, नियमों या सूत्रों की रचना करने की योग्यता विकसित होती है। इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहते हैं। सामान्यीकरण, जहाँ तक संभव हो, विद्यार्थियों से ही करवाया जाना चाहिए क्योंकि इससे विद्यार्थियों को गहराई से सोचने का अवसर मिलता है और उनकी कल्पना शक्ति का विकास होता है। अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों को सुनियोजित ढंग से सम्बन्धित सामग्री से सामान्य सिद्धान्तों की रचना की योग्यता प्रदान करना है। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह विद्यार्थियों को स्वयं निष्कर्ष निकालने के लिए प्रोत्साहित करे। यदि विद्यार्थियों के सामान्य निष्कर्ष अधूरे या गलत हों तो अध्यापक को उन्हें पूरा एवं ठीक करना चाहिए। महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि विद्यार्थी सिद्धान्तों, नियमों एवं सूत्रों को अच्छी तरह समझ लें।

V. **प्रयोग** (Application) – यह हरबर्ट उपागम का पांचवा पद है। यह पद इस बात पर आधारित है कि जिस ज्ञान का प्रयोग नहीं होता, वह शीघ्र ही चेतनता से ओझल हो जाता है। ज्ञान शक्ति के रूप मे ंतभीकार्य कर सकता है जब इसे क्रियात्मक स्थिति में प्रयोग किया जाए। इस पद में विद्यार्थियों को सीखे हुए ज्ञान को नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करने एवं इसे स्थायी करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में इसमें सामान्यीकृत सिद्धान्तों, नियमों आदि को विशिष्ट समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त किया जाता है। प्रयोग में विद्यार्थियों द्वारा सीखे गये सिद्धान्तों, नियमों आदि की पुनरावत्ति हो जाती है और इसका आकार विविधता की ओर भी अग्रसर हो सकता है जैसे – मॉडल बनाना। प्रयोग द्वारा नवीन अर्जित तथ्य विद्यार्थियों की मानसिक रचना का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

1.10.3 हरबर्ट उपागम में पाठ योजना की रूप रेखा
(Outline of Lesson Plan in Herbartian Approach)

हरबर्ट उपागम के उपरलिखित पांच पदों के आधार पर पाठ योजना की निम्नलिखित रूपरेखा हो सकती है। इस रूपरेखा के आधार पर किसी भी उपविषय की पाठ–योजना तैयार की जा सकती है।

i. **कक्षा, विषय तथा उपविषय (Class, subject and topic)** – पाठ योजना की रूप रेखा के प्रथम बिन्दु के अंतर्गत कक्षा, विषय, उपविषय, शिक्षण स्तर, दिनांक आदि का निर्धारण किया जाता है।

ii **सामान्य उद्देश्य (General Objectives)** – विषय तथा उपविषय को ध्यान में रख कर सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। भौतिक विज्ञान शिक्षण के सामान्य उद्देश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना, वैज्ञानिक विधि में प्रवीणता प्रदान करना एवं मानसिक शक्तियों का विकास आदि हो सकते हैं।

iii. **विशिष्ट उद्देश्य (Specific Objectives)** – सामान्य उद्देश्यों के पश्चात् पाठ योजना के विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों का संबंध पढ़ाए जाने वाले उपविषय से होता है। इन उद्देश्यों का निर्धारण पाठ्य–वस्तु को ध्यान में रखकर किया जाता है। इन उद्देश्यों में जितनी अधिक स्पष्टता होगी, उतना ही शिक्षण अधिक प्रभावशाली होगा।

iv. **सहायक सामग्री (Teaching Aids)** – सहायक सामग्री से अभिप्राय उन सभी वस्तुओं या सामग्री से है जो शिक्षण अधिगम को सरल, स्पष्ट, रोचक एवं प्रभावशाली बनाने में सहायक हैं जैसे – चार्ट, मॉडल,

टी.वी., प्रोजेक्टर, नमूने, स्लाइड्स, कम्प्यूटर आदि सहायक सामग्री पाठ्यवस्तु से संबंधित एवं कक्षा के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।

v. **पूर्व ज्ञान (Previous knowledge)** – अध्यापक को शिक्षण कार्य आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। हरबर्ट के अनुसार नवीन ज्ञान पूर्वज्ञान पर आधारित होता है। पूर्वज्ञान और नवीन ज्ञान में सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। इससे पाठ सरल और रूचिकर होगा तथा ज्ञान क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित होगा।

vi. **प्रस्तावना (Introduction)** – प्रस्तावना के अंतर्गत अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करता है और उन्हें नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित करता है। प्रस्तावना में अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। प्रश्न पूछते समय अध्यापक का दष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिए। प्रस्तावना एक प्रकार से नये पाठ की भूमिका बांधने का कार्य करती है।

vii. **उद्देश्यकथन (Statement of Aim)** – प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक अपने शिक्षण कार्य के उद्देश्य की घोषणा करता है। वह सरल तथा स्पष्ट शब्दों में विद्यार्थियों के सामने उपविषय की घोषणा करता है।

viii. **प्रस्तुतीकरण (Presentation)** – उद्देश्य कथन के पश्चात् अध्यापक पाठ्यवस्तु को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करता है। पाठ–योजना में पाठ्यवस्तु को सुविधानुसार छोटे–छोटे भागों में बांट लिया जाता है जिससे ज्ञान को क्रमबद्ध रूप में विद्यार्थियों को प्रदान किया जा सके। प्रस्तुतीकरण में ही अध्यापक उपयुक्त शिक्षण–विधियों एवं सहायक सामग्री का उपयोग करता है। पाठ को विकसित करने के लिए अध्यापक विद्यार्थियों का सक्रिय योगदान लेता है और उनसे विकासात्मक प्रश्न (Development questions) पूछता है। विद्यार्थियों द्वारा दिए गये उत्तरों के अनुसार अध्यापक कथनों का स्पष्टीकरण देता है अथवा कथनों एवं क्रियाओं की पुनरावत्ति करता है। प्रस्तुतीकरण में अध्यापक को विद्यार्थियों की मानसिक क्रियाओं को प्रेरित करना चाहिए। इसी चरण में तुलना, सम्बन्धीकरण अथवा स्पष्टीकरण भी किया जाता है।

ix. **श्यामपट्ट सारांश (Blackboard Summary)** – शिक्षण प्रक्रिया में श्यामपट्ट शिक्षक के मित्र के रूप में कार्य करता है। शिक्षक, शिक्षण बिन्दु (Teaching Points) एवं उनकी व्याख्या साथ–साथ श्यामपट्ट पर लिखता है जिससे पाठ के अन्त में श्यामपट्ट सार तैयार हो जाता है। कई बार पाठ की समाप्ति के पश्चात् भी श्यामपट्ट सार लिखा जाता है। श्यामपट्ट सार की भाषा कक्षा के स्तर के अनुसार संक्षिप्त तथा स्पष्ट होनी चाहिए।

x. **पुनरावत्ति (Recapitulation)** – पढ़ाए गये पाठ को दोहराना पुनरावत्ति कहलाता है। पुनरावत्ति से यह ज्ञात किया जाता है कि विद्यार्थी पढ़ाए गए पाठ को कितना ग्रहण कर पाये हैं। पुनरावत्ति से पूर्व अध्यापक को श्यामपट्ट सारांश मिटा देना चाहिए और विद्यार्थियों की पुस्तकें, कापियां आदि बन्द करवा देनी चाहिए। पुनरावत्ति में अध्यापक पढ़ाए गए पाठ से सम्बन्धित प्रश्न विद्यार्थियों से पूछता है और पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर शिक्षण की सफलता अथवा असफलता का अनुमान लगाता है।

xi. **गह कार्य (Home-Work)** – गह कार्य का पाठ–योजना में महत्वपूर्ण स्थान है। गहकार्य से विद्यार्थियों में अभ्यास तथा पुनरावत्ति की प्रवत्ति का विकास होता है। इससे विद्यार्थियों के ज्ञान में स्थायित्व आता है, उनमें स्वक्रिया (Self activity) की आदत का विकास होता है। गह कार्य रूचिकर एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। गहकार्य का मूल्यांकन नियमित रूप से किया जाना चाहिए जिससे वह सार्थक सिद्ध हो सके।

1.10.4 हरबर्ट उपागम के गुण
(Merits of Herbartian Approach)

I. **मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित (Based on Psychological Principles)** – हरबर्ट उपागम मनोविज्ञान एवं

अधिगम के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें पाठ योजना के प्रत्येक सोपान की तर्कसंगत ढंग से व्यवस्था की जाती है।

II. **सभी विषयों में उपयोगी (Useful in all subject)** यह उपागम सभी विषयों एवं उपविषयों के शिक्षण के लिए उपयोगी है। इसका प्रयोग किसी भी प्रकरण के लिए सुगमता से किया जा सकता है।

III. **सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित स्वरूप (Well organized and controlled pattern)** यह उपागम सुनियोजित सुव्यवस्थित एवं सुनियन्त्रित है। इसमें प्रत्येक पद का स्वरूप निश्चित है।

IV. **पूर्व ज्ञान का प्रयोग (Use of Previous knowledge)** यह उपागम विद्यार्थियों के पूर्व अर्जित ज्ञान पर आधारित है अर्थात् इस उपागम द्वारा पाठ शुरू करने से पहले विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का परीक्षण किया जाता है तथा पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

V. **आगमन एवं निगमन विधि का उपयोग (Use of Inductive and Deductive Method)** इस उपागम में शिक्षण की आगमन एवं निगमन दोनों विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें नया ज्ञान प्रस्तुत करते समय विभिन्न उदाहरणों की सहायता ली जाती है और सामान्यीकरण में सिद्धान्तों, नियमों आदि की व्युत्पत्ति की जाती है। यह आगमन विधि है। प्रयोग में इन नियमों का क्रियान्वयन किया जाता है, यह निगमन विधि है।

VI. **समन्वय (Co-ordination)** हरबर्ट उपागम में समस्त ज्ञान को समन्वित रूप में पढ़ाया जाता है। विषय को स्पष्ट करने के लिए इसे अन्य विषयों से समन्वित किया जाता है।

VII. **ज्ञान की व्यावहारिकता (Practicability of Knowledge)** – विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान को नई परिस्थितियों में प्रयोग करना सिखाया जाता है।

VIII. **ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति (Achievement of Cognitive Objectives)** हरबर्ट उपागम शिक्षा के ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोगी है।

IX. **शिक्षक-प्रधान उपागम (Teacher dominated approach)** हरबर्ट उपागम में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। क्या पढ़ाना है? कैसे पढ़ना है? कब पढ़ाना है? आदि सभी बातें अध्यापक निर्धारित करता है। इस प्रकार यह शिक्षक प्रधान उपागम है।

1.10.5 हरबर्ट उपागम के दोष
(Demerits of Herbartian Approach)

I. **सभी पाठों के लिए उपयोगी नहीं (Not useful in all types of lessons)** हरबर्ट उपागम का प्रयोग केवल ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित पाठों के लिए ही किया जा सकता है, कौशल या क्रियात्मक पाठों के लिए नहीं।

II. **शिक्षण पर अधिक बल (More emphasis on teaching)** हरबर्ट उपागम में शिक्षण पर अधिगम की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है। इसमें विद्यार्थियों को आत्मप्रेरणा तथा विचार विमर्श का अवसर प्रदान नहीं किया जाता। इसमें अधिगम पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है जबकि शिक्षण अधिगम–केन्द्रित होना चाहिए।

III. **प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल (More emphasis on presentation)** इस उपागम में पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है और अन्य पक्षों की ओर कम, जिससे अन्य पक्ष दुर्बल रह जाते हैं।

IV. **कठोरता एवं एकरसता (Rigidity and Uniformity)** हरबर्ट उपागम के चरणों से पाठ में कठोरता एवं एकरसता उत्पन्न होती है। अध्यापक को इन चरणों के अनुसार पाठ पढ़ाने में यदि कठिनाई अनुभव हो तो भी उसे इन्हीं चरणों का अनुसरण करना पड़ता है, वह कक्षा में अचानक परिवर्तन नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप पाठ नीरस हो जाता है और विद्यार्थियों की उसमें रूचि समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त हरबर्ट उपागम के पदों का अनुसरण करने से अध्यापक एवं विद्यार्थी स्वतन्त्र चिन्तन से वंचित रह जाते हैं।

V. **तैयारी चरण में अस्पष्टता (Vagueness in Preparation Phase)** इसमें तैयारी का चरण अस्पष्ट है। इस उपागम में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि तैयारी अध्यापक को करनी है या विद्यार्थियों को अथवा दोनों को।

VI. **स्मति स्तर का शिक्षण (Memory Level Teaching)** हरबर्ट उपागम द्वारा केवल स्मति स्तर का शिक्षण संभव है, बोध स्तर का नहीं।

VII. **सम्बन्धीकरण एवं तुलना – अलग चरण नहीं (Association and Comparison - not separate steps)** हरबर्ट उपागम में सम्बन्धीकरण एवं तुलना को अलग स्थान देना उपयुक्त नहीं है। वास्तव में ये दोनों क्रियाएं प्रस्तुतीकरण में ही निहित हैं न कि उससे अलग हैं।

VIII. **सामान्यीकरण - एक कठिन प्रक्रिया (Generalisation - a difficult process)** हरबर्ट उपागम के अनुसार सम्बन्धीकरण एवं तुलना के आधार पर सामान्यीकरण करना चाहिए परन्तु व्यावहारिक परिस्थितियों में ऐसा करना सरल नहीं होता। अन्तिम रूप से किसी सामान्य सिद्धान्त और उनमें से अनावश्यक निष्कर्षों को अस्वीकार करना होता है।

1.10.6 हरबर्शियन उपागम पर आधारित एक आदर्श पाठ योजना (Model Lesson Plan based on Herbartian Approach).

रोल नं. –		दिनांक –	
विषय –	सामान्य विज्ञान	कक्षा –	आठवीं
उपविषय–	सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण	कालांश –	पहला

सामान्य उद्देश्य (General Objectives)

1. विद्यार्थियों की भौतिक वस्तुओं एवं पर्यावरण सम्बन्धी जिज्ञासाओं को सन्तुष्ट करना।
2. विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
3. विद्यार्थियों की विज्ञान में रूचि उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य (Specific Objectives)

1. विद्यार्थियों को सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण की तिथियों का प्रत्यास्मरण करवाना।
2. विद्यार्थियों को सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण का वर्णन करने योग्य बनाना।
3. विद्यार्थियों को सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के कारणों की व्याख्या करने योग्य बनाना।
4. विद्यार्थियों को सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के प्रभावों की व्याख्या करने योग्य बनाना।

सहायक सामग्री (Teaching Aids)

सूर्य, पथ्वी एवं चन्द्रमा के मॉडल, सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण का चार्ट, चॉक बोर्ड, चॉक, डस्टर, पांइटर आदि।

पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge)

विद्यार्थी सूर्य, पथ्वी, चन्द्रमा आदि से परिचित हैं, वे दिन–रात, सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में जानते हैं और पथ्वी की गतियों से भी परिचित हैं

प्रस्तावना (Introduction)

प्रश्न– पथ्वी सूर्य के चारों ओर एक चक्कर कितने दिनों में पूरा करती है?

उत्तर– 365 ¼ दिन में

प्रश्न— चन्द्रमा किसके चारों ओर घूमता है?

उत्तर— पथ्वी के

प्रश्न— पथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर कितने समय में पूरा करती है?

उत्तर— 24 घण्टे में

प्रश्न— कभी–कभी आकाश पूर्ण रूप से साफ होने पर भी हमें सूर्य पूर्ण या आंशिक रूप से दिखाई क्यों नहीं देता?

उत्तर— ग्रहण के कारण।

उद्देश्य कथन (Statement of Aim)

आज हम सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण के कारणों का अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुतीकरण (Presentation)

अध्यापक कथन—जब कभी सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा एक सीधी रेखा में इस प्रकार आ जाते हैं कि सूर्य या चन्द्रमा का प्रकाश कुछ समय के लिए पथ्वी पर न पहुंचे तो उसे ग्रहण कहते हैं।

प्रश्न— चन्द्रमा किससे प्रकाश लेता है?

उत्तर— चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेता है।

प्रश्न— चन्द्रमा किसके चारों ओर घूमता है?

उत्तर— चन्द्रमा पथ्वी के चारों ओर घूमता है।

अध्यापक चन्द्रमा, पथ्वी और सूर्य का मॉडल दिखाते हुए विद्यार्थियों को बतायेगा कि चन्द्रमा और पथ्वी किस प्रकार से गति करते हैं।

प्रश्न— सूर्य ग्रहण कैसे होता है?

अध्यापक कथन (Teacher Statement) – कभी कभी महीने की मध्य तिथि में पथ्वी और चन्द्रमा सीधी रेखा में आ जाते हैं और चन्द्रमा, सूर्य और पथ्वी के बीच में होता है। इससे कुछ समय के लिए चन्द्रमा की छाया पथ्वी पर पड़ती है।

अध्यापक मॉडल की सहायता से इसे समझायेगा।

प्रश्न— ऐसी स्थिति को क्या कहा जाता है?

उत्तर— इसे सूर्य ग्रहण कहते हैं।

प्रश्न— हर महीने की मध्य–तिथि को सूर्य ग्रहण क्यों नहीं होता?

अध्यापक कथन – सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा हर महीने सीधी रेखा में नहीं आते। पथ्वी अपनी धुरी पर $23\frac{1}{2}^0$ अंश उत्तर की ओर झुकी हुई है और 30 दिनों में चन्द्रमा पथ्वी का चक्कर पूरा नहीं करता।

प्रश्न— सूर्य ग्रहण पूर्णिमा को नहीं होता, क्यों?

उत्तर— क्योंकि पूर्णिमा को पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है।

अध्यापक कथन– कभी–कभी पूर्णिमा को पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा एक सीधी रेखा में आ जाते हैं जिससे पथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और सूर्य की किरणें कुछ समय के लिए पूर्ण या आंशिक रूप से चन्द्रमा पर नहीं पड़ती।

अध्यापक मॉडल की सहायता से चन्द्र ग्रहण की स्थिति का वर्णन करेगा।

प्रश्न ऐसी स्थिति को क्या कहा जाता है?

उत्तर इसे चन्द्र ग्रहण कहा जाता है।

प्रश्न चन्द्र ग्रहण क्यों होता है?

उत्तर क्योंकि पथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है।

पुनरावत्ति प्रश्न (Recapitulation Questions)

प्रश्न 1 सूर्य ग्रहण कैसे होता है?

प्रश्न 2 चन्द्र ग्रहण कैसे होता है?

प्रश्न 3 चन्द्र ग्रहण कब होता है?

प्रश्न 4 सूर्य ग्रहण कब होता है?

प्रश्न 5 सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण हर महीने क्यों नहीं होता?

गह कार्य (Home Work)

सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण की चित्र सहित व्याख्या लिख कर लाएं।

अपनी प्रगति जांचिए–3

(i) हरबर्ट उपागम के कितने चरण होते हैं? वर्णन कीजिए

1.11 मौरीसन उपागम (Morrison Approach)

इस उपागम का विकास शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हेनरी सी. मौरीसन (Prof. Henry C. Morrison) ने किया। इस उपागम का आधार गैस्टाल्ट मनोविज्ञान है। मौरीसन ने सन् 1929 में अपनी पुस्तक "सैकेण्डरी स्कूल में अध्यापन अभ्यास" (The Practice of Teaching in Secondary Schools) में इस उपागम की व्याख्या की है। मौरीसन ने इस उपागम में शिक्षण–अधिगम क्रियाओं को इकाई के रूप में आयोजित करने पर बल दिया है। उसके अनुसार, "इकाई संगठित विज्ञान तथा कला के पर्यावरण का बोधात्मक एवं महत्वपूर्ण तत्व है।" (A unit is a comprehensive and significant aspect of the environment of an organised science and art) इकाई को अधिक महत्व देने के कारण इस उपागम को इकाई उपागम (Unit Approach) भी कहा जाता है।

इकाई उपागम से अभिप्राय है – किसी विषयवस्तु को इकाईयों में बांटना और इन इकाईयों का शिक्षण करके विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना। इस प्रकार इस उपागम का मुख्य उद्देश्य है – शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों को विषय–वस्तु में दक्षता प्रदान करवाना। मौरीसन के अनुसार विषय–वस्तु को छोटी–छोटी परन्तु सार्थक इकाइयों में बांटना चाहिए। प्रत्येक इकाई विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिए। पढ़ाते समय अध्यापक एक विशिष्ट इकाई से सम्बन्धित पाठ्यवस्तु को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि विद्यार्थी उसे आसानी से समझ सकें। वह दूसरी इकाई की ओर तभी बढ़ता है जब उसे विश्वास हो जाता है कि विद्यार्थियों ने पिछली इकाई की विषय वस्तु को अच्छी तरह से समझ लिया है। इस उपागम में विद्यार्थियों के मन में अधिगम उद्देश्यों की स्पष्टता पर अधिक बल दिया गया है। मौरीसन के अनुसार विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। हरबर्ट और मौरीसन की पाठ–योजनाओं में मुख्य अंतर यह है कि हरबर्ट ने विषय–वस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया है और मौरीसन ने विषय–वस्तु के आत्मीकरण (Assimilation) पर।

1.11.1 इकाई उपागम की विशेषताएं

मौरीसन के इकाई उपागम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. इकाई पाठ्यक्रम का एक भाग होती है और पाठ्यक्रम छोटे–छोटे सह सम्बन्धित पूर्ण अवयवों (Small Correlated Wholes) का समूह होता है।

2. इकाई उपागम में कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम को पहले बड़ी इकाइयों में विभाजित किया जाता है और इन बड़ी इकाइयों को छोटी–छोटी सार्थक इकाइयों तथा उप–इकाइयों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक उपइकाई अपने आप में पूर्ण एवं सार्थक होती है।

3. इसमें अधिगम उद्देश्यों की स्पष्टता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह उन उद्देश्यों तथा विशिष्टताओं को उचित रूप से लिख ले जिन्हें वह विशिष्ट इकाई तथा उप इकाई के माध्यम से विद्यार्थियों में विकसित करना चाहता है।

4. इसके अनुसार अध्यापक को उन क्रियाओं की पहचान कर लेनी चाहिए जिन्हें वह पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आयोजित करेगा।

5. अध्यापक को शिक्षण में प्रयोग की जाने वाली सहायक सामग्री की सूची बना लेनी चाहिए।

6. यह उपागम विषय–वस्तु के आत्मीकरण (Assimilation) पर अधिक बल देता है।

7. यह उपागम गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पर आधारित है। इसके अनुसार जब हम किसी आकृति या वस्तु को देखते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान उसके पूर्ण (Whole) स्वरूप की ओर आकर्षित होता है और इसके पश्चात् हम उसके विभिन्न अंगों (Parts) का विश्लेषण करते हैं।

1.11.2 मौरीसन या इकाई उपागम के पद

(Steps of Morrison's or Unit Approach)

हरबर्ट उपागम की भांति इकाई उपागम के भी पांच पद हैं। ये पद निम्नलिखित हैं–

I. **अन्वेषण (Exploration)** – यह इकाई उपागम का प्रथम पद है। अन्वेषण से अभिप्राय है – खोज करना या पता लगाना। यह पद हरबर्ट उपागम के प्रस्तावना पद से मेल खाता है। इस पद में अध्यापक विद्यार्थियों के ज्ञान की खोज करता है अर्थात् उनके पूर्व ज्ञान का पता लगाता है। पूर्व ज्ञान के बिना नये ज्ञान को संगठित करना कठिन होता है। इस पद में अध्यापक–

(i) विद्यार्थियों के प्रस्तुत विषय एवं उपविषय से सम्बन्धित पूर्व ज्ञान की खोज करता है।

(ii) विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों तथा सामान्य योग्यताओं का अन्वेषण करता है।

(iii) इकाई शिक्षण के लिए उपयुक्त विधियों, प्रविधियों एवं नीतियों का चयन करता है।

(iv) इकाई शिक्षण के लिए उपलब्ध वातावरण सम्बन्धी स्थितियों एवं संसाधनों का अन्वेषण करता है।

II. **प्रस्तुतिकरण (Presentation)** – यह इकाई उपागम का दूसरा सोपान है। इसमें पाठ्यवस्तु की विवेचना की जाती है और पूरी इकाई के स्वरूप को विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इसमें प्रस्तुत इकाई के उद्देश्य से भी विद्यार्थियों को परिचित करवाया जाता है। इस पद में अध्यापक अधिक सक्रिय हो जाता है। अध्यापक पाठ्यवस्तु को छोटी इकाईयों में क्रमानुसार प्रस्तुत करता है और कक्षा के साथ निरन्तर सम्बन्ध बनाए रखता है। अध्यापक पाठ्यवस्तु के विस्तार में न जाकर इकाई तक ही सीमित रहता है। प्रत्येक इकाई के प्रस्तुतिकरण के पश्चात् उसका मूल्यांकन किया जाता है। विद्यार्थियों के मूल्यांकन के आधार पर उनकी कमजोरियों को पहचान कर अध्यापक विषय–वस्तु की पुनरावत्ति करता है जिससे विद्यार्थी उसे अच्छी प्रकार समझ लें। प्रस्तुतिकरण में अध्यापक कक्षा की सभी क्रियाओं में मुख्य भूमिका निभाता है।

III. **आत्मीकरण (Assimilation)** – यह इकाई उपागम का तीसरा सोपान है। इसका सम्बन्ध ज्ञान के स्थायीकरण से होता है अर्थात् प्रस्तुतीकरण के दौरान जिस ज्ञान को अर्जित किया जाता है, आत्मीकरण में उसी ज्ञान को स्थायित्व

प्रदान किया जाता है। हरबर्ट उपागम में प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है उसी प्रकार इकाई उपागम में आत्मीकरण को प्रधानता दी जाती है। इसमें विद्यार्थी विषयवस्तु का गहन अध्ययन करते हैं और उसे समझने का प्रयत्न करते हैं। आत्मीकरण में अध्यापक निम्नलिखित क्रियाएं करता है जिससे विद्यार्थी प्रस्तुत विषय–वस्तु का आत्मीकरण कर सकें।

(i) सामान्यीकरण के अवसर देना ताकि विद्यार्थी अवधारणा में निपुणता प्राप्त कर लें।

(ii) विषय–वस्तु के गहन अध्ययन पर बल देना।

(iii) व्यक्तिगत क्रियाएं करने के अवसर देना।

(iv) विद्यार्थी प्रयोगशाला एवं पुस्तकालयों में स्वयं काम करते हैं।

(v) गह कार्य देना।

(vi) निरीक्षित अध्ययन (Supervised Study) का आयोजन करना जिसमें अध्यापक विद्यार्थी का आवश्यकतानुसार निर्देशन करता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थी में अन्तःक्रिया होती है और विद्यार्थियों के सन्देहों का निराकरण किया जाता है।

(vii) निपुणता–परीक्षण करना अर्थात् विद्यार्थियों ने विषय–वस्तु में प्रवीणता प्राप्त की है अथवा नहीं, इसका परीक्षण करना।

(viii) यदि विद्यार्थी निपुणता परीक्षण में योग्य नहीं सिद्ध होते तो उन्हें आत्मीकरण के और अधिक अवसर प्रदान करना।

IV. **संगठन (Organization)** यह इकाई उपागम का चौथा पद है। इसे व्यवस्थापन भी कहा जाता है। इस पद में विद्यार्थी को अर्जित किए ज्ञान को स्वतन्त्र रूप से पुनः प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी अपनी भाषा में विषय–वस्तु को लिखते हैं। इसके आधार पर यह पता लगाया जाता है कि विद्यार्थी ने विषय–वस्तु पर कितना अधिकार प्राप्त किया है और वह किस सीमा तक विषय वस्तु को पुनःसंगठित करके प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार यह पद मूल्यांकन के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इसका उपयोग विस्तत विषयों में अधिक सुगमता एवं प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।

V. **आवत्ति (Recitation)** – यह इकाई उपागम का पांचवां एवं अन्तिम पद है। आवति अथवा अभिव्यक्तिकरण में विद्यार्थी अपने सहपाठियों तथा अध्यापक के सामने इकाई की विषयवस्तु का मौखिक वर्णन करता है। इसमें विद्यार्थियों का पूर्ण बोध तथा स्थायी अन्तर्दष्टि अभिव्यक्त होती है इसलिए इसे निपुणता अभिव्यक्तिकरण (mastery recitation) भी कहा जाता है। इस पद के माध्यम से विद्यार्थियों में स्वयं अभिव्यक्ति करने के लिए आत्मविश्वास भी बढ़ जाता है। यह अभिव्यक्ति मौखिक ही नहीं, अपितु श्यामपट्ट कार्य के रूप में, लिखित रूप में, प्रयोगशाला मे ंक्रिया के रूप में अथवा कक्षा कक्ष में प्रदर्शन उपकरणों के प्रयोग के रूप में भी हो सकती है।

1.11.3 इकाई उपागम के सिद्धान्त
(Principles of Unit Approach)

इकाई उपागम निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है।

I. **इकाई का सिद्धान्त (Principle of Unit)** इकाई उपागम गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology) पर आधारित है। इस उपागम में अंश की अपेक्षा पूर्ण (whole) को अधिक महत्व दिया गया है। इसमें पूर्ण पाठ्य–सामग्री को अंशों या इकाइयों में बांट कर प्रत्येक इकाई का शिक्षण किया जाता है।

II. **गतिशीलता का सिद्धान्त (Principle of dynamism)** – इस सिद्धान्त के अनुसार सभी इकाईयां गतिशील होनी चाहिए। इनका प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए। इन इकाईयों का क्षेत्र भी विस्तत होना चाहिए।

III. **बाल-प्रधानता का सिद्धान्त (Principle of Child Supremacy)** इकाई उपागम में बालक या विद्यार्थी को विशेष महत्व दिया गया है विद्यार्थियों का हित प्रथम स्थान पर होता है अर्थात् इस उपागम में विद्यार्थियों की क्रियाओं के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं मूल प्रवत्तियों को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य किया जाता है।

IV. **संगठन का सिद्धान्त (Principle of Organisation)** – ज्ञान प्रदान करने के लिए पाठ्यवस्तु का उचित संगठन भी अति आवश्यक है। यदि पाठ्यवस्तु को उचित ढंग से संगठित नहीं किया जाता तो उसका कक्षा में प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली नहीं हो सकता।

V. **अभिव्यक्तिकरण का सिद्धान्त (Principle of Recitation)** – इकाई उपागम में विद्यार्थी की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विद्यार्थी को नवीन ज्ञान प्रदान करने के लिए उसकी अभिव्यक्ति का विकास करना आवश्यक है। इससे विद्यार्थियों में आत्मविश्वास बढ़ता है।

VI. **रूचि एवं उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of Interest and Purpose)** – इस उपागम में विद्यार्थियों की रूचि और इकाई के उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। प्रतयेक इकाई के उद्देश्य दूसरी इकाई से भिन्न होते हैं। इन उद्देश्यों के प्रति सजग रहना पड़ता है।

1.11.4 मौरीसन के इकाई उपागम के गुण (Merits of Morrison's Unit Approach)

इस उपागम के निम्नलिखित गुण हैं–

I. **मनोविज्ञान पर आधारित (Based on Psychology)** इकाई उपागम गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पर आधारित है। इसमें पाठ्यवस्तु को उचित इकाईयों एवं उप–इकाईयों में बांटा जाता है। प्रत्येक इकाई का स्वरूप सार्थक एवं अपने आप में पूर्ण होता है।

II. **विद्यार्थी केन्द्रित उपागम (Student-Centered Approach)** – इस उपागम में विद्यार्थी की योग्यताओं एवं आवश्यकताओं को मुख्य स्थान दिया जाता है इसलिए यह विद्यार्थी केन्द्रित उपागम है।

III. **रूचिपूर्ण (Interesting)** – इसमें विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों पर बल दिया जाता है। पाठ्यवस्तु को छोटी–छोटी इकाईयों में बांटने से इसे सरल एवं रूचिपूर्ण बनाने में सहायता मिलती है।

IV. **विशिष्टता (Specificity)** – अधिगम सामग्री के सीमांकन एवं इकाई के विशिष्ट उद्देश्यों के कारण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विशिष्ट एवं वस्तुपरक (Objective) बन जाती है।

V. **प्रभावशाली अधिगम (Effective Learning)** – इस उपागम में प्रत्येक इकाई के उद्देश्य स्पष्ट होते हैं जिन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्यों की स्पष्टता के कारण विद्यार्थियों का अधिगम प्रभावशाली होता है।

VI. **स्व-अध्ययन की आदत का विकास (Development of Habit of Self-Study)** यह उपागम विद्यार्थियों में स्वयं अध्ययन करने एवं स्वतन्त्र अधिगम की आदतों को प्रोत्साहित करता है।

VII. **सक्रिय सहभागिता (Active Participation)** –इकाई उपागम अध्यापक एवं विद्यार्थियों दोनों को विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के लिए अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार की स्वस्थ अन्तः क्रिया प्रभावशाली अधिगम में सहायक है।

VIII. **बोध (Understanding)** यह उपागम शिक्षण – अधिगम को बोध–स्तर पर क्रियान्वित करता है। इसमें विद्यार्थी विषय वस्तु को रटते नहीं अपितु अच्छी तरह समझ कर याद करते हैं।

IX. **निपुणता (Mastery)** इसमें प्रत्येक इकाई में सीमित पाठ्य–वस्तु होती है जिससे विद्यार्थी उसे सरलता से आत्मसात कर सकते हैं और उसमें निपुणता प्राप्त कर सकते हैं।

X. **सामाजिक मूल्यों का विकास (Development of Social Values)** – इकाई उपागम द्वारा विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्यों का विकास सम्भव है क्योंकि शिक्षण अधिगम क्रियाएं सामाजिक सन्दर्भ में की जाती हैं।

1.11.5 मौरीसन के इकाई उपागम के दोष

(Demerits of Morrison's Unit Approach)

I. **अधिक समय का व्यय (Time Consuming)** इकाई उपागम से शिक्षण कार्य करने में अत्याधिक समय व्यय होता है क्योंकि पहले पाठ्य सामग्री को इकाईयों में बांटना पड़ता है और फिर प्रत्येक इकाई के आधार पर पाठ योजना तैयार की जाती है।

II. **सीमित क्षेत्र (Limited Scope)** इस उपागम द्वारा सभी विषयों एवं उपविषयों को पढ़ाना संभव नहीं है इसलिए इस उपागम का क्षेत्र सीमित है।

III. **धीमा शिक्षण (Slow Teaching)** इस उपागम के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया धीमी गति से होती है जिसके परिणामस्वरूप पाठ समय पर समाप्त नहीं होता।

IV. **इकाई की सार्थकता (Purposefulness of Each Unit)** – प्रत्येक इकाई को सार्थक बनाना व्यावहारिक रूप से अत्यन्त असुविधाजनक होता है।

V. **पदों में स्पष्टता की कमी (Lack of clarity in steps)** इस उपागम के विभिन्न पदों में पूर्ण रूप से स्पष्टता नहीं होती जिससे इनका प्रयोग असुविधाजनक हो जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए–4

(i) इकाई उपागम का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(ii) इकाई उपागम के विभिन्न चरणों के नाम बताइये?

(iii) इकाई उपागम के दोषों की सूची बनाओ।

1.12 ब्लूम उपागम अथवा मूल्यांकन उपागम (Bloom's Approach or Evaluation Approach)

इस उपागम का विकास अमेरिकी शिक्षा शास्त्री डा. बी.एस. ब्लूम (Dr. B.S. Bloom) ने किया। इसलिए इसे ब्लूम उपागम कहा जाता है। ब्लूम के अनुसार शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है। इसमें शैक्षिक उद्देश्यों का निर्माण, अधिगम अनुभवों का निर्धारण एवं अधिगम परिणामों अथवा व्यावहारिक परिवर्तनों का मूल्यांकन सम्मिलित है।

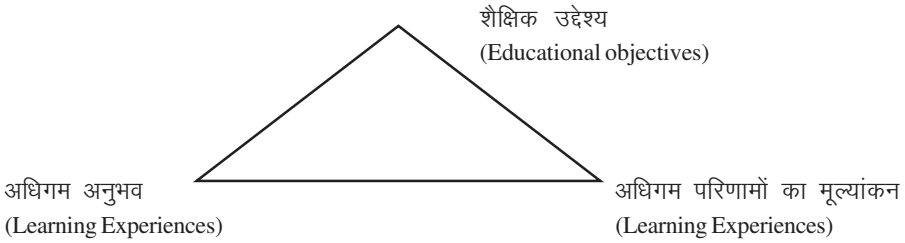

परम्परागत शिक्षण में अध्यापक द्वारा शिक्षण उद्देश्यों को निश्चित करने एवं उनके मूल्यांकन को महत्व नहीं दिया जाता था क्योंकि तब अध्यापक को मूल्यांकन तथा उद्देश्यों के प्रत्ययों का स्पष्ट ज्ञान नहीं था। अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम सम्बन्धी सूचनाओं के वितरण तक सीमित था और सत्र के अन्त में विद्यार्थियों की निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा उनके ज्ञान की परीक्षा

ली जाती थी। इस परीक्षा के परिणाम से अध्यापक संतुष्ट हो जाता था परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक युग में परम्परागत प्रणाली का स्थान नई–नई विधियां ले रही हैं। शिक्षा की इस दिशा में बहुत से प्रयोग एवं परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण है – मूल्यांकन के बारे में नवीन दष्टिकोण का विकसित होना।

1.12.1 मूल्यांकन उपागम की विशेषताएं

मूल्यांकन स्वयं एक प्रक्रिया है जो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में निरन्तर होती रहती है। नवीन दष्टिकोण के अनुसार परीक्षा को पूर्ण मूल्यांकन का एक अंश माना जाता है। आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। इस अपेक्षित व्यवहार की जांच करने के लिए मूल्यांकन प्रक्रिया में विभिन्न विधियों, प्रविधियों, एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। ब्लूम उपागम में मूल्यांकन को विशिष्ट स्थान देने के कारण इसे मूल्यांकन उपागम भी कहा जाता है। मूल्यांकन विद्यार्थियों की निष्पत्ति (Performance) तक ही सीमित नहीं होता अपितु यह विद्यार्थियों एवं शिक्षक को पष्ठपोषण (Feedback) भी प्रदान करता है। मूल्यांकन उपागम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. मूल्यांकन उपागम शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रत्यय के रूप में विकसित हुआ है।
2. इस उपागम के अनुसार शिक्षण उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।
3. इसके अनुसार शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है।
4. इस उपागम में विद्यार्थियों के व्यवहार परिवर्तन को विशेष महत्व दिया गया है। विद्यार्थियों के व्यवहार में आये परिवर्तनों की जांच के लिए विभिन्न विधियों, प्रविधियों आदि का प्रयोग किया जाता है।
5. मूल्यांकन उपागम विद्यार्थियों की निष्पत्ति तक ही सीमित नहीं है। यह अध्यापक तथा विद्यार्थियों को पष्ठपोषण भी प्रदान करता है।

1.12.2 ब्लूम के मूल्यांकन उपागम के पद
(Steps of Bloom's Evaluation Approach)

ब्लूम द्वारा बताए गए शिक्षा के तीन ध्रुवों के आधार पर मूल्यांकन उपागम के तीन पद या सोपान हैं। ये पद निम्नलिखित हैं–

I. **शैक्षिक उद्देश्यों का निर्माण (Formulation of Educational Objectives)** मूल्यांकन उपागम का प्रथम पद है शैक्षिक उद्देश्यों का निर्माण करना। ये उद्देश्य विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, उनमें लाये जाने वाले व्यावहारिक परिवर्तनों तथा अधिगम अनुभवों के अनुरूप निर्धारित किए जाने चाहिए। यदि शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण नहीं किया जाता तो शिक्षा प्रक्रिया अर्थहीन होकर रह जाती है। इन उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यावहारिक शब्दावली में लिखा जाना चाहिए। शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

   (i) प्रत्येक विषय की एक विशिष्ट प्रकृति होती है अतः प्रत्येक विषय के उद्देश्य दूसरे उद्देश्य से भिन्न होने चाहिएं।

   (ii) शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक उद्देश्य भी भिन्न होने चाहिएं।

   (iii) शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित करते समय समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए अर्थात् शैक्षिक उद्देश्य सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिएं।

II. **अधिगम-अनुभवों का निर्धारण** (Specification of Learning Experiences) अधिगम अनुभवों से अभिप्राय है – वे साधन जिनकी सहायता से शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। कक्षा शिक्षण के समय विद्यार्थियों को कुछ विशिष्ट अनुभव करवाये जाते हैं जिससे वे प्रभावशाली ढंग से एवं निश्चित दिशा में अधिगम कर सकें। विद्यार्थियों को ये अनुभव प्रदान करने के लिए अध्यापक विशिष्ट क्रियाएं करता है। अधिगम अनुभव इस प्रकार प्रदान किए जाते हैं जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। अधिगम अनुभव निर्धारित करते समय अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

(i) उचित अधिगम सामग्री का चयन एवं गठन (Selection and organisation of suitable learning material)

(ii) अपेक्षित अधिगम वातावरण के निर्माण के लिए उचित शिक्षण अधिगम नीतियों, युक्तियों एवं प्रविधियों का चयन (Selection of appropriate teaching learning strategies, tactics and devices for creating desirable learning environment)

(iii) उपयुक्त संसाधनों का चयन (Selection of appropriate resources)

(iv) अध्यापक–विद्यार्थी अन्तःक्रिया एवं कक्षा कक्ष में क्रियाओं का नियोजन (Planning Teacher-Students interaction and activities in the classroom)।

III. **अधिगम परिणामों अथवा व्यवहार-परिवर्तनों का मूल्यांकन (Evaluating Learning outcomes or behavioural changes)** यह मूल्यांकन उपागम का तीसरा एवं महत्वपूर्ण पद है। अधिगम अनुभवों को प्रदान करके विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाये जाते हैं। अधिगम अनुभवों की प्रभावशीलता के सम्बन्ध मे निर्णय करने के लिए विद्यार्थियों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का मूल्यांकन किया जाता है। व्यवहार–परिवर्तन का मूल्यांकन प्रथम पद में निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। विद्यार्थियों के व्यवहार परिवर्तन तीन प्रकार के होते हैं–

(i) ज्ञानात्मक (Cognitive)

(ii) भावात्मक (Affective)

(iii) क्रियात्मक (Psychomotor)

इस उपागम में तीनों प्रकार के व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन करने की व्यवस्था होती है। प्रत्येक प्रकार के व्यवहार परिवर्तनों के मूल्यांकन के लिए अलग–अलग विधियों का प्रयोग किया जाता है जैसे – ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित व्यवहार–परिवर्तन के मूल्यांकन के लिए मौखिक परीक्षा (Oral Test), वस्तुनिष्ठ परीक्षा (Objective Test), निबन्धात्मक परीक्षा (Essay Type Test) आदि का प्रयोग किया जा सकता है। भावात्मक पक्ष के लिए मूल्यांकन के लिए निरीक्षण (Observation) साक्षात्कार, रेटिंग स्केल, अभिरूचि परीक्षण (Aptitude Test) आदि का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार क्रियात्मक पक्ष के मूल्यांकन के लिए निरीक्षण, प्रयोगात्मक, साक्षात्कार और प्रदर्शन विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

1.12.3 मूल्यांकन उपागम की पाठ-योजना के सोपान

Steps involved in Evaluation Approach of Lesson Planning

ब्लूम द्वारा प्रतिपादित मूल्यांकन उपागम के आधार पर तैयार की जाने वाली पाठ–योजना में निम्नलिखित सोपान होते हैं–

1. **शिक्षण बिन्दु अथवा विषय वस्तु (Teaching Points or Content)** - पाठ योजना के प्रथम सोपान में विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने वाली विषय–वस्तु का उल्लेख किया जाता है। इसमें विषय वस्तु का विस्तत वर्णन नहीं किया जाता अपितु शिक्षण के मुख्य बिन्दुओं को लिखा जाता है। इन शिक्षण बिन्दुओं का निर्धारण पहले ही कर लिया जाता है।

2. **उद्देश्यों का विशिष्टीकरण (Specification of Objectives)** – पाठ योजना के इस सोपान में पहले शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और इसके पश्चात् विशिष्ट उद्देश्यों को लिखा जाता है। इन उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जाता है।

3. **अध्यापक क्रियाएं (Teacher Activities)** – इस सोपान में अध्यापक द्वारा कक्षा शिक्षण में की जाने वाली उन क्रियाओं को निर्धारित किया जाता है जिन्हें वह शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। शिक्षण क्रियाओं का पूर्व निर्धारण अध्यापक का आत्मविश्वास बनाये रखने में एवं समय का सदुपयोग करने में सहायता करता है। ये क्रियाएं – प्रश्न पूछना, कथन करना, प्रदर्शन करना, व्याख्या करना सहायक सामग्री का प्रयोग आदि हो सकती है।

4. **विद्यार्थी क्रियाएं (Student Activities)** – इस सोपान में शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यार्थियों की क्रियाओं का उल्लेख किया जाता है। ये क्रियाएं अध्यापक की क्रियाओं के उत्तर के रूप में विद्यार्थियों की अनुक्रियाएं हो सकती हैं। इन क्रियाओं का निर्धारण करने से अध्यापक विद्यार्थी अन्तः क्रिया का स्वरूप निश्चित किया जा सकता है। उदाहरण – अध्यापक को ध्यानपूर्वक सुनना, प्रश्नों के उत्तर देना, सहायक सामग्री तैयार करना आदि।

5. **सहायक सामग्री (Teaching Aids)** – इसमें अधिगम अनुभव प्रदान करने के लिए पाठ में प्रयोग की जाने वाली सहायक सामग्री, शिक्षक विधियों एवं प्रविधियों का निर्धारण किया जाता है। सहायक सामग्री पाठ को सरल, स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाती है।

6. **मूल्यांकन (Evaluation)** – इस सोपान में उन मूल्यांकन विधियों एवं प्रविधियों का निर्धारण किया जाता है जिनके द्वारा शिक्षण अधिगम से प्राप्त उपलब्धि की जांच की जाती है अर्थात् विद्यार्थियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों एवं शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का पता लगाया जाता है। मूल्यांकन से अध्यापक को ज्ञात होता है कि उसके द्वारा प्रयुक्त विधियां एवं शिक्षण युक्तियां कितनी सफल हुई हैं। इस मूल्यांकन के आधार पर वह अपने शिक्षण में एवं विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया में अपेक्षित सुधार कर सकता है।

1.12.4 ब्लूम उपागम के गुण (Merits of Bloom Approach)

1. **मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक (Psychological and Scientific)** – यह उपागम शिक्षण–अधिगम के मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

2. **उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में लिखना (Writing Objectives in Behavioural Terms)** – इस उपागम में उद्देश्यों को शैक्षिक उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यावहारिक शब्दावली में लिखा जाता है।

3. **शिक्षण-बिन्दुओं का निर्धारण (Determination of Teaching Points)** इस उपागम में सर्वप्रथम शिक्षण बिन्दुओं को निर्धारित किया जाता है जिससे अधिगम अनुभवों को स्पष्टता से प्रस्तुत किया जा सकता है।

4. **अध्यापक एवं विद्यार्थी क्रियाएं (Teacher and Student Activities)** – इसमें अध्यापक एवं विद्यार्थियों की क्रियाओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है। ये क्रियाएं निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संगठित की जाती हैं।

5. **विधियों, प्रविधियों, सहायक सामग्री आदि का स्पष्ट वर्णन (Clear Description of Methods, techniques, teaching aids etc.)** इस उपागम में पाठ–योजना में विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण के लिए प्रयोग की जाने वाली विधियों, प्रविधियों एवं सहायक सामग्री आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है।

6. **लक्ष्यपूर्ण शिक्षण (Purposeful Teaching)** इस उपागम पर आधारित पाठ योजना शिक्षण को उद्देश्यपूर्ण या लक्ष्यपूर्ण बनाती है।

7. **मूल्यांकन पर बल (Emphasis on Evaluation)** ब्लूम उपागम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों के मूल्यांकन पर बल देता है। मूल्यांकन के बिना पाठ–योजना निरर्थक सिद्ध होगी।

8. **शिक्षण-अधिगम अनुभवों को सुधारना (Improving Teaching-Learning Experiences)** इस उपागम में मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों के आधार पर शिक्षण–अधिगम अनुभवों एवं शिक्षण क्रियाओं को संशोधित करने की व्यापक क्षमता है।

1.12.5 ब्लूम उपागम के दोष
(Demerits of Bloom's Approach)

यह उपागम सभी परिस्थितियों में उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इस उपागम की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. **उच्च स्तरीय संरचना (Highly Structured)** – ब्लूम की पाठ योजना के लिए उच्च स्तरीय संरचना की आवश्यकता होती है और शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक की मुख्य भूमिका होती है।

2. **कठोर एवं यांत्रिक (Rigid and Mechanical)** – इस उपागम की पाठ–योजना शिक्षण कार्य को कठोर एवं यात्रिक बना देती है क्योंकि इसमें अध्यापक एवं विद्यार्थियों की क्रियाओं को पहले ही निर्धारित कर लिया जाता है। इससे अध्यापक एवं विद्यार्थियों की मौलिकता, रचनात्मकता एवं उनके उपक्रम नष्ट हो जाते हैं।

3. **मानसिक योग्यताओं की ओर ध्यान नहीं (No attention towards mental abilities)** – इस उपागम में उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में लिखने के लिए मानसिक योग्यताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

4. **समन्वय में कठिनाई (Difficulty in coordination)** – इस उपागम के अंतर्गत तैयार की गई पाठ योजना में उद्देश्यों, अधिगम अनुभवों तथा मूल्यांकन प्रविधियों में समन्वय लाना व्यावहारिक दष्टि से कठिन कार्य है।

5. **विद्यार्थी एवं अध्यापक की स्वतन्त्रता में कमी (Lack of freedom to student and teacher)** – इस उपागम में अध्यापक और विद्यार्थियों की कक्षा क्रियाओं को पहले से ही निर्धारित कर लिया जाता है। इस तरह अध्यापक एवं विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता खत्म हो जाती है अथवा कम हो जाती है। केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही पूर्व निर्धारित क्रियाओं को करने से लाभ होता हैं

1.12.6 ब्लूम के मूल्यांकन उपागम पर आधारित आदर्श पाठ योजना
(Model Lesson Plan based on Bloom's Evaluation Approach)

रोल नं. – दिनांक –

विषय – सामान्य विज्ञान कक्षा – आठवीं

उपविषय– सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण कालांश – दूसरा

विशिष्ट उद्देश्य

इस पाठ योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. विद्यार्थियों को सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण की तिथियां प्रत्यास्मरण करने योग्य बनाना।

2. विद्यार्थियों को सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण का वर्णन करने योग्य बनाना।

3. विद्यार्थियों को सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण के कारण बताने योग्य बनाना।

4. विद्यार्थियों को सूर्यग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण के प्रभावों की व्याख्या करने योग्य बनाना।

प्रस्तुतीकरण अथवा अधिगम अनुभव (Presentation or Learning Experiences)

अध्यापक क्रियाएं (Teacher Activities)	विद्यार्थी क्रियाएं (Student Activities)	शिक्षण विधियां एवं सहायक साधक (Teaching methods & aids)	उद्देश्य (Objectives)
प्रश्न – चन्द्रमा किस के चारों ओर घूमता है?	चन्द्रमा पथ्वी के चारों ओर घूमता है।	प्रश्न – उत्तर	ज्ञान
प्रश्न – पथ्वी किसके चारों ओर घूमती है?	पथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। (मॉडल का अवलोकन)	प्रश्न –उत्तर (शिक्षण सहायक साधन का प्रयोग)	ज्ञान
प्रश्न – ये गतियां सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा की स्थितियों को किस प्रकार प्रभावित करती है?	कोई उत्तर नहीं	मॉडल का प्रयोग	
प्रश्न – कई बार पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है और कई बार चन्द्रमा सूर्य और पथ्वी के बीच में आ जाता है।	सुनना	मॉडल का प्रयोग	ज्ञान
प्रश्न– चन्द्रमा प्रकाश और ऊष्मा किससे लेता है?	सूर्य से	प्रश्न – उत्तर	
प्रश्न– पथ्वी प्रकाश और ऊष्मा किससे लेती है?	सूर्य से		
अध्यापक कथन– पथ्वी एवं चन्द्रमा दोनों सूर्य से प्रकाश एवं ऊष्मा लेते हैं। मास की मध्यतिथि अर्थात् अमावस्या को चन्द्रमा सूर्य और पथ्वी के बीच में आ जाता है।	सुनना	मॉडल दिखाना	बोध
प्रश्न– पूर्ण चन्द्रमा किस तिथि को होता है?	मास की अन्तिम तिथि अर्थात् पूर्णिमा को	प्रश्न – उत्तर	ज्ञान
प्रश्न– पूर्णिमा को पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति कैसी होती है?	पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है।	मॉडल का प्रयोग	
अध्यापक कथन– कभी–कभी पूर्णिमा को पथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है इस समय कुछ मिनटों तक सूर्य	सुनना	मॉडल का प्रयोग	बोध

	का प्रकाश पूर्ण या आंशिक रूप से चन्द्रमा पर नहीं पड़ता इस स्थिति को चन्द्र ग्रहण कहते हैं।			
प्रश्न–	सूर्य ग्रहण कैसे होता है?	कोई उत्तर नहीं	–	–
व्याख्या–	कभी–कभी मास की मध्यतिथि को सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा सीधी रेखा में आ जाते हैं। चन्द्रमा सूर्य और पथ्वी के बीच में इस प्रकार आ जाता है कि चन्द्रमा की छाया पथ्वी पर पड़ती है और उस समय कुछ देर के लिए सूर्य की किरणें पथ्वी तक नहीं पहुंचती।	सुनना	मॉडल का प्रयोग	बोध
प्रश्न–	इस स्थिति को क्या कहते हैं?	सूर्य ग्रहण	प्रश्न–उत्तर	ज्ञान
प्रश्न–	मास की प्रत्येक मध्य–तिथि को सूर्य ग्रहण क्यों नहीं होता?	कोई उत्तर नहीं	–	–
अध्यापक कथन–				
	सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा प्रत्येक मास में सीधी रेखा में नहीं आते।	सुनना	–	बोध
	पथ्वी अपनी धुरी पर उत्तर की ओर 23 $1/2^0$ झुकी होती है। चन्द्रमा तीस दिनों में पथ्वी का पूरा चक्कर नहीं लगाता।	सुनना	प्रदर्शन	बोध
प्रश्न–	मास की हर अन्तिम तिथि अर्थात् पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण क्यों नहीं होता?	हर मास की पूर्णिमा को सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा एक रेखा में नहीं आते	प्रश्न–उत्तर	बोध

मूल्यांकन (Evaluation)

1. सूर्य ग्रहण कब होता है?
2. चन्द्र ग्रहण कब होता है?
3. प्रत्येक अमावस्या को सूर्य ग्रहण क्यों नहीं होता?
4. प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्र ग्रहण क्यों नहीं होता?

गह कार्य (Home Work)

चित्रों की सहायता से सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण का वर्णन कीजिए।

1.13 आर. सी. ई. एम. उपागम (R.C.E.M. Approach)

इस उपागम का विकास क्षेत्रीय शिक्षा कॉलेज, मैसूर (Regional College of Education, Mysore) के भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा किया गया। इसलिए इसे RCEM उपागम का नाम दिया गया है।

आर.सी.ई.एम. उपागम में मनुष्य की मानसिक योग्यताओं पर बल दिया गया है। इस उपागम में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए कार्यसूचक क्रियाओं के स्थान पर 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया जाता है। मानसिक योग्यताओं की सहायता से व्यक्ति अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस उपागम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है। यह उपागम एक प्रकार से ब्लूम द्वारा दिये गये वर्गीकरण का संशोधित रूप है। इसमें ब्लूम द्वारा दिये गये ज्ञानात्मक पक्ष के 6 स्तरों के स्थान पर 4 स्तरों का वर्णन किया गया है। इसमें अन्तिम तीन स्तरों विश्लेषण, संश्लेषण व मूल्यांकन को सजनात्मकता (Creativity) नाम दिया गया है।

आर.सी.ई.एम. उपागम द्वारा स्पष्ट किये गये अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के स्तर एवं उनसे संबंधित 17 मानसिक योग्यताएं इस प्रकार हैं–

उद्देश्य (Objectives)		मानसिक योग्यताएं (Mental Abilities)
1.	ज्ञान (Knowledge)	1. पहचान करना (Recognise)
		2. प्रत्यास्मरण करना (Recall)
2.	समझ (Understanding)	3. सम्बन्ध देखना (See Relationship)
		4. उदाहरण देना (Cite Example)
		5. विभेद करना (Discriminate)
		6. वर्गीकरण करना (Classify)
		7. व्याख्या करना (Interpret)
		8. पुष्टि करना (Verify)
		9. सामान्यीकरण करना (Generalise)
3.	प्रयोग (Application)	10. कारण बताना (Reason)
		11. उपकल्पना का निर्माण करना (Formulate Hypothesis)
		12. उपकल्पना स्थापित करना (Establish Hypothesis)
		13. निष्कर्ष निकालना (Infer)
		14. भविष्यवाणी करना (Predict)
4.	सजनात्मकता (Creativity)	15. विश्लेषण करना (Analysis)
		16. संश्लेषण करना (Synthesise)
		17. मूल्यांकन करना (Evaluation)

1.13.1 आर.सी.ई.एम. उपागम के पद (Steps of R.C.E.M. Approach)

इस उपागम में प्रणाली उपागम (System Approach) की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। इसके अनुसार इस उपागम पर आधारित पाठ योजना के तीन पद या सोपान होते हैं। ये पद निम्नलिखित हैं–

I. **अदा (Input)** – यह RCEM उपागम का प्रथम पद है। इस पद को अपेक्षित व्यावहारिक परिणाम (Expected Behavioural Outcomes or EBOS) भी कहा जाता है। इस सोपान में पाठ के उद्देश्यों की पहचान तथा विशिष्टीकरण किया जाता है। शैक्षिक उद्देश्यों को लिखने के लिए ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों के 6 वर्गों के स्थान पर 4 वर्गों का प्रयोग किया जाता है। ये वर्ग हैं – (i) ज्ञान (Knowledge), (ii) बोध (Understanding), (iii) प्रयोग (Application), (iv) सजनात्मकता (Creativity)।

इन उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप से लिखने के लिए 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया जाता है। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान अथवा पूर्व–व्यवहार (Entering Behaviour) की भी पहचान की जाती है। इन उद्देश्यों की सहायता से अनुदेशात्मक प्रक्रिया का क्रम निर्धारित किया जाता है।

II. **प्रक्रिया (Process)** – यह RCEM उपागम का दूसरा सोपान है। यह हरबर्ट उपागम के 'प्रस्तुतीकरण' तथा ब्लूम उपागम के अधिगम–अनुभव सोपान के साथ मेल खाती है। प्रक्रिया को सम्प्रेषण व्यूह रचना (communication strategy) भी कहा जाता है। इस पद में कक्षा में अन्तः क्रिया या सम्प्रेषण प्रक्रिया होती है। इसमें अध्यापक और विद्यार्थियों दोनों के लिए भाग लेना आवश्यक होता है। 'प्रक्रिया' का मुख्य कार्य विद्यार्थियों को उचित अधिगम अनुभव प्रदान करने के लिए अधिगम स्थितियों का निर्माण करना होता है। इसमें अध्यापक क्रियाएं, विद्यार्थी क्रियाएं, शिक्षण नीतियां एवं युक्तियां, दश्य–श्रव्य साधन, अभिप्रेरणा की प्रविधियां तथा उचित कक्षीय अन्तःक्रिया प्राप्त करने के उपाय आदि सम्मिलित हैं। इन्हीं की सहायता से विषय–वस्तु का प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली ढंग से किया जाता है और निध ार्ारित उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं।

III. **प्रदा (Output)** इस सोपान को वास्तविक व्यवहार अथवा वास्तविक अधिगम परिणाम (Real Learning Outcomes or R.L.O.) भी कहा जाता है। इस पद का सम्बन्ध पाठ के मूल्यांकन से है। व्यवहार में परिवर्तन होना ही 'वास्तविक अधिगम परिणाम' (R.L.O.) कहलाता है। वास्तविक अधिगम परिणामों के मूल्यांकन के लिये विभिन्न मापन–प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। ये मापन प्रविधियां अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन पर आधारित होती हैं। अध्यापक प्रायः मौखिक या लिखित प्रश्नों द्वारा वास्तविक अधिगम परिणामों का मापन करता है।

1.13.2 पाठ योजना का सैद्धान्तिक प्रारूप

अदा (Input)	**प्रक्रिया (Process)**		**प्रदा (Output)**
अपेक्षित व्यावहारिक	**अधिगम-अनुभव**		**वास्तविक अधिगम**
परिणाम	**अध्यापक-क्रियाएं**	**विद्यार्थी क्रियाएं**	**परिणाम**
1. ज्ञान उद्देश्य	(i) भाषण	(i) सुनना	(i) प्रश्नों का पुनर्वेक्षण
	(ii) प्रदर्शन	(ii) अवलोकन	(ii) परिभाषित करना
	(iii) चार्ट और मानचित्र	(iii) नोट्स लिखना	(iii) कथन
	(iv) व्याख्या	(iv) अन्तःक्रिया	(iv) वर्णन करना
	(v) प्रश्न – उत्तर		(v) नाम बताना
			(vi) सूची तैयार करना

2. बोध उद्देश्य	(i) विचार–विमर्श	(i) सामूहिक विचार–विमर्श में भाग लेना	(i) अर्थ–निरूपण
	(ii) समस्या समाधान	(ii) सुनना	(ii) अनुवाद
	(iii) प्रश्न उत्तर		(iii) व्याख्या
	(iv) प्रदर्शन	(iii) अवलोकन	(iv) भेद करना
			(v) समस्या समाधान
3. प्रयोग उद्देश्य	(i) सामूहिक विचार–विमर्श	(i) भाग लेना	(i) प्रयोगात्मक परीक्षण
	(ii) प्रयोगशाला कार्य	(ii) प्रयोग करना	(ii) स्थिति परीक्षण
	(iii) प्रश्न उत्तर		(iii) निबन्धात्मक परीक्षण
	(iv) समस्या–समाधान	(iii) ज्ञान का समस्या समाधान में प्रयोग करना	(iv) अवलोकन
4. रचनात्मक उद्देश्य	(i) व्यक्तिगत कार्य	(i) विश्लेषण	(i) निबन्धात्मक परीक्षण
	(ii) सामूहिक विचार–विमर्श	(ii) तत्वों का संश्लेषण	(ii) मौखिक परीक्षण
	(iii) समस्या समाधान	(iii) नये सम्बन्धों की स्थापना	(iii) स्थिति परीक्षण
			(iv) समस्या समाधान
			(v) अवलोकन

1.13.3 'R C E M' उपागम पर आधारित आदर्श पाठ योजना (Model Lesson Plan based on R.C.E.M. Approach)

रोल नं. – दिनांक –

विषय – सामान्य विज्ञान कक्षा – आठवीं

उपविषय– सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण कालांश – पांचवां

शिक्षण बिन्दु (Teaching Points):

1. पथ्वी और चन्द्रमा की गति।
2. पूर्णिमा को सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा की स्थितियां।
3. चन्द्रग्रहण के कारण।
4. अमावस्या को सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा की स्थितियां।
5. सूर्य ग्रहण के कारण।
6. हर मास में ग्रहण न होने के कारण।
7. सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण का प्रभाव।

प्रस्तुतीकरण	अधिगम अनुभव		वास्तविक अधिगम
अपेक्षित व्यावहारिक परिणाम	अध्यापक क्रियाएं	विद्यार्थी क्रियाएं	परिणाम
नवीन उपविषय पूर्व ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया जायेगा।	प्रश्न– हम ऊष्मा एवं प्रकाश कहाँ से लेते हैं?	हम ऊष्मा एवं प्रकाश सूर्य से लेते हैं।	
	प्रश्न– रात के समय प्रकाश का प्राकृतिक स्त्रोत कौन सा होता है?	रात के समय चन्द्रमा प्रकाश के स्त्रोत के रूप में कार्य करता है।	
ज्ञान–प्रत्यास्मरण एवं पहचान (Recall and Recognition)	प्रश्न– साफ आकाश में थोड़ी देर के लिए सूर्य क्यों नहीं दिखाई देता?	ग्रहण के कारण	
	प्रश्न– चन्द्रमा किसके चारों ओर घूमता है?	पथ्वी के चारों ओर	
बोध–सम्बन्ध देखना	मॉडल दिखाकर–		
	प्रश्न– पथ्वी किसके चारों ओर चक्कर लगाती है?	सूर्य के चारों ओर	
	प्रश्न– ये गतियां सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा की स्थितियों को कैसे प्रभावित करती हैं?	कई बार सूर्य और पथ्वी के बीच चन्द्रमा आ जाता है और कई बार सूर्य और चन्द्रमा के बीच पथ्वी आ जाती है।	
ज्ञान–पहचान	अध्यापक क्रियाएं		
	प्रश्न – चन्द्रमा प्रकाश कहां से लेता है?	सूर्य से	
	व्याख्या – पथ्वी और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश एवं ऊष्मा लेते हैं।		
बोध–सम्बन्ध देखना	प्रश्न– चन्द्र ग्रहण कैसे होता है?	कोई उत्तर नहीं	
	अध्यापक कथन–		
	कभी–कभी पूर्णिमा को पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा एक सीधी रेखा में आ जाते हैं जिससे पथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है।	चन्द्र ग्रहण	सूर्य, पथ्वी और चन्द्रमा किस स्थिति में होते हैं?
	प्रश्न–पथ्वी, ऊष्मा और		

ज्ञान–प्रत्यास्मरण एवं पहचान	प्रकाश किससे लेती है?		
	प्रश्न– पथ्वी ऊष्मा और	सूर्य से।	
बोध सम्बन्ध देखना	प्रकाश किससे लेती है?		
	प्रश्न– सूर्य ग्रहण कैसे होता है?	अमावस्या को।	
	व्याख्या– कभी–कभी अमावस्या को सूर्य, चन्द्रमा और पथ्वी एक सीधी रेखा में आ जाते हैं जिससे चन्द्रमा की छाया सूर्य पर पड़ती है।	कोई उत्तर नहीं।	
	प्रश्न– इस स्थिति को क्या कहा जाता है?		अमावस्या को पथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा किस स्थिति में होते हैं?
	प्रश्न– सूर्य–ग्रहण और चन्द्र ग्रहण प्रत्येक मास में क्यों नहीं होता?	सूर्य ग्रहण	सूर्य–ग्रहण कैसे होता है?
	मॉडल दिखाकर व्याख्या– सूर्य, चन्द्रमा और पथ्वी प्रत्येक मास में सीधी रेखा में नहीं आते। पथ्वी अपनी धुरी पर उत्तर की ओर 23½° झुकी होती है।	कोई उत्तर नहीं।	सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण प्रत्येक मास में क्यों नहीं होता?

अपनी प्रगति जांचिए–5

(i) मूल्यांकन उपागम के विभिन्न पदों का वर्णन कीजिए।

(ii) आर०सी०ई०एम० उपागम में कितनी मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया जाता है? किन्हीं पांच के नाम बताओ।

1.14 कुछ आदर्श पाठ योजनाएँ

पाठ–योजना के इन चारों उपागमों में से सैद्धान्तिक रूप से आर.सी.ई.एम. उपागम भारतीय परिस्थितियों में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परन्तु हमारे अधिकांश शिक्षण–महाविद्यालयों में हरबर्ट उपागम पर आधारित पाठ योजना के संशोधित रूप प्रयोग किया जा रहा है। कुछ पाठ योजनाएं इस प्रकार हैं–

1.14.1 पाठ योजना-1

अनुक्रमांक–	क	कक्षा–VII
विषय–	भौतिक विज्ञान	अवधि– 15 मिनट
उपविषय–	पदार्थों का पथकीकरण (भारण, चुम्बकीय पथकीकरण)	दिनांक–DD/MM/YY

अनुदेशनात्मक सामग्री-

1. श्यामपट्ट, चॉक, झाड़न, संकेतन।
2. बीकर, मिट्टी, पानी, फिटकरी, शीशे की छड़, चुम्बक, लौहचूर्ण, चार्ट।

सामान्य उद्देश्य-

1. छात्रों में विज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करना।
2. छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना।
3. छात्रों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
4. छात्रों को विज्ञान का दैनिक जीवन में उपयोग बताना।

व्यवहारपरक उद्देश्य-

इस पाठ की समाप्ति पर छात्र निम्न योग्यताएँ प्राप्त कर लेंगे–

1. छात्र भारण विधि को परिभाषित कर सकेंगे।
2. छात्र भारण विधि की प्रयोग एवं चित्र सहित व्याख्या कर सकेंगे।
3. छात्र चुम्बकीय पदार्थों को अचुम्बकीय पदार्थों से अलग कर सकेंगे।
4. छात्र दैनिक जीवन में इन विधियों का उपयोग कर सकेंगे।

अनुमानित पूर्व ज्ञान-

छात्र तत्व, यौगिक, पदार्थों के गुण, मिश्रण के विषय में जानते हैं

प्रस्तावना-

छात्रध्यापक/छात्राध्यापिका छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न पूछेंगी–

1. आटा गूँथने से पहले क्या करते हैं?
2. दाल बनाने से पहले उसे क्यों धोते हैं?
3. इसे विज्ञान में क्या कहते हैं?
4. वर्षा होने के बाद हवा चले तो धूल क्यों नहीं उड़ती है?

उद्देश्य कथन-

अंतिम प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न पाकर छात्राध्यापिका अपने उपविषय की घोषणा करेगी – छात्रों! आज हम पदार्थों के पथकीकरण की भारण और चुम्बकीय पथकीकरण विधियां पढ़ेंगे।

प्रस्तुतीकरण-

पाठ को व्याख्यान – प्रदर्शन विधि व प्रश्नोत्तर तकनीक से पढ़ाया जाएगा।

पाठ्य वस्तु	पाठ्य विधि	चाकपट्ट-साराँश
नदी के गंदले पानी को छानकर या निथार कर साफ करना चाहें तो बहुत समय लगता है। मिट्टी के बारीक कण नीचे बैठने में बहुत समय लगाएंगे। इसके लिए भारण विधि को प्रयोग किया जाता है।	छात्राध्यापिका छात्रों को पथकीकरण के विषय में बताएगी और निम्न प्रश्न पूछेगी–	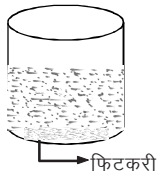
	प्रश्न– नदी के गंदे पानी को कैसे साफ करेंगे? अब छात्राध्यापिका छात्रों को भारण विधि के विषय में समझायेगी। छात्रों को अच्छी तरह समझाने के लिए प्रयोग करेगी –	**भारण विधि**- वह विधि जिसमें अशुद्धियों के छोटे–छोटे कणों को इकट्ठा करके भारी कर दिया जाता है ताकि वह आसानी से द्रव से अलग हो सके।
भारण विधि - वह विधि जिसमें अशुद्धियों के छोटे–छोटे कणों को इकट्ठा करके भारी कर दिया जाता है, जिससे वह आसानी से नीचे बैठ जाएं और साफ पानी को निथार कर आसानी से अलग किया जा सकता है। मिट्टी मिले पानी को साफ करने के लिए हम भारण विधि का प्रयोग कर सकते हैं। भारण विधि में फिटकरी प्रयोग करते हैं। फिटकरी में यह गुण है कि वह द्रव में घुलकर अशुद्धि कणों को बड़ा तथा भारी बना देती । फिटकरी के इसी गुण से मिट्टी के ण भारी होकर शीघ्र नीचे तली में बैठ ाते हैं और उन्हें आसानी से अलग कर कते हैं।	छात्राध्यापिका एक बीकर में साफ पानी लेगी और फिर एक छात्र को उसमें मिट्टी डालकर उसे छड़ से अच्छी तरह घोलने को कहेगी और छात्रों से पूछेगी–	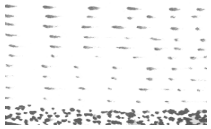
	प्रश्न– बीकर में क्या है?	
	प्रश्न– क्या रेत पानी में घुलनशील है?	
	अब छात्राध्यापिका फिटकरी लेगी और छात्रों से पूछेगी – यह क्या है?	फिटकरी पानी में घुलनशील हैं।
	अब छात्राध्यापिका एक छात्र को फिटकरी को पानी में डालने व घोलने को कहेगी और पूछेगी–	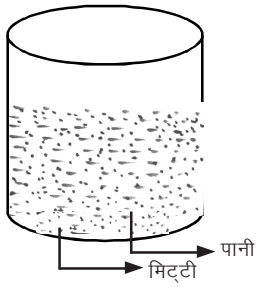
	प्रश्न– आप क्या देख रहे हैं?	
	प्रश्न– मिट्टी के कण नीचे क्यों बैठ जाते हैं?	मिट्टी के कण भारी होकर तली में बैठ जाते हैं।
उदाहरण- घर में झाड़ू लगाने से पहले फर्श पर पानी छिड़कते हैं ताकि मिट्टी के कण भारी हो जाएं और वे झाड़ू लगाते हुए उड़ते नहीं हैं।	छात्राध्यापिका छात्रों को समझाएगी कि फिटकरी पानी में घुलकर मिट्टी के कणों को भारी बना देती है जिससे मिट्टी के कण शीघ्र नीचे बैठ जाते हैं।	
	प्रश्न– झाड़ू लगाने से पहले पानी का छिड़काव क्यों करते हैं?	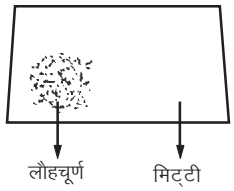
		उदाहरण– झाड़ू लगाने से पहले फर्श पर पानी छिड़कना।

चुम्बकीय पथकीकरण - वह विधि जिसमें चुम्बक की सहायता से चुम्बकीय पदार्थों को अचुम्बकीय पदार्थों से अलग किया जाता है। इस विधि में चुम्बक की लोहे को आकर्षित करने की विशेषता (गुण) को उपयोग में लाया जाता है।

इस विधि में रेत और लौहचूर्ण में से चुम्बक की सहायता से रेत और लोहे को अलग करते हैं। जब चुम्बक को रेत और लौहचूर्ण के मिश्रण में घुमाते हैं तो लौहचूर्ण चुम्बक से चिपक जाता है। इसी क्रिया को बार–बार दोहराने से रेत और लोहे को अलग कर लेते हैं।

उपयोग -इस विधि का उपयोग कारखानों में किया जाता है जहाँ पर शक्तिशाली चुम्बक की सहायता से बिखरी हुई लोहे की कतरनों को इकट्ठा करते हैं।

छात्राध्यापिका छात्रों को चुम्बकीय पथकीकरण के विषय में बताने के लिए निम्न प्रश्न पूछेगी–

प्रश्न– रेत और लोहे के मिश्रण को कैसे अलग करेंगे? (चुम्बक द्वारा)

प्रश्न– इस विधि को क्या कहते हैं?

अब छात्राध्यापिका इस विधि की व्याख्या करेगी और प्रयोग करके दिखाएगी – छात्राध्यापिका रेत और लोहचूर्ण का मिश्रण लेगी और एक चुम्बक के मिश्रण में घुमाएगी और पूछेगी–

प्रश्न– आप क्या देख रहे हैं?

अब छात्राध्यापिका लौहचूर्ण को चुम्बक से अलग करेगी और अब एक छात्र को बुलाएगी और उसे यही क्रिया करने को कहेगी और यह क्रिया तब तक चलेगी जब तक कि सारा लौहचूर्ण रेल से अलग नहीं हो जाता है।

प्रश्न– इस विधि का उपयोग कहाँ किया जाता है?

चुम्बकीय पथकीकरण- वह विधि जिसमें चुम्बक की सहायता से चुम्बकीय पदार्थों को अचुम्बकीय पदार्थों से अलग किया जाता है।

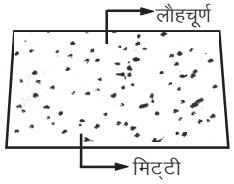

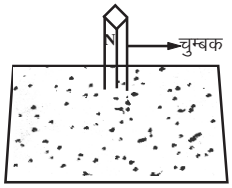

लोहा चुम्बक से चिपक जाता है

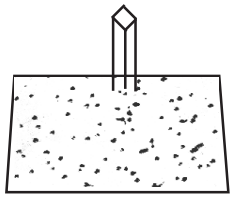

पुनरावत्ति-

1. भारण किसे कहते हैं?
2. फिटकरी का क्या कार्य है?
3. चुम्बक किन वस्तुओं को अपनी तरफ आकर्षित करता है?
4. चुम्बकीय पथकीकरण किसे कहते हैं?

गहकार्य- अपनी अभ्यास पुस्तिका में निम्न प्रश्न करके लाने हैं–

प्रश्न– भारण विधि का चित्र सहित वर्णन करो।

प्रश्न– चुम्बकीय पथकीकरण विधि के उपयोग लिखो।

पाठ योजना-2

विषय : भौतिक विज्ञान

अनुक्रमांक- क **कक्षा** – छठी

विषय- भौतिक विज्ञान **कालांश** – तीसरा

उपविषय- अणु, परमाणु और उसका संकुलन **दिनांक** – DD/MM/YY

अनुदेशनात्मक सामग्री-

श्यामपट्ट, चाक, झाड़न, अणुओं व परमाणुओं के संकुलन को दर्शाता एक मॉडल, माचिस।

सामान्य उद्देश्य-

1. छात्रों में विज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करना।
2. छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना।
3. छात्रों मेंवैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
4. छात्रों को विज्ञान का दैनिक जीवन में उपयोग बताना।

व्यवहारपरक उद्देश्य-

इस पाठ की समाप्ति पर छात्र निम्न योग्यताएं प्राप्त कर लेंगे–

1. छात्र अणु व परमाणुओं की परिभाषा दे सकेंगे।
2. छात्र अणुओं व परमाणुओं का ठोस, द्रव व गैस में संकुलन कर सकेंगे।
3. छात्र अणुओं व परमाणुओं के ठोस, द्रव व गैस के संकुलन में अंतर बता सकेंगे।
4. छात्र अणुओं व परमाणुओं के संकुलन का दैनिक जीवन में उपयोग बता सकेंगे।

अनुमानित पूर्व ज्ञान-

छात्र जानते हैं कि प्रत्येक वस्तु छोटे–छोटे कणों से बनी होती है।

प्रस्तावना/पूर्व ज्ञान परीक्षा-

छात्राध्यापिका/छात्राध्यापक छात्रों से निम्न प्रश्न पूछेगी–

1. हम अपने आस–पास कौन–कौन सी वस्तुएं देख रहे हैं?
2. ये वस्तुएं किस चीज से बनी हैं?
3. (चाक दिखाते हुए) यह चाकपट्ट किससे बना है?
4. चाकपट्ट में सीमेंट और रेत के कणों का संकुलन कैसा है?

उद्देश्य कथन- अन्तिम प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न पाकर छात्राध्यापिका अपने उपविषय की घोषणा इस प्रकार करेगी –

पाठ्य वस्तु	पाठ्य विधि	चाकपट्ट-साराँश
	छात्राध्यापिका छात्रों को चाक दिखाते हुए निम्न प्रश्न पूछेगी–	
	1. यह चाक किससे बना है?	
	(छोटे–छोटे कणों से)	
अणुः किसी पदार्थ का वह छोटे से छोटा कण जो स्वतंत्र अवस्था में रह सकता है और जिसमें पदार्थ के सभी गुण मौजूद हो, अणु कहलाता है।	2. इन छोटे–छोटे कणों को क्या कहते हैं? छात्राध्यापिका चाक को तोड़कर उसका चूरा छात्रों को दिखाते हुए कहेगी कि इस चूरे (बारीक कण) से ही चाक बना है।	**अणु-** पदार्थ का छोटे से छोटा भाग जो स्वतन्त्र अवस्था में रह सकता है और जिसमें पदार्थ के सभी गुण मौजूद हों, अणु कहलाता है।
	प्र. 2. क्या इस (चूरे–बारीक) कणों को तोड़कर छोटा कर सकते हैं?	
	छात्राध्यापिका कथनः	
परमाणुः अणु का वह छोटे से छोटा भाग, जिसे हम तोड़कर और छोटा नहीं कर सकते, परमाणु कहलाता है।	अणु का वह छोटे से छोटा भाग, जिसे हम तोड़कर और छोटा नहीं कर सकते, परमाणु कहलाता है।	**परमाणु-** अणु का वह छोटे से छोटा भाग जिसे हम तोड़कर और छोटा नहीं कर सकते, परमाणु कहलाता है।
	इसके पश्चात छात्राध्यापिका पदार्थ से संबंधित निम्न प्रश्न छात्रों से पूछेगी–	
	प्र. पदार्थ कितने प्रकार के होते हैं?	
	(तीन–ठोस, द्रव गैस)	
ठोस पदार्थों में अणु एक दूसरे के बहुत समीप होते हैं जहाँ इन्हें हिलने–डुलने की स्वतन्त्रता नहीं होती।	प्र. इन पदार्थों में अणु व परमाणुओं का संकुलन कैसा होता है?	
	छात्राध्यापिका चाक दिखाकर पूछेगी कि इसमें अणुओं का संकुलन कैसा है?	
ठोस पदार्थों का आकार निश्चित होता है क्योंकि ठोस पदार्थों के अणु एक–दूसरे के बहुत करीब होते हैं और वे हिल–डुल नहीं सकते।	छात्राध्यापिका मॉडल की सहायता से ठोस पदार्थों में अणुओं व परमाणुओं के संकुलन के बारे में समझाएगी। छात्राध्यापिका छात्रों को डस्टर और मेज दिखाते हुए पूछेगी–	ठोस पदार्थों में अणु एक दूसरे के बहुत समीप होते हैं।
	प्र.चाक, डस्टर, मेज आदि ठोस पदार्थों का आकार निश्चित क्यों होता है?	ठोस–निश्चित आकार

पाठ्य वस्तु	पाठ्य विधि	चाकपट्ट-साराँश
	इसका पश्चात्, छात्राध्यापिका छात्रों से द्रवों में अणुओं व परमाणुओं का संकुलन समझाने के लिए निम्न प्रश्न पूछेगी– प्र. कुछ द्रव पदार्थों के नाम बताओ। (जल, चाय, दूध) प्र. क्या द्रव पदार्थों को हिलाया जा सकता है? (हाँ)	
द्रव पदार्थों का आकार निश्चित नहीं होता। द्रव पदार्थों के अणु एक दूसरे से थोड़ा दूर–दूर होते हैं। अणुओं के बीच दूरी होने के कारण ही द्रव पदार्थों का आकार निश्चित नहीं होता और उन्हें हिलाया जा सकता है। द्रव पदार्थों का आयतन निश्चित होता है।	प्र. द्रव पदार्थों का आकार निश्चित होता है? (नहीं) प्र. द्रव पदार्थों में अणु व परमाणुओं का संकुलन कैसा होता है? छात्राध्यापिका मॉडल की सहायता से द्रव पदार्थों में अणु व परमाणुओं के संकुलन की व्याख्या करेगी।	द्रव के अणुओं में दूरी होती है। द्रव का निश्चित आकार नहीं होता परन्तु उनका आयतन निश्चित होता है। चित्र
गैसों में अणु व परमाणु का संकुलनः जब हम माचिस की तीली जलाते हैं तो प्रकाश, ऊष्मा एवं धुआं उत्पन्न होता है। यह धुआं वायु में विसरित हो जाता है क्योंकि वायु/गैसों के अणु दूर–दूर होते हैं। अणुओं के बीच दूरी अधिक होने के कारण वे स्वतन्त्र रूप से घूम सकते हैं।	अब छात्राध्यापिका माचिस की एक तीली जलाकर छात्रों को दिखाते हुए निम्न प्रश्न पूछेगी– प्र. जब हम माचिस जलाते हैं तो क्या होता है? (आग जलती है और कुछ धुंआ निकलता है) प्र. यह धुंआ कहाँ चला जाता है? (हवा में मिल जाता है) प्र. धुंआ हवा में कैसे मिल जाता है? छात्राध्यापिका मॉडल की सहायता से गैस में अणुओं के संकुलन का वर्णन करेगी और बताएगी की धुंआ हवा की तरह गैस का एक रूप होता है। हवा/वायु के अणुओं के बीच काफी दूरी होने के कारण धुआं हवा में मिल जाता है।	गैस के अणुओं में बहुत अधिक दूरी होती है। चित्र
गैसों के अणु स्वतन्त्र रूप से घूमते हैं इसीलिए गैसों का आकार निश्चित नहीं होता।	प्र. क्या गैसों का आकार निश्चित होता है? (नहीं) प्र. गैसों का आकार निश्चित क्यों नहीं होता?	गैस का आकार निश्चित नहीं होता।

"छात्रों, आज हम अणु, परमाणु व उनके संकुलन के बारे में पढ़ेंगे।"

पुनरावत्ति-

प्र.1 अणु किसे कहते हैं?

प्र.2 परमाणु किसे कहते हैं?

प्र.3 ठोस पदार्थों में अणुओं का संकुलन कैसा होता है?

प्र.4 द्रव पदार्थों में अणुओं का संकुलन कैसा होता है?

प्र.5 गैसों में अणुओं का संकुलन कैसा होता है?

गह कार्य-

प्र.1 अणु व परमाणु को परिभाषित करो।

प्र.2 ठोस, द्रव व गैस में अणुओं के संकुलन में अंतर स्पष्ट कीजिए।

1.15 सारांश

इकाई योजना से अभिप्राय विषय–वस्तु का छोटी–छोटी इकाइयों अर्थात् पाठों में गठन करके उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से क्रमबद्ध करने से है। इकाई योजना अध्यापक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इकाई के लक्ष्य एवं उद्देश्य स्पष्ट रूप से निर्धारित किये जाने चाहिएं। एक अच्छी इकाई मध्यम लम्बाई की होती है। इकाई योजना बनाते समय अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, अनुभवों, स्तर, रुचियों आदि को ध्यान में रखना चाहिए। इकाई योजना के विभिन्न अंगों की रचना विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभन्नताओं, योग्यताओं आदि के अनुरूप होनी चाहिए।

इकाई योजना के प्रथम चरण में विभिन्न प्रकरणों, सहायक पाठों की संख्या, प्रत्येक पाठ के लिए आवश्यक समय, विषय–वस्तु के क्षेत्र, शिक्षण विधियों, सहायक सामग्री आदि का निर्धारण किया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक प्रकरण से सम्बन्धित उप–प्रकरणों, व्यवहारपरक उद्देश्यों, अध्यापक–विद्यार्थी क्रियाओं, दत्त कार्य, मूल्यांकन प्रविधियों आदि को सुनिश्चित किया जाता है।

पाठ को पढ़ने से पूर्व वैज्ञानिक रूप से की गई क्रमबद्ध तैयारी को ही पाठ योजना कहा जाता है। पाठ योजना के अभाव में योग्यतम शिक्षक भी कक्षा में असफल हो जाते हैं। पाठ योजना में विद्यार्थी के अर्जित ज्ञान, नवीन ज्ञान, प्रश्न विधि, साधन, सामग्री आदि का विवरण होता है। पाठ योजना विद्यार्थियों की रुचि बनाने, उनके पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से सम्बन्धित करने में सहायता करती है। यह अध्यापक का पथ–प्रदर्शन करने उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने, शिक्षण–विधि का चयन करने, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने, सहायक सामग्री का चयन करने और शिक्षण का मूल्यांकन करने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पाठ योजना बनाते समय कुछ सावधानियां रखनी चाहिए अन्यथा यह केवल औपचारिकता, और शिक्षक की स्वतंत्रता में बाधक बन जाती है। पाठ योजना बनाने से पूर्व अध्यापक को विद्यार्थियों की मानसिक आयु, स्तर, पूर्व ज्ञान, उपलब्ध संसाधनों एवं शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। पाठ योजना बनाने के सम्बन्ध में विभिन्न शिक्षाविद्ों ने उपागम प्रस्तुत किए हैं। इनमें से हरबर्ट उपागम अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। हरबर्ट उपागम परम्परागत मानव–व्यवस्था सिद्धान्त पर आधारित है। इस उपागम के पांच पद हैं–प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण, सम्बन्धीकरण या तुलना करना, सामान्यीकरण एवं प्रयोग। हरबर्ट उपागम के इन पांच पदों के आधार पर हम पाठ योजना बनाते हैं। हरबर्ट उपागम की कुछ सीमाएं हैं इसलिए आधुनिक समय में हरबर्ट उपगम के पदों में थोड़ा सा परिवर्तन करके पाठ–योजना के विभिन्न चरण निर्धारित किए गए हैं। पाठ योजना के मुख्य चरण इस प्रकार हैं–अनुदेशनात्मक सामग्री, व्यवहारपरक उद्देश्य, पूर्व ज्ञान (अनुमानित), प्रस्तावना, उद्देश्य कथन, प्रस्तुतीकरण, पुनरावत्ति एवं गह कार्य। विभिन्न शिक्षण विधियों के उपयोग के अनुसार प्रस्तुतीकरण में थोड़ा सा परिवर्तन लाया जाता है।

आदर्श उत्तर

1.(i) इकाई योजना से अभिप्राय विषय–वस्तु को छोटे भागों में बांट कर उनके उचित गठन और अर्थपूर्ण व सम्बन्धित शिक्षण–अधिगम क्रियाओं के आयोजन से है।

(ii) कृपया 1.4 में देखें।

2. (i) कृपया 2.4 में देखें।

(ii) पाठ योजना किसी पाठ के उन आवश्यक बिन्दुओं की रूप रेखा है जिन्हें उस क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिस क्रम में उन्हें अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(iii) उद्देश्यों का ज्ञान, विषय–वस्तु का ज्ञान, बाल मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षण विधियों एवं तकनीकों का ज्ञान।

3 हरबर्ट उपागम के 5 चरण हैं–प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण, सम्बन्धीकरण/तुलना, सामान्यीकरण एवं प्रयोग (वर्णन के लिए कृपया 2.7 में देखें)।

4. (i) इकाई उपागम का मुख्य उद्देश्य–शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों को विषय–वस्तु में दक्ष बनाना है।

(ii) अन्वेषण, प्रस्तुतीकरण, आत्मीकरण, संगठन एवं आवत्ति

(iii) सीमित क्षेत्र, समय व्यय, धीमा शिक्षण, पदों में अस्पष्टता

5. (i) 2.9 में देखें

17 मानसिक योग्यताएं–पहचान, प्रत्यास्मरण, वर्णन करना, संश्लेषण, विश्लेषण, सजनात्मकता आदि।

1.17 मुख्य शब्द

पाठ योजना–अध्यापक द्वारा कक्षा में की जाने वाली क्रियाओं को नियोजित ढंग से लिखना।

इकाई उपागम–विषय–वस्तु को इकाइयों में बांटना और इन इकाइयों का शिक्षण करके विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना।

मूल्यांकन उपागम–शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करके उनके अनुरूप अधिगम अनुभवों का सजन एवं अधिगम परिणामों का मूल्यांकन करके विद्यार्थी की निष्पत्ति ज्ञान करना एवं अध्यापक को पष्ठ पोषण प्रदान करने की प्रक्रिया।

अपेक्षित व्यावहारिक परिणाम–शिक्षण प्रक्रिया के पश्चात् विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन।

वास्तविक अधिगम परिणाम–शिक्षण–प्रक्रिया के पश्चात् विद्यार्थी के व्यवहार में हुए परिवर्तन।

1.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, जे०सी० 'शिक्षा के सिद्धान्त तथा तकनीक', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

शर्मा, आर०सी० Modern Science Teaching, Dhanpat Rai & Sons, New Delhi.

शर्मा, आर०ए० 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ।

Soni, Anju, 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludhiana

इकाई-III (a)

अध्याय-2: सहायक सामग्री का निर्माण (Preparation of Teaching Aids)

उद्देश्यः

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- सहायक–सामग्री की आवश्यकता बता सकें।
- सहायक सामग्री के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकें।
- सहायक सामग्री के कार्यों की सूची बना सकें।
- सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यकताओं की व्याख्या कर सकें।
- सहायक सामग्री के निर्माण में रखी जाने वाली सावधानियां बता सकें।
- विभिन्न सहायक सामग्री को तैयार करने की विधियों का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 सहायक–सामग्री की आवश्यकता
2.3 सहायक सामग्री के प्रकार
2.4 सहायक सामग्री के कार्य
2.5 सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यकताएं
2.6 सहायक सामग्री के निर्माण में सावधानियां
2.7 सहायक सामग्री तैयार करना
2.8 सारांश
मॉडल उत्तर
2.9 मुख्य शब्द
2.10 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

सहायक सामग्री एक व्यापक धारणा है। सहायक सामग्री से अभिप्राय उस शिक्षण सामग्री से है जो लिखित या मौखिक पाठ्य सामग्री को समझने में सहायता प्रदान करती है। सहायक सामग्री विषय–वस्तु को स्पष्ट एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में सहायता करती है। आधुनिक शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यदि बालक को ज्ञान प्रदान करना है तो ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सहायक सामग्री विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है, ज्ञान को ग्रहण करना सरल बनाती है, विद्यार्थियों को कल्पनाशील तथा जिज्ञासु बनाती है और शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में उनकी रूचि बनाये रखती है।

शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का समावेश होता है। यदि अध्यापक केवल पाठ्यपुस्तक विधि अथवा व्याख्यान विधि (Lecture Method) का प्रयोग करता है तो कक्षा का वातावरण नीरस एवं उबाऊ हो जाता है, विद्यार्थियों

का मन पाठ्य–सामग्री में केन्द्रित नहीं होता। सहायक सामग्री के प्रयोग से शिक्षण में नवीनता व रोचकता आती है। इससे अधिगम को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पाठ्यपुस्तकों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपना विशेष महत्व है। पाठ्य पुस्तकों से अध्यापक और विद्यार्थियों को दिशा मिलती है। सहायक सामग्री पाठ्य पुस्तक का स्थान नहीं ले सकती अपितु यह तो पुस्तक में लिखी सामग्री को समझने में सहायता करती है इसलिए सहायक–सामग्री साधन है, साध्य नहीं।

सहायक सामग्री विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा अधिगम करने में सहायता करती है। सहायक सामग्री को दश्य–श्रव्य सामग्री (Autio-Visual Aids) अथवा शिक्षण सामग्री भी कहा जाता है। इसमें चार्ट, मॉडल, चित्र, वास्तविक पदार्थ, श्यामपट्ट, फ्लैशकार्ड आदि सम्मिलित होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम सहायक सामग्री तैयार करने के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

2.2 सहायक सामग्री की आवश्यकता (Need of Teaching Aids)

सहायक सामग्री की शिक्षण अधिगम में आवश्यकता को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

– इसका प्रयोग करने से विद्यार्थियों में पाठ्यवस्तु के प्रति रूचि पैदा हो जाती है।

– विद्यार्थियों का ध्यान पाठ्यवस्तु की तरफ केन्द्रित हो जाता है व एक आकर्षण सा बना रहता है।

– इसके प्रयोग से नए ज्ञान को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इसका प्रयोग करने से विद्यार्थियों में जिज्ञासा बढ़ जाती है।

– ऐतिहासिक घटनाओं को मॉडल, चित्र आदि के माध्यम से बालक को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किए जाते हैं जिनका उस पर स्पष्ट असर दिखाई पड़ता है।

– विद्यार्थी किसी वस्तु को छूकर, देखकर, उसका प्रभाव स्वयं जानकर अधिक प्रभावित होते हैं। अतः शिक्षण सामग्री का प्रयोग करके विद्यार्थी अधिक रूचि से पाठ्यवस्तु को ग्रहण करते हैं।

– यह मंदबुद्धि तथा पिछड़े बालकों के लिए अति उत्तम साधन है। इसका प्रयोग करने से ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षण–अधिगम में रूचि पैदा होती है।

– इससे शिक्षण प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है। विद्यार्थियों को रटने से छुटकारा मिल जाता है। रेखाचित्र की सहायता से विद्यार्थी शीघ्र सीख लेते हैं।

– इसके द्वारा विभिन्न इन्द्रियों का सक्रिय किया जा सकता है जिससे विद्यार्थियों का ध्यान पाठ्यवस्तु की तरफ शीघ्र आकर्षित हो जाता है।

2.3 सहायक सामग्री के प्रकार (Types of Teaching Aids)

शिक्षण सामग्री का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. इन्द्रियों के आधार पर – श्रव्य साधन, दश्य साधन, दश्य–श्रव्य साधन, क्रियात्मक साधन

2. प्रौद्योगिकी के आधार पर – हार्डवेयर (Hardware) सोफ्टवेयर (Software)

(क) **श्रव्य साधन (Audio Aids)** – इसके अंतर्गत आने वाले साधन हमारी श्रव्य इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। इसमें आकाशवाणी प्रसारण, टेपरिकार्डिंग, ग्रामोफोन, लिखाफोन और रिकार्डप्लेयर आदि श्रव्य साधन उल्लेखनीय हैं।

(ख) **दश्य साधन (Visual Aids)** – इसके अंतर्गत आने वाले साधन हमारी आंखों को प्रभावित करते हैं। इन्हें देखकर विद्यार्थी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसमे मॉडल, चार्ट, मानचित्र, चित्र, फिल्म–पट्टियाँ, चित्रदर्शक, मूक–चित्र, वास्तविक चित्र, श्यामपट्ट, ग्राफ बुलेटिन बोर्ड, फ्लेनल बोर्ड आदि यन्त्र आते हैं।

(ग) **दश्य श्रव्य साधन (Audio-Visual Aids)** – इसके अंतर्गत आने वाले साधन हमारी चक्षु तथा श्रवण इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। इनके माध्यम से सुनकर व देखकर नई–नई चीजें अधिगम प्रदान करने में मदद करती हैं। इसमें दूरदर्शन, वी.सी.आर, ध्वनि वाले चलचित्र, कम्प्यूटर, एकांकी, ड्रामें व डॉक्यूमेंटरी फिल्में आदि उल्लेखनीय हैं।

(घ) **क्रियात्मक साधन (Activity Aids)** – इसके अंतर्गत आने वाले क्रियात्मक साधन हमें कुछ करके अधिगम करने में सहायता प्रदान करते हैं। इसमें अभिनय करना, प्रयोगशाला, नाट्यशाला में कार्य करना, मेलों और प्रदर्शनियों का आयोजन करना तथा भूमिका निभाना आदि उल्लेखनीय है।

2.4 सहायक सामग्री के कार्य (Functions of Teaching Aids)

1. **ध्यान केन्द्रित करना**– ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग से विद्यार्थियों का मन कक्षा में लगाया जा सकता है। अतएव शिक्षण सामग्री छात्रों के मन और ध्यान को केन्द्रित करती है।

2. **प्रेरणा प्रदान करना**- कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ाने से पहले पढ़ने के लिए प्रेरित करना आवश्यक होता है। दश्य–श्रव्य सामग्री विद्यार्थियों को अभिप्रेरणा प्रदान करती है।

3. **क्रिया का अवसर प्रदान करना**– सहायक सामग्री के प्रयोग से विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करने का अवसर प्राप्त होता है। टी.वी. तथा वी.डी.ओ. टेप दिखाकर उस पर वाद–विवाद करवाया जा सकता है।

4. **स्पष्टता**– कभी–कभी कोई पाठ कठिन न होकर समझाने में कठिन होता है। क्योंकि भाषण से उस सिद्धान्त या प्रत्यय को स्पष्ट करना कठिन होता है। इस कार्य में मॉडल, चित्र, चार्ट बहुत योगदान देते हैं।

5. **समय तथा शक्ति की बचत**– सहायक सामग्री विद्यार्थी तथा अध्यापक के समय की बचत करती है।

6. **अनुशासन में सहायक**–सहायक सामग्री के प्रयोग द्वारा विद्यार्थियों की ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगाया जा सकता है। इससे कक्षा में अनुशासन बनाए रखने में सहायता मिलती है।

7. **वैज्ञानिक मनोवत्ति का विकास**- कक्षा में हार्डवेयर के प्रयोग से तथा तकनीकी उपकरणों का प्रयोग करके विद्यार्थियों में वैज्ञानिक मनोवत्ति का विकास होता है।

8. **शब्दावली में वद्धि** – रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार–पत्र विद्यार्थियों को शब्दावली विकसित करने में मदद करती है। टेलिविजन तथा रेडियों पर पाठों का प्रसारण नई–नई शब्दावली को जानकारी देता है।

9. **अधिगम के स्थानान्तरण में सहायक**– अर्जित किया गया ज्ञान अन्य परिस्थितियों में प्रयोग करने से ज्ञान स्थायी होता है। इससे अधिगम का स्थानान्तरण अधिक होता है।

10. **कक्षा अन्तःक्रिया को बढ़ावा**– सहायक सामग्री के प्रयोग से शिक्षक छात्रों की कक्षा में अन्तक्रिया को अधिक प्रोत्साहित कर सकता है जैसे किसी मानचित्र को पूरा करना है तो सभी छात्र इसमें भाग ले सकते हैं।

11. **साधनों की कमी पूरा करना**- सहायक सामग्री उन क्षेत्रों में स्कूलों आदि की कमी को पूरा करती है और इससे विषय विशेषज्ञों की कमी भी पूरी हो सकती है। जैसे अच्छे शिक्षकों के रेडियों पाठों का प्रसारण, विज्ञान के पाठों का दूरदर्शन पर प्रदर्शन आदि।

2.5 सहायक सामग्री को तैयार करने की आवश्यकताएं (Requirements for Preparing Teaching Aids)

शिक्षण की सहायक सामग्री को तैयार करने के लिए हमें भिन्न–भिन्न वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इस सामग्री में कागज, चार्ट, पैमाना, रंग आदि की आवश्यकता होती है।

2.5.1. कागज (Paper)

(i) यह अधिक खर्चीला न हो।

(ii) यह आवश्यकतानुसार हो।

(iii) मोटाई भी आवश्यकतानुसार ही हो।

(iv) यह सफेद रंग का हो ताकि जो भी इस पर अंकित किया जा सके, स्पष्ट नजर आए।

कागज कई प्रकार का होता है जैसे – सादा कागज, चार्ट कागज, हैंडमेड शीट, तैलीय पेपर, स्कालर पेपर आदि। दश्य सामग्री बनाने के लिए इनमें से किसी भी माध्यम का प्रयोग किया जा सकता है। सादे कागज पर पैंसिल या स्केच पैन की मदद से चित्र बनाये जा सकते हैं। चार्ट पेपर सादे कागज से थोड़ा मोटा होता है। यह एक तरफ से चिकना तथा दूसरी तरफ से खुरदुरा होता है। इस पर रंगों तथा स्कैच पैन से चित्र बनाए जा सकते हैं। Hand made sheet मंहगा कागज है। लेकिन पानी के रंगों का प्राकृतिक चित्र बनाने में प्रयोग करने के लिए अच्छा माध्यम है। तेलीय पेपर पर तैलीय रंगों का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा काली शीट या चार्ट है जिन पर कुछ अन्य सामग्री लगाकर भी चित्र दिखाए जा सकते हैं।

2.5.2. चार्ट (Chart)

चार्ट तैयार करने के लिए कागज में साधारण चार्ट पेपर, कैन्ट शीट या Handmade चार्ट का प्रयोग किया जाता है। इसके बारे में निम्नलिखित बातें ध्यान रखनी चाहिएं:

– यदि तैयार चार्ट अगर उपलब्ध हो तो वह स्पष्ट होना चाहिए।

– अधिक खर्चीला नहीं होना चाहिए।

– इस पर लिखे शब्दों की मोटाई इतनी होनी चाहिए कि वह स्पष्ट नजर आए।

– चार्ट की व्याख्या स्पष्ट होनी चाहिए।

– चार्ट की मोटाई ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

– चार्ट पर रंगों का प्रयोग आवश्यकतानुसार हो।

– चार्ट कई प्रकार के होते हैं जैसे चित्र सम्बन्धी चार्ट, धारा चार्ट, तालिका चार्ट, ग्राफिक चार्ट, चित्र–युक्त चार्ट आदि।

2.5.3. रंग (Colours)

चार्ट तैयार करने के लिए रंगों की आवश्यकता पड़ती है। रंग तीन प्रकार के होते हैं–

(i) प्राथमिक रंग (Primary Colours)

(ii) सहायक रंग (Secondary Colours)

(iii) निरपेक्ष रंग (Neutral Colours)

(i) **प्राथमिक रंग**- यह लाल, पीला, नीला रंग है। जो प्रकृति में पाए जाते हैं। इन्हें मनुष्य नहीं बना सकता।

(ii) **सहायक रंग**- यह रंग दो या दो से अधिक प्राथमिक रंगों के मेल से बनते हैं। जैसे गुलाबी, बैंगनी, हरा, सन्तरी आदि।

(iii) **निरपेक्ष रंग**- यह काला तथा सफेद रंग है जो रंगों को हल्का तथा गहरा करने में काम आते हैं। स्लेटी रंग भी इन्हीं में आएगा।

चार्ट, मॉडल बनाने के लिए कई प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें पेसटल रंग, रंगीन चाक, पानी वाले रंग, पोस्टर रंग, तैलीय रंग अथवा कपड़े पर करने वाले रंग हैं। रंगों के प्रयोग में रंग को गहरा अथवा हल्का करने के लिए सफेद तथा काले रंग का प्रयोग किया जाता है।

रंग समायोजन (Colour Arrangement) रंग समायोजन से तात्पर्य है कि विभिन्न रंगों का चित्र के लिए किस प्रकार चयन किया जाए। एक रंग की विभिन्न शैड का प्रयोग करने भी अच्छे लगते हैं तथा कभी–कभी विपरीत रंगों के द्वारा भी रंगों का समायोजन किया जाता है। रंग लगाने से पहले यह देखना जरूरी है कि कैसे चित्र बनाते हैं कभी–कभी हम प्राकृतिक रंग का भी प्रयोग करते हैं। जैसे पेड़ के लिए हरा, आकाश के लिए नीले रंग, खून के लिए लाल, रौशनी के लिए पीला, रात के लिए काला रंग प्रयोग करते हैं।

2.5.4. फुट्टा (Scale)

सीधी रेखाओं को खींचने में; नाप तथा अनुपात में दश्य–श्रव्य सामग्री बनाने के लिए स्केल का प्रयोग किया जाता है। इसके एक तरफ इंच तथा दूसरी तरफ सैंटीमीटर का नाप दिया हुआ होता है।

2.5.5. रबड़ (Rubber)

रबड़ का शिक्षण–सामग्री में महत्वपूर्ण उपयोग है। चार्ट इत्यादि बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। यह कुछ भी गलत निशान या लिखे हुए को मिटाती है। रबड़ कई प्रकार की होती है। Dusted और Non-Dusted रबड़। रबड़ हमेशा Non-dust की होनी चाहिए। यह मेज या कागज को काला न करे। कोई भी निशान न छोड़े। रबड़ को कागज पर ज्यादा जोर से नहीं रगड़ना चाहिए क्योंकि इससे कागज फट सकता है।

2.5.6. पैंसिल (Pencil)

पैंसिल का उपयोग चार्ट, मॉडल में रेखाचित्र बनाने में किया जाता है। रेखाओं को बनाने के लिए पैंसिल का प्रयोग होता है। पैंसिल कई प्रकार की होती है। HB, 2B, 4B ये गहरी, कम गहरी, अधिक गहरी होती हैं। चार्ट बनाने के लिए किसी भी पैंसिल का प्रयोग कर सकते हैं। पैंसिल अच्छी क्वालिटी की होनी चाहिए। इसका सिक्का जल्दी नहीं टूटना चाहिए। रंगीन पेंसिलों का भी यथासंभव उपयोग करना चाहिए।

2.6 सहायक सामग्री के निर्माण में सावधानियाँ (Precautions in Preparing Teaching Aids)

सहायक सामग्री के निर्माण का कार्य शुरू करने से पहले कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

– सामग्री तैयार करने के लिए उन्हीं चीजों को चुनना चाहिए जो सुविधा से मिल सकें।

– यह सामग्री अधिक कीमती नहीं होनी चाहिए।

– सामग्री विद्यार्थियों की आयु के अनुसार बनानी चाहिए।

– आस–पास के वातावरण से जो वस्तुएँ उपलब्ध हो सकें, सहायक साधन आदि उसी से तैयार करने चाहिए।

– सामग्री शैक्षिक महत्व की हो तथा रूचिकर हो।

– ड्राइंग का ज्ञान रखने वाला अध्यापक प्रभावशाली चार्ट तैयार कर सकता है। क्राफ्ट में रूचि रखने वाला शिक्षक मॉडल आदि बना सकता है। अपनी रूचि के अनुसार अध्यापक को सामग्री का चयन करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए-1

(i) सहायक सामग्री तैयार करने के लिए किस सामग्री की आवश्यकता होती है?

(ii) सहायक सामग्री कितने प्रकार की होती है?

2.7 सहायक सामग्री तैयार करना (Preparing Teaching Aids)

विभिन्न सहायक सामग्री का निर्माण एवं उपयोग करने की विधियां निम्नलिखित हैं–

श्याम पट्ट (Black Board)

श्यामपट्ट जैसा कि नाम से स्पष्ट है, एक ऐसी श्याम (काली) आयताकार आकृति जो लकड़ी, प्लाईवुड, गत्ते, सीमेन्ट अथवा धातु का टुकड़ा है जिस पर आवश्यकतानुसार लिखा व मिटाया जा सकता है। अध्यापक के लिए यह एक महत्वपूर्ण सामग्री है जिसकी सहायता से वह मौखिक वर्णन के साथ–साथ विषय–वस्तु से संबंधित लिखता या चित्र भी बनाता रहता है। श्यामपट्ट का उपयोग सभी विषयों, जैसे–गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, कला, वाणिज्य इत्यादि में पूरी तरह किया जाता है। भाषा शिक्षण में तो उचित पठन–पाठन एवं लेखन की शिक्षा देने में ब्लैक–बोर्ड पर किया गया कार्य विद्यार्थियों को प्रेरणा व भाषा का आदर्श प्रस्तुत करता है।

श्यामपट्ट के प्रकार (Kinds of Black Board)

श्यामपट्ट निम्न प्रकार के होते हैं–

1. **दीवारी श्यामपट्ट (Wall Black-Board)–**यह श्यामपट्ट कक्षा–कक्ष की दीवार पर बना होता है। इसके निर्माण में प्रायः स्लेटी पत्थर एवं मसाले का प्रयोग किया जाता है और तैयार बोर्ड पर काला पेंट कर दिया जाता है। आमतौर पर इसका आकार 72' x 48' होता है। इसका निर्माण करते समय निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिएः

   (i) श्यामपट्ट बनाते समय कक्षा की स्थिति को ध्यान में रखना जरूरी है। श्यामपट्ट की ऊंचाई इतनी हो कि सभी विद्यार्थियों को आसानी से स्पष्ट दिखाई दे सके।

   (ii) श्यामपट्ट बनाने में उच्च कोटि का सामान लगाना चाहिए ताकि श्यामपट्ट के खराब होने का भय न रहे।

   (iii) श्यामपट्ट पर प्रतिवर्ष काला रोगन (Paint) करवाना चाहिए।

2. **लकड़ी का श्यामपट्ट (Wooden Black-Board)–**यह एक लकड़ी का पट्टा होता है जिस पर काला रंग करके स्टैण्ड पर टांग दिया जाता है। इस स्टैण्ड को आवश्यकतानुसार ऊंचा–नीचा भी किया जा सकता है। इस प्रकार के बोर्डो का आकार छोटा होने के कारण गणित एवं विज्ञान के विषयों के लिए ये उपयुक्त नहीं है।

3. **श्याम पट्टिकाएं (Roll Up Boards)–**श्यामपट्टिकाएं कपड़े के वे बोर्ड होते हैं जिन्हें लपेटा जा सकता है व दीवार पर टांगा जा सकता है। शिक्षण महाविद्यालयों में बी. एड. (B.Ed.) के विद्यार्थियों की अधिक संख्या के कारण अध्यापन अभ्यास के लिए दीवार पर श्याम–पट्टिकाओं को लटका कर काम चलाया जाता है। इनको बाहर जाने–ले जाने में सुगमता रहती है।

4. **चुम्बकीय बोर्ड (Magnetic Board)–** यह श्यामपट्ट इस्पात का बना होता है जिसमें चॉक के स्थान पर चुम्बक लगाए जाते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में रोचकता बनाये रखने के लिए ये बहुत उपयोगी हैं। पाठ को दोहराते समय विद्यार्थी अभ्यास के लिए चुम्बकीय श्यामपट्ट पर चीजों को चिपका देते हैं। यह बोर्ड अध्यापकों के लिए उपयोगी है, क्योंकि वे चुम्बकों की सहायता से इन पर चित्र, रेखाचित्र एवं चार्ट आदि अच्छे ढंग से लगा सकता है।

श्यामपट्ट के प्रयोग संबंधी महत्वपूर्ण बातें

(Important points to be taken into account while using Black-Board)

1. **उपयोग (Use)** – श्यामपट्ट का उपयोग निम्नलिखित बातों के लिए किया जाता है–

- रेखाचित्र या मानचित्र द्वारा किसी तथ्य को समझाने के लिए।
- नए तथ्यों व नियमों को प्रस्तुत करने के लिए।
- अभ्यास के लिए।
- सार के लिए।

2. **स्थिति (Location)** – श्यामपट्ट की स्थिति ऐसी हो कि सभी विद्यार्थियों को स्पष्ट दिखाई दे।

3. **लेखन (Writing)** – श्यामपट्ट पर अक्षर बड़े व सीधी रेखा में लिखने चाहिए।

4. **रंग (Colour)** – श्यामपट्ट का रंग गहरा काला होना चाहिए ताकि लिखा हुआ स्पष्ट दिखाई दे सके।

5. **समय-समय पर रोगन करवाना (To get Painted Frequently)** – श्यामपट्ट पर समय–समय पर गहरे काले रंग का रोगन (Paint) करवाना चाहिए ताकि स्पष्ट पढ़ा जा सके।

6. **चमकीले अक्षर (Bright Letters)** – श्यामपट्ट पर रंगीन चाक की अपेक्षा सफेद चाक से लिखने से अक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं इसलिए उसका इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

7. **झाड़न का प्रयोग (Use of Duster)** – श्यामपट्ट को झाड़न (Duster) से ही साफ करना चाहिए। झाड़न का प्रयोग ऊपर से नीचे की ओर किया जाना चाहिए ताकि चाक पाउडर नीचे गिरे व कक्षा में न उड़ सके।

8. **रंगदार चाक का प्रयोग (Use of Coloured Chalks)** – दो वस्तुओं अथवा शब्दों के बीच स्पष्ट अन्तर के लिए रंगदार चॉक का प्रयोग करना चाहिए।

9. **सार (Summary)** – श्यामपट्ट पर केवल महत्वपूर्ण बातें जैसे – पाठ का सार इत्यादि ही लिखा जाना चाहिए।

10. **प्रकाश (Light)** – श्यामपट्ट के ऊपर उचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि विद्यार्थियों को साफ दिखाई दे।

11. **सीधी रेखा (Straight Line)** – अध्यापक को श्यामपट्ट पर सीधी रेखा में लिखना चाहिए।

12. **आवश्यक क्रम (Systematic Writing)** – अध्यापक को महत्वपूर्ण बातें बीच में लिखते हुए लिखने का क्रम ठीक रखना चाहिएं।

13. **अध्यापक की स्थिति (Location of the Teacher)** – अध्यापक को श्यामपट्ट के सामने इस प्रकार खड़ा होना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को श्यामपट्ट पर लिखा हुआ साफ नजर आ सके।

14. **सहायक सामग्री (Complementary Materials)** – श्यामपट्ट पर लिखने की आवश्यक सामग्री जैसे चाक, डस्टर, स्टैंसिल इत्यादि पहले से तैयार रखने चाहिएं।

15. **लिखने में फुर्तीलापन (Briskness in Writing)** – अध्यापक को श्यामपट्ट पर साफ–साफ और फुर्ती से लिखना चाहिए ताकि विद्यार्थियों में रोचकता बनी रहे।

16. **लिखी सामग्री को कार्य समाप्ति के बाद मिटा देना (Rubbing off the written material after the completion of work)** – श्यामपट्ट पर लिखी सामग्री को कार्य की समाप्ति के पश्चात मिटा देना चाहिए।

17. **संकेतक का प्रयोग (Use of pointer)** – श्यामपट्ट पर लिखी गई सामग्री को अंकित करने के लिए अध्यापक को संकेतक अवश्य प्रयोग में लाना चाहिए।

18. **लिखते समय बोलते रहना (Talking while writing)** – अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखते समय, लिखे हुए वाक्यों को बोलते रहना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की दश्य–श्रव्य इन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं।

19. **छात्रों द्वारा योगदान (Contribution by the Students)** – गणित, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों में शिक्षण प्रक्रिया के दौरानसवाल हल करने, मानिचत्र बनाने, चित्र आदि बनाने के लिए विद्यार्थियों को श्यामपट्ट पर बुलाना चाहिए, इससे विद्यार्थी क्रियाशील रहते हैं।

20. **त्रुटिपूर्ण विषय-वस्तु (Wrong Subject material)** – कभी भूल से भी गलत बात या त्रुटिपूर्ण ड्राईंग श्यामपट्ट पर नहीं लिखनी व बनानी चाहिए।

फ्लैनल बोर्ड (Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त, लिखी हुई या चित्रात्मक सामग्री के तत्काल प्रदर्शन हेतु काम में लाये जाने वाला सबसे अच्छा साधन है। फ्लैनल बोर्ड का प्रदर्शन उन कार्यों में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है जिनमें विद्यार्थियों से पहचान का कार्य करवाना हो। इस प्रकार के बोर्ड की विशेषता यह है कि इस पर किन्हीं शब्दों अथवा चित्रों को खींचने की आवश्यकता नहीं। पुनर्निमित सामग्री को इसके ऊपर टिकाया जा सकता है। जब कार्य समाप्त हो जाता है तो उसे वहां से हटाया जा सकता है। प्राथमिक कक्षा में विद्यार्थियों को विषय सामग्री सम्बन्धी वस्तुएं फ्लैनल बोर्ड पर जमाने के लिए दी जाती हैं ताकि उनकी रचनात्मक रूचि जागत हो सके।

फ्लैनल बोर्ड का निर्माण (Preparation of Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड लकड़ी या प्लाईवुड का एक बोर्ड या पट्टा होता है जिसे उचित आकार में काटा जाता है। फिर इस पर फ्लैनल कस कर चिपका दिया जाता है। फ्लैनल एक कपड़ा होता है, जिसमें ऊन के रेशे होने के कारण उसमें खुरदरापन आ जाता है। इसके पश्चात् फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित किए जाने वाले चित्रों और मानचित्रों को रेगमार (Sand Paper) पर गोंद से चिपकाया जाता है। अब फ्लैनल बोर्ड को उपयुक्त, जगह पर कक्षा में टांगकर अथवा मेज पर रखकर कक्षा शिक्षण के काम में लाया जा सकता है।

फ्लैनल बोर्ड का महत्व (Importance of Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड के महत्व निम्नलिखित हैं–

1. प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे फ्लैनल बोर्ड की सहायता से मनोरंजक कहानियां अच्छे ढंग से समझ सकते हैं।
2. फ्लैनल बोर्ड कक्षा–कक्ष में विविधता लाता है।
3. इस सहायक सामग्री का प्रयोग छोटी कक्षाओं में भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल इत्यादि के शिक्षण के लिए सुगमता से किया जा सकता है।
4. प्रदर्शित किए जाने वाले चित्र बढ़िया और बड़े आकार के होने चाहिए।
5. फ्लैनल का रंग गाढ़ा (Dark) होना चाहिए क्योंकि हल्के रंग जल्दी गन्दे हो जाते हैं।
6. कटिंग व चित्र पाठ्य–वस्तु से संबंधित होने चाहिए।
7. ऐसे रंगों को प्रयोग में लाना चाहिए जो वैष्मय (Contrast) उत्पन्न कर सकें।
8. फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित सामग्री को पुनः प्रयोग में लाते रहने की दष्टि से उचित देखभाल एवं सुरक्षा भी आवश्यक है।

बुलेटिन बोर्ड (Bulletin Board)

विद्यालयों में लेखन और चित्रात्मक दश्य सामग्री का प्रदर्शन करने के लिए काम में लाया जाने वाला एक सुलभ साधन बुलेटिन बोर्ड है। यह एक प्रदर्शन पट्ट (Display Board) होता है जो मुख्यतया बुलेटिन, विज्ञप्तियों, समाचारों, विद्यालय की कक्षा शिक्षण तथा अन्य गतिविधियों की सूचना देने के लिए काम में लाया जाता है। अर्थाभाव के कारण भारत में अनेक विद्यालयों में बुलेटिन बोर्ड की सुविधा उपलब्ध नहीं है। बुलेटिन बोर्डों पर शिक्षक समाचार पत्र और पत्रिकाओं की कटिंग, मानचित्र, नवीन प्रकाशित पुस्तक का टाईटल, पेज, पोस्टर इत्यादि को विद्यार्थियों के ज्ञान में वद्धि करने के लिए टांग सकते हैं। सूचना पट्ट पर सामग्री का प्रदर्शन ड्राईंग पिनों से टांग कर किया जा सकता है। बुलेटिन बोर्ड को विद्यालय की निरंतर पत्रिका भी माना जा सकता है। यह पूर्ण रूप से विद्यार्थियों के रचनात्मक प्रयत्नों का परिणाम होता है।

बुलेटिन बोर्ड का निर्माण (Preparation of a Bulletin Board)

सामान्य बुलेटिन बोर्ड को आफिस, पुस्तकालय और प्रयोगशाला आदि की दीवारों पर स्थापित किया जा सकता है। इसके निर्माण के लिए प्रायः लकड़ी और प्लाईवुड इत्यादि से बने उपयुक्त फ्रेमों का इस्तेमाल किया जाता है, फिर लकड़ी और प्लाईवुड की शीट पर ऐसे मुलायम पदार्थ जैसे सॉफ्टवुड, कार्क मेटेरियल आदि की शीट लगाई जाती है जिसमें पिन वगैरह अच्छी तरह से लगाई जा सकें। इसके ऊपर हिफाजत की दष्टि से किसी उपयुक्त गहरे रंग का कोई मोटा कपड़ा लगा देते हैं, जो प्रदर्शित सामग्री को उपयुक्त धरातल देने का भी कार्य करता है। अंत में उस पर शीशे अथवा जालीयुक्त फ्रेम लगाकर बन्द कर देते हैं।

बुलेटिन बोर्ड का प्रयोग कैसे किया जाए?

(How to use the Bulletin Board?)

1. बुलेटिन बोर्ड की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अनुभवी व उत्साही अध्यापक को सौंपना चाहिए।
2. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. विशेष शैक्षिक उद्देश्य की ही सूचना प्रदर्शित की जानी चाहिए।
4. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री को स्वच्छता, व्यवस्था व क्रम से लगाना चाहिए।
5. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री ऐसी हो कि विद्यार्थियों द्वारा अच्छी तरह देखी एवं समझी जा सके।
6. विद्यार्थियों की बनाई हुई संग्रहित सामग्री के प्रदर्शन को इसमें अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।
7. प्रदर्शित की हुई सामग्री को उपयुक्त शीर्षक देकर अलग–अलग बुलेटिन बोर्डों पर विभाजित कर देना चाहिए।
8. विद्यार्थियों को निर्देश देना चाहिए कि वे स्वयं किसी सामग्री का प्रदर्शन न करें व प्रदर्शित सामग्री को खराब न करें।
9. प्रदर्शित की हुई सामग्री को समय–समय पर बदलते रहना चाहिए।
10. रूचि बढ़ाने और ध्यान आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए नवीनतम् सूचनाओं और गतिविधियों का विवरण ही बुलेटिन बोर्ड पर दिया जाना चाहिए।

बुलेटिन बोर्ड के लाभ (Advantages of Bulletin Board)

बुलेटिनबोर्ड के विद्यालय में निम्नलिखित लाभ हैं:

1. **विद्यार्थियों की रूचि परिष्कृत करने में सहायक (Helpful in arousing the curiosity and interest in students)** – बुलेटिन बोर्ड पर लगे चित्रों को देखकर विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जिससे उनमें स्वयं कुछ करने की इच्छा पैदा होती है।

2. **प्रतिभा को आगे लाना (Helpful in polishing the talents)–** यह विद्यार्थियों की प्रतिभा का विकास करने में सहायक है।

3. **ज्ञान बढ़ाना (To increase the knowledge)–** यह विद्यार्थियों के ज्ञान एवं बोध स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक है।

4. **उपयुक्त वातावरण बनाया (Creates appropriate atmosphere)–** बुलेटिन बोर्ड कक्षा–कक्ष व विद्यालय में उपयुक्त वातावरण पैदा करता है।

5. **सुन्दर व आकर्षित सामग्री (Beautiful and attractive aid)–** विद्यार्थियों के प्रोत्साहन के लिए पुरस्कृत विद्यार्थियों के फोटो लगाकर व सुन्दर प्रदर्शित सामग्री द्वारा इसे आकर्षक बनाया जा सकता है।

6. **मौलिकता को मूर्त रूप देना (Provides originality)–** बुलेटिन बोर्ड के लिए विद्यार्थियों द्वारा बनाये गए चित्र अथवा लिखी गई कविता या लेख मौलिकता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं।

7. **विशेष विषयों के लिए लाभदायक (Useful for special subjects)–** कुछ विषय ऐसे होते हैं जिन्हें आसानी से कक्षा में नहीं लाया जा सकता, जैसे जनसंख्या वद्धि इत्यादि। बुलेटिन बोर्ड के द्वारा अध्यापक इन विषयों को विद्यार्थियों को सरलता से समझा सकता है।

8. **क्रमानुसार प्रदर्शन (Systematically arranged display)–** बुलेटिन बोर्ड पर ऐसे विचार जिनमें क्रम का महत्व हो, स्वाभाविकता से प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

9. **सामूहिक कार्य करने के अवसर प्रदान करना (Provides opportunity for group work)–** बुलेटिन बोर्ड की सामग्री को विद्यार्थी सामूहिक रूप से तैयार करते हैं जिससे सहयोग की भावना का विकास होता है।

10. **समय की बचत (Economy of Time)** बुलेटिन बोर्ड के माध्यम से विषय–वस्तु को शीघ्र समझाया जा सकता है जिससे समय की बचत होती है।

11. **रचनात्मक कार्य (Creative Work)** इससे विद्यार्थियों में रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

12. **सूचना प्रदान करने का उपयुक्त स्थान (Suitable place for the posting of announcements)–** बुलेटिन बोर्ड सूचनाएं, दत्तकार्य आदि को प्रदर्शित करने के उपयुक्त स्थान के रूप में कार्य करता है।

13. **स्थायी और प्रभावशाली ज्ञान प्रदान करना (Provides permanent and everlasting knowledge)** बुलेटिन बोर्ड द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान भली प्रकार से समझ में आने वाला होता है।

चित्र (Pictures)

चित्रात्मक साधनों में सबसे सुलभ और बहुप्रचलित साधन चित्रों का प्रयोग है। इन्हें सभी प्रकार के विषय और विषय–वस्तुओं की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। जिन चीजों को विद्यार्थी प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं कर सकते, चित्रों द्वारा उसे आसानी से समझा जा सकता है। एक बार देखना सौ बार सुनने से अधिक लाभदायक होता है। अध्यापक किसी क्षेत्र के बारे में कितना भी मौखिक वर्णन करता रहे पर बात नहीं बनती। यदि उस क्षेत्र से संबंधित चित्र दिखाया जाए तो विद्यार्थी अच्छे ढंग से सीख लेते हैं। इतिहास पढ़ाने में ऐतिहासिक हस्तियों जैसे अकबर, शिवाजी आदि को दिखाकर, उनकी वेषभूषा, व्यक्तित्व और कार्यों का चित्रण कर इतिहास का शिक्षण करने में बहुत सहायता मिल सकती है। एतिहासिक स्थलों व भवनों के चित्र दिखाकर उनसे संबंधित तथ्यों को अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। विज्ञान में विभिन्न पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़ों का ज्ञान, मानव शरीर की रचना एवं कार्य प्रणाली तथा ऐसी ही अनेक प्रकार की वैज्ञानिक जानकारी को ग्रहण करने में चित्रों से पूरा–पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

चित्र बनाने की तैयारी (Preparation of a Picture)

चित्र बनाने के लिए जन्मजात गुण व अभ्यास दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। "करत–करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान" कहावत चित्र बनाने वाले के साफ हाथ पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। चित्र बनाने के लिए कल्पना शक्ति का होना बहुत जरूरी है। चित्र फ्रीहैंड ड्राईंग व पेंटिग द्वारा बनाये जा सकते हैं। जिन विद्यार्थियों या अध्यापकों में प्रतिभा कम होती है वे ट्रेनिंग का सहारा लेते हैं। अधिकतर बी.एड. व जे.बी.टी. के छात्र समाचार पत्र, कलैण्डर या पत्रिका में से प्रकरण सम्बन्धी चित्रों को काटकर अलग ड्राईंग पेपर पर चिपका कर चित्र तैयार करते हैं। अध्यापक कई बार एपीडायस्कोप द्वारा छोटे–छोटे चित्रों, मानचित्रों, पोस्टरों तथा पुस्तक में छपे हुए चित्रों को कमरे में अंधेरा करके स्क्रीन पर बिना स्लाइड बनाए हुए भी बड़ा करके दिखा सकता है।

चित्रों को कहाँ से प्राप्त किया जाए? (From where to get pictures)

चित्रों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निम्न स्रोतों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. विभिन्न विषयों से सम्बन्धित बने हुए चित्र बाजार से खरीदे जा सकते हैं।
2. अखबार, कॉमिक्स, पत्र–पत्रिकाओं में से काटकर किसी गत्ते अथवा बोर्ड पर चिपकाकर इन्हें काम में लाया जा सकता है।
3. विभिन्न दश्य–श्रव्य पुस्तकालयों के सदस्य बनकर इन्हें प्रयोग में लाने के लिए उधार लिया जा सकता है।
4. विभिन्न मंत्रालयों, पर्यटन विभाग तथा विदेशी दूतावासों द्वारा जारी की गई प्रकाशन सामग्री में से इन्हें एकत्रित किया जा सकता है।
5. विद्यार्थियों की सहायता से इन्हें विद्यालय में बनाया जा सकता है।
6. कैमरे की सहायता से फोटोग्राफी के रूप में बहुत से चित्रों का संकलन किया जा सकता है। इन फोटोग्राफों को किसी गत्ते, प्लास्टिक, चमड़े तथा लकड़ी के बोर्ड आदि पर अच्छी तरह चिपकाकर या फ्रेम में जड़वाकर काम में लाया जा सकता है।

अच्छे चित्रों के लाभ (Advantages of Good Pictures)

अच्छे चित्रों के लाभ निम्नलिखित हैं–

1. **सस्ते तथा सुगमता से उपलब्ध (Cheap and easily available)** – चित्र प्रायः पदार्थों व नमूनों से सस्ते होते हैं तथा बाजार में आसानी से मिल सकते हैं इसलिए इनका उपयोग कक्षा में प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।
2. **विवरण (Details)** – स्थिर चित्रों से विद्यार्थी अच्छे ढंग से विवरण प्राप्त कर सकते हैं।
3. **स्पष्टता व रोचकता (Clarity)** – बच्चों को स्पष्ट व रोचक ज्ञान देने में चित्रों का विशेष महत्व है।
4. **वास्तविकता का ज्ञान देने में सहायक (Helpful in giving knowledge of reality)** – चित्रों का प्रयोग बालकों को वास्तविकता का ज्ञान देने व कल्पना शक्ति को बढ़ाने में सहायता कता है।
5. **विचार शक्ति बढ़ाना (Increasing the thinking power)** – चित्रों द्वारा विद्यार्थियों के विचारों में शुद्धता, स्पष्टता और संगठन करने की शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।

अच्छे चित्रों के गुण व प्रयोग (Quality and uses of Good Pictures)

1. **उद्देश्य (Objective)** – चित्रों का दश्य साधन के रूप में उपयोग शिक्षण सम्बन्धी विशेष उद्देश्यों को लेकर ही करना चाहिए।

2. **आकार (Size)** – चित्रों का आकार इतना हो कि पूर्ण कक्षा उसे स्पष्ट रूप से देख सके।

3. **स्पष्टता (Clarity)** – चित्रों का रंग वैसा ही हो जैसा कि वास्तविक पदार्थों का। चित्रों का स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है।

4. **प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान (Appropriate place for display)** – चित्र कक्षा में उपयुक्त स्थान पर ही टांगे जाएं जहां से प्रत्येक छात्र उसे देख सके।

5. **समानुपात (Proper Proportion)** – जिस किसी वस्तु या पदार्थ का चित्र प्रदर्शित करना है, वह उसके वास्तविक अनुपात के अनुसार चित्रित किया जाना चाहिए।

6. **प्रयोग उचित समय तथा स्थान पर (Use at appropriate time and place)** चित्रों का प्रयोग उचित समय व स्थान पर किया जाना चाहिए।

7. **सार्थकता (Reality)** – चित्रों में सार्थकता होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी वास्तविक पदार्थों के रूप को भली–भांति समझ सकें।

8. **शुद्धता (Exactness)** – चित्र शुद्ध होने चाहिए ताकि विद्यार्थियों पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ सके।

9. **आयु के अनुसार (According to age)** – चित्र कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की आयु व स्तर के अनुसार होना चाहिए।

10. **चित्र में अधिक भीड़ नहीं होनी चाहिए (Picture should not have a jumble of lot many facts)–** चित्रों में मुख्य–मुख्य बातें ही होनी चाहिए ताकि छात्र स्पष्ट रूप से चित्र को समझ सकें।

11. **सौन्दर्यपूर्ण (Aesthetic)–** चित्र में छात्रों की अवस्था के अनुसार चटकीले अथवा हल्के रंग प्रयोग में लाने चाहिए।

12. **अर्थपूर्ण चित्र (Meaningful Pictures)–** चित्र इस प्रकार के हों कि शिक्षक को व्याख्या करने के लिए अधिक न कहना पड़े, सिर्फ मुख्य बातें ही बतानी पड़ें।

13. **रचनात्मक प्रवत्ति (Creative nature)** चित्रों के द्वारा विद्यार्थियों में रचनात्मक प्रवत्ति का विकास करना चाहिए।

14. **स्पष्ट ज्ञान वाली वस्तुओं का चित्र न दिखाना (Useless to show picture of things of whichchildren have clear knowledge)–** जिन वस्तुओं का विद्यार्थियों को पूर्ण ज्ञान है उनका चित्र नहीं दिखाना चाहिए।

15. **आवश्यकतानुसार प्रयोग करना (Used only when needed)** – जब आवश्यकता हो तथा जितने समय के लिए आवश्यकता हो, चित्र उसी समय दिखाया जाना चाहिए।

16. **संग्रह (Collection)–** चित्रों को जहां तक हो सके, अध्यापक को अपनी देख–रेख में छात्रों से ही संग्रहित कराने या बनवाने का प्रयत्न करना चाहिए।

17. **छाटे बच्चों के लिए रंगीन चित्र (Coloured pictures for younger children)** – बच्चे रंगीन चित्र अधिक पसंद करते हैं, इसलिए बच्चों के लिए रंगीन चित्र बनाने चाहिए।

18. **शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग (Integral part of educative process)–** चित्र पाठ का एक अंग होना चाहिए। ऐसा न हो कि विद्यार्थियों को ये लगे कि चित्र उन पर थोपे गये हैं।

19. **चयन (Selection)** चित्रों के उचित चयन का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। तभी विद्यार्थी उनसे उचित शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

20. **विश्लेषण शक्ति का विकास (Development of the power of critical judgment)–** चित्र इस प्रकार के बनाए जाने चाहिए कि विद्यार्थियों में विश्लेषण शक्ति का विकास हो और उनकी कल्पना शक्ति व क्रियाशीलता को बढ़ाएं।

चार्ट (Chart)

चित्रों या ग्राफों के रूप में जो कुछ अलग–अलग प्रदर्शित किया जा सकता है उस सभी को सुविधापूर्वक अलग–अलग या इकट्ठे रूप में प्रदर्शित करने का कार्य चार्टों द्वारा अच्छी तरह किया जा सकता है। डॉ. डेल के अनुसार "चार्ट एक दश्य सामग्री चिन्ह है जो विषय–वस्तु के सार, तुलना या किसी दूसरी क्रिया की व्याख्या करने में सहायता देता है।"

चार्टो का महत्व (Importance of Charts) कक्षा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर चाहे वह पूर्व ज्ञान परीक्षा या प्रस्तावना से संबंधित हो या विषय–वस्तु के क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण, पुनरावत्ति, अभ्यास अथवा गहकार्य प्रदान करने से, चार्ट सभी स्तर पर एक अध्यापक को उसके कार्य में यथेष्ट सहायता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि सभी विषयों से सम्बन्धित पाठ्य सामग्री के शिक्षण–अधिगम कार्यों में चार्टो से पूरी सहायता लेने का प्रयास किया जाता है। तथ्यों या विचारों को एक क्रमबद्ध लड़ी में प्रस्तुत करने के कार्य में चार्ट, फोटोग्राफ और आलेख से भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

चार्टो के प्रकार (Types of Charts)

शैक्षिक कार्यों में बहुधा निम्न प्रकार के चार्टो का प्रयोग किया जाता है–

(i) **वक्ष की आकृति वाले चार्ट (Tree Chart)** – इन चार्टो में बनी आकृति वक्ष जैसी होती है। वक्ष का मूल या मुख्य तना जहां किसी संगठन या विकास के उद्‌भव को प्रकट करता है वहीं शाखायें, तने या पत्तियों द्वारा उनके बहुआयामी विकास को प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) **तालिका चार्ट (Table Chart)–** इन चार्टो में तथ्य एवं सूचनाओं को तालिका के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। तालिका चार्ट में कई प्रकार के विभाग बना कर विचारों, घटनाओं तथा विवरणों को क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है। विद्यालय समय सारणी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

(iii) **समय चार्ट (Time Chart)–** घटनाओं के कालक्रम को बताने के लिए इन चार्टो को काम में लाया जाता है। किसी भी राष्ट्र अथवा प्रक्रिया के विकास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं को इनमें कालक्रम के आधार पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। घटना चक्र या विकास क्रम का कौन सा दौर गुजरा, इसकी जानकारी सुगमता से इन चार्टो द्वारा प्राप्त होती है।

(iv) **प्रवाह चार्ट (Flow Chart)–** इन चार्टो द्वारा किसी भी आन्दोलन प्रक्रिया, विचारधारा संगठन आदि के क्रमिक विकास और प्रबन्ध को भली–भांति दिखाया जा सकता है। इसे दिखाने के लिए प्रायः इनमें रेखाओं, तीरों, आयतों आदि का प्रयोग किया जाता है।

(v) **समस्या चार्ट (Issue Charts)–** इन चार्टो का प्रयोग महत्वपूर्ण विषयों अथवा समस्याओं पर व्यक्ति विशेष या संगठनों के विचारों की तुलनात्मक जानकारी प्रदान करने के लिए किया जाता है।

(vi) **वत्ताकार चार्ट (Circle Charts)–** इन चार्टो में वत्त को आवश्यकतानुसार भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक वत्त किसी प्रतिशत को व्यक्त करता है।

(vii) **चित्रात्मक चार्ट (Pictorial Charts)–** इन चार्टो में पढ़ाई जाने वाली विषय–वस्तु को ग्राफ, रेखाकृत्तियों, शब्दों तथा परम्परागत चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जाता है।

चार्ट का प्रभावपूर्ण उपयोग कैसे करें (How to use Charts as an effective Aid)

1. **शैक्षिक उद्देश्य (Educational Aim)–** चार्टो के द्वारा निश्चित शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

2. **चार्ट के निर्माण में विद्यार्थियों का सहयोग (Participation of students in the preparation of charts)** अध्यापक को चार्टो का निर्माण अपनी देख–रेख में विद्यार्थियों से करवाना चाहिए।

3. **प्रभावपूर्ण ढंग (Effective Method)–** जिस विचार, तथ्य, सूचना अथवा प्रक्रिया को चार्ट द्वारा प्रदर्शित करना हो

उसको चार्ट पर दश्य सामग्री द्वारा इस प्रकार दिखाया जाना चाहिए कि उससे प्रस्तुत विषय को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सके।

4. **विषय वस्तु (Subject Matter)–** चार्ट के लिए विषय–वस्तु विद्यार्थियों के स्तर के उपयुक्त होनी चाहिए।

5. **एक उद्देश्य (Single Aim)** एक चार्ट का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिए जिससे विद्यार्थी आसानी से समझ सकें।

6. **स्पष्टता करना (clarity)–** जिस उद्देश्य से चार्ट को प्रदर्शित किया जा रहा है, उसी को स्पष्ट करने से संबंधित सामग्री होनी चाहिए।

7. **आकार (Size)–** चार्ट का आकार उपयुक्त होना चाहिए जिससे कि उसका सम्पूर्ण भाग विद्यार्थियों को अच्छी तरह दिखाई दे सके।

8. **आवश्यकतानुसार प्रयोग (To be used when required)–** कक्षा में चार्ट की जिस समय आवश्यकता हो उसका उसी समय प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

9. **रंग (Colour)–** चार्ट में दश्य सामग्री को उत्तम बनाने के लिए रंगों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

10. **मजबूत (Strong enough)–** चार्ट मोटे कागज पर बनाना चाहिए ताकि वे जल्दी से फट न जाए।

पोस्टर (Poster)

पोस्टरों में चित्रात्मक अभिव्यक्ति चित्रों की तरह बिल्कुल स्पष्ट व प्रत्यक्ष ढंग से नहीं होती बल्कि एक खास अंदाज में अप्रत्यक्ष तथा संकेतात्मक रूप में ही जाती है। पोस्टर द्वारा किसी एक विचार को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर सशक्त संवेगात्मक अपील की जाती है कि जो भी विशेष संदेश या खास बात दर्शकों को प्रेषित करनी होती है, वह उनके दिल और दिमाग पर पूरी तरह छा जाती है। पोस्टर कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों को सीखने की दिशा में अभिप्रेरित करते हैं। किसी भी पाठ को प्रस्तावित करते समय उसके प्रति आकर्षित होकर विद्यार्थियों द्वारा उसे पढ़ने की आवश्यकता पोस्टरों द्वरा अच्छी तरह अनुभव कराई जा सकती है। पाठ्य वस्तु का दूसरे विषयों में समन्वय करने के उद्देश्य से भी अध्यापक पोस्टरों की मदद ले सकता है। पोस्टरों द्वारा विद्यार्थियों की बुरी आदतों को समाप्त कर अच्छी आदतें विकसित करने और अच्छे व्यवहार को प्रोत्साहित करने में भी सहायता ली जा सकती है।

पोस्टर प्राप्त करने के स्त्रोत (Sources of Getting posters)

पोस्टर प्राप्त करने के मुख्य दो स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

1. **बाहरी स्त्रोत (External sources)–** समुदाय व समाज में प्रचार और विज्ञापन के संसार से जो कुछ भी उपयुक्त संकलन हो सके, उसे निजी अनुभव का उपयोग करके, अध्यापक को संग्रहित करना चाहिए।

2. **आंतरिक स्त्रोत (Internal Sources)–** विद्यालय में विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्तियों का सदुपयोग पोस्टर तैयार करने में किया जा सकता है।

पोस्टर का निर्माण (Preparation of Poster)

पोस्टर के निर्माण के लिए रेशमी पटल पद्धति का प्रयोग किया जाता है। पोस्टरों के डुपलिकेशन के लिए यह एक सरल प्रक्रिया है। सागवान की लकड़ी से पोस्टर का फ्रेम बनाया जा सकता है। लकड़ी के हत्थे में रबड़ी लगी होती है। जिसकी सहायता से रोशनाई पटल के पार कर दी जाती है। स्टैन्सिल को छापने वाले फ्रेम को कस कर तने हुए रेशम के पटल पर चिपका दिया जाता है। इसके पश्चात् स्टैंसिल के पार कागज के तख्तों पर स्याही पहुंचाई जाती है। यदि एक पोस्टर में एक से अधिक रंग हैं तो प्रत्येक रंग का मुद्रण अलग–अलग ढंग से किया जाता है।

पोस्टरों का प्रयोग कैसे किया जाए (How to use posters)

पोस्टरों के प्रयोग से संबंधित कुछ विशेष बातें निम्नलिखित हैः

1. **शैक्षिक महत्व (Educational Importance)** पोस्टरों की शैक्षिक उपयोगिता को महत्व देते हुए ऐसे पोस्टरों का निर्माण करना चाहिए जिनसे विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

2. **चयन (Selection)** उन्हीं पोस्टरों का चयन किया जाना चाहिए जिन्हें विद्यार्थी अच्छे ढंग से समझ सकें तथा जिनके द्वारा अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की भूमिका अच्छी तरह से निभाई जा सके।

3. **स्पष्टता (Clarity)** पोस्टर इस प्रकार के हों कि वे विचार संप्रेषण तथा संवेगात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से कर सकें।

मॉडल (Model)

मॉडल से तात्पर्य किसी वस्तु का ऐसा प्रतिरूप है जिसे देखकर उस वस्तु के बारे में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त की जा सके। जब वास्तविक वस्तुएं उपलब्ध कराना कठिन या असम्भव हो (जैसे मानव की आंख की संरचना, ज्वालामुखी इत्यादि), तब उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से मॉडल द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है।

शैक्षिक महत्व (Educational Importance)

शैक्षिक उपयोगिता की दष्टि से मॉडल के प्रयोग के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **सजनात्मक शक्ति का विकास (Development of creative power)** मॉडल विद्यार्थियों की सजनात्मक शक्ति का विकास करने में सहायक होते हैं। मॉडल को देखकर उनके दिमाग में उस वस्तु की स्पष्ट आकृति बनजाती है।

2. **अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना (Makes the learning process effective)** मॉडल अधिगम प्रक्रिया को रोचक तथा सजीव बनाते हैं। फलस्वरूप विद्यार्थियों में पाठ के प्रति रूचि जागत होती है।

3. **जहाँ विकल्प संभव नहीं है (Where alternate is not feasible)** विभिन्न विषयों में त्रिआयामी (Three dimensional) पदार्थो के बारे में ज्ञान प्रदान करने के लिए मॉडल का सहारा लेना पड़ता है। जैसे आंख की बनावट व कार्य प्रणाली का अध्ययन करना हो तो उपयुक्त मॉडल की सहायता ली जा सकती है।

4. **जहाँ वास्तविक पदार्थ बहुत छोटा या बड़ा हो (Where the actual object is either too big or too small)** मॉडल बड़ी वस्तुओं को छोटे रूप में व अत्यधिक छोटी वस्तुओं को बड़े रूप में दर्शाता है, जिससे समझने में आसानी रहती है। जैसे पथ्वी के लिए छोटा प्रतिरूप ग्लोब का व अमीबा जैसे एक कोशकीय जीव के लिए बड़ा प्रतिरूप, मॉडल के रूप में लाया जाता है।

5. **कार्यकारी मॉडल (Working Models)** – इन मॉडलों से वस्तुओं की प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए हमें बहुत सहायता मिलती है। इन मॉडलों में वस्तुओं के भागों को अलग–अलग खोलकर व जोड़कर दिखाया जा सकता है। भौतिक विज्ञान में परमाणु, नाभिकीय ऊर्जा सयंत्र आदि के कार्यशील भागों की रचना और कार्यप्रणाली को इस प्रकार के मॉडलों की सहायता से अच्छी तरह से समझाया जा सकता है।

स्लाईड (Slides)

स्लाइड प्रक्षेपित दश्य सामग्री के अंतर्गत आती है। इन्हें एपीडायस्कोप, मैजिक लैन्टर्न तथा प्रोज्क्टरों आदि दश्य उपकरणों की सहायता से पर्दे पर प्रक्षेपित कर कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त किया जा सकता है। स्लाईड किसी पारदर्शी तत्व जैसे घिसा हुआ

शीशा या प्लास्टिक सेल्यूलोज, ऐसिटेट फिल्म तथा सिल्होइट आदि का ऐसा भाग है जो एक विशिष्ट आकार वाला होता है, जिस पर तस्वीरें या रेखाचित्र होते हैं। इन्हें प्रेषित प्रकाश के माध्यम से अच्छी प्रकार से देखा जा सकता है तथा प्रोजैक्टर आदि प्रक्षेपित उपकरणों द्वारा परदे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है।

शैक्षिक महत्व (Educational Importance)

स्लाइड्स अपने में निहित विशेष गुणों के कारण शिक्षण प्रक्रिया में निम्नलिखित रूप से प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है–

1. ये पाठ की प्रस्तावना और प्रस्तुतीकरण में सहायक है।
2. ये विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने में सहायक है।
3. पढ़ाई गई सामग्री में से विद्यार्थी कितना समझ सके, इसकी जांच में सहायक सिद्ध होती है।
4. ये रूचि उत्पन्न करने में सहायक है
5. ये विषयवस्तु को सरल, आकर्षक व स्पष्ट बनाती है।
6. पढ़ाई गई सामग्री के पुनः प्रस्तुततीकरण व अभ्यास (Revision) में सहायक हैं।
7. कक्षा के वातावरण को सरस, क्रियाशील बनाने में सहयोग देती है।
8. ये नीरसता को दूर करती है व रचनात्मक अनुशासन पैदा होता है।
9. ये एक साथ पूरी कक्षा के विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन में सहायक होती है।
10. ये छात्रों को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय साझीदार बनाने में सहायक होती है।

स्लाईड्स के प्राप्ति स्त्रोत (Sources for getting Slides)

1. व्यावसायिक फर्मों से खरीदी जा सकती है।
2. अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों, N.C.E.R.T. और दश्य श्रव्य पुस्तकालयों से उधार ली जा सकती है।
3. अध्यापकों की देख–रेख में विद्यार्थियों की सहायता से निर्मित की जा सकती हैं।

आडियो तथा विडियो टेप (Audio and Video Tapes)

टेप आधुनिक युग की दश्य–श्रव्य सहायक सामग्री के रूप में उभर कर सामने आई हैं। टेप दो प्रकार की होती हैं–

1. **आडियो टेप (Audio Tape)** पूर्व प्रसारित रेडियो प्रसारण तथा कोई विशेष वार्ता इत्यादि को ज्यों की त्यों ध्वनि उपकरण में भरकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किया जा सकता है। यह ध्वनि उपकरण आडियो टेप है। आडियो टेप से रिकार्ड की गई ध्वनि को सुनने में टेपरिकार्डर प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है।

   ओडियो रिकार्डिंग करते समय समय सावघानियाँ (Precautions to be taken while Audio Recording) – टेपरिकॉर्डर में ध्वनि रिकार्ड करते समय निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिए–

   1. टेपरिकॉर्डर को चालू करने से संबंधित जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए ताकि वह सम्बन्धित बटनों का उपयोग सरलता से कर सकें।
   2. जैसे ही वक्ता बोलना आरम्भ करें, टेपरिकार्डर पर अंकित रिकार्ड बटन को एकदम से दबा देना चाहिए ताकि ध्वनि सही रिकार्ड हो सके।

3. रिकॉर्डिंग करते समय ध्यान रखा जाना चाहिए कि वक्त की आवाज के सिवाय कोई और ध्वनि न हो।

4. ध्वनि नियंत्रक पेच का उपयोग करते हुए धीमी आवाज को भी स्पष्ट रूप से रिकॉर्ड किया जाना चाहिए।

2. **विडियो टेप (Video Tape)** विडियो टेप के लिए विडियो कैसेट रिकॉर्डर की मदद लेनी पड़ती है। इसमें सभी संकेत चिन्ह जैसे STOP, FORWARD, RECORD, REWIND आदि दिये जाते हैं। इसमें न केवल देखा जा सकता है बल्कि सुना भी जा सकता है। इस प्रकार विडियो टेप हमें दश्य–श्रव्य फिल्मों को टेलीविजन पर एक साथ देखने व सुनने की सुविधा प्रदान करती है। इससे शिक्षण प्रक्रिया रोचक व प्रभावशाली हो जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए–2

(i) बुलेटिन बोर्ड का निर्माण किस प्रकार किया जाता है?

(ii) चार्ट बनाते समय क्या सावधानियां रखनी चाहिएं?

2.8 सारांश

विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसे पढ़ कर या सुन कर समझना कठिन है इसलिए भौतिक विज्ञान में सहायक सामग्री का प्रयोग आवश्यक है। सहायक सामग्री विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा अधिगम करने, पाठ्यवस्तु को स्पष्ट एवं रुचिकर बनाने तथा अधिगम को प्रभावशाली बनाने में सहायक होती है। सहायक सामग्री तैयार करने के लिए कागज, पेन, रबर, पैंसिल, स्केल, कैंची, वास्तविक वस्तुओं, नमूनों आदि की आवश्यकता होती है। सहायक सामग्री विभिन्न प्रकार की होती है जैसे–दश्य साधन, श्रव्य साधन, दश्य श्रव्य साधन, क्रियात्मक साधन, हार्डवेयर, साफ्टवेयर आदि। सहायक सामग्री तैयार करते समय अध्यापक को विद्यार्थियों की रुचि, आयु, मानसिक स्तर, उपलब्ध संसाधनों आदि को ध्यान में रखना चाहिए। सहायक सामग्री शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए। अध्यापक स्वयं सहायक सामग्री का निर्माण कर सकता है और विद्यार्थियों से भी उसी प्रकार की सामग्री तैयार करवा सकता है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक, कलात्मक रुचियों व योग्यताओं का विकास होता है।

सारांश में हम कह सकते हैं कि सहायक सामग्री के निर्माण एवं उपयोग द्वारा अध्यापक विषय वस्तु को सरल, स्पष्ट, सरस, रुचिकर, स्वाभाविक तथा मनोरंजक रूप में प्रस्तुत कर सकता है और विद्यार्थियों के अधिगम को प्रभावशाली बना सकता है।

मॉडल उत्तर

1. (i) चार्ट पेपर या ड्राइंग शीट, पैंसिल, रबर, स्केल, कैंची, रंग, ब्रुश, स्केच पैन, गत्ता, लकड़ी, थर्मोकोल, रूई, फेविकोल आदि।

   (ii) श्रव्य साधन, दश्य साधन, दश्य श्रव्य साधन, क्रियात्मक साधन

2. (i) (ii) कपया 3.7 में देखें

2.9 मुख्य शब्द

सहायक सामग्री–वह सामग्री या साधन जिनका उपयोग अध्यापक शिक्षण प्रक्रिया के दौरान विषय वस्तु को स्पष्ट, रोचक एवं सुबोध बनाने के लिए करता है।

दश्य साधन– जिन्हें केवल देखा जा सके।

श्रव्य साधन—जिनके द्वारा केवल सुना जा सके।

दश्य-श्रव्य साधन— वे साधन जो हमारी देखने एवं सुनने की ज्ञानेन्द्रियों को एक साथ प्रभावित करें।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi.

कोहली, विजय कुमार 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं', विवेक पब्लिशर्ज, अमतसर।

मंगल, एस०के० 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

इकाई-III (a)

अध्याय-3: प्रदर्शन प्रयोगों का विकास (Development of Demonstration Experiments)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

– प्रदर्शन–प्रयोगों के विकासका वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रदर्शन–प्रयोगों का विकास

3.3 सारांश

मॉडल उत्तर

3.4 शब्दावली

3.5 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

प्रदर्शन–प्रयोगों से पूर्व अध्यापक कक्षा में विषय से संबंधित सैद्धान्तिक (Theoretical) ज्ञान का विवेचन करता है। इसके पश्चात् प्रदर्शन–प्रयोगों की सहायता से सैद्धान्तिक ज्ञान का सत्यापन किया जाता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को प्रयोग करके दिखाता है और विद्यार्थी प्रयोग–प्रदर्शन का निरीक्षण करते हुए ज्ञान प्राप्त करते हैं। अध्यापक प्रयोग–प्रदर्शन में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी ले सकता है। विद्यार्थी अपनी शंकायें भी अध्यापक के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं और अध्यापक उनकी शंकाओं का समाधान करता है।

3.2 प्रदर्शन-प्रयोगों का विकास (Development of Demonstration Experiments)

एक प्रदर्शन प्रयोग का प्रभावशाली ढंग से विकास करने के लिए अध्यापक को उसकी पर्याप्त रूप से तैयारी कर लेनी चाहिए और कक्षा परिस्थितियों के अनुसार उस प्रयोग की पहले रिहर्सल (Rehearsal) कर लेनी चाहिए। एक सफल प्रदर्शन–प्रयोग के लिए अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

1. **उचित व्यवस्था (Appropriate Arrangement)**

   प्रदर्शन प्रयोग से पूर्व की अध्यापक को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि विद्यार्थियों को प्रत्येक उपकरण एवं प्रयोग अच्छी तरह दिखाई दे। यदि लैक्चर–गैलरी की व्यवस्था हो तो इस दिशा में कठिनाई कम होगी। परन्तु लैक्चर गैलरी न होने पर भी विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया को उचित रूप से देख सकें, इसके लिए निम्नलिखित साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए–

I. **मेज का उपयोग (Use of Table)** अध्यापक किसी मेज अथवा आगे बैठने वाले विद्यार्थी की मेज पर प्रयोग कर सकताहै जिसे विद्यार्थी मेज के चारों ओर खड़े होकर देख सकते हैं। जिन कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम है, उन कक्षाओं में यह विधि उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

II. **दपर्ण का उपयोग (Use of Mirror)–**अध्यापक की मेज के उचित कोण पर एक दर्पण लगाना चाहिए जिसमें पड़ती हुई परछाई से सभी विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया को स्पष्ट रूप से देख सकें। दर्पण के उपयोग से पीछे बैठे हुए विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए ही प्रयोग को भली भांति देख सकते हैं। बड़ी कक्षाओं में विशेष रूप से जहां, लैक्चर गैलरी नहीं होती, दर्पण का उपयोग प्रयोग–प्रदर्शन को प्रभावशाली बनाने में सहयता करता है।

III. **पर्याप्त प्रकाश (Sufficient Sunlight)–**अध्यापक को इस बात की व्यवस्था कर लेनी चाहिए कि प्रदर्शन मेज पर पर्याप्त प्रकाश हो। यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम प्रकाश अथवा अतिरिक्त प्रकाश सामगी का प्रयोग करना चाहिए। प्रदर्शन मेज की पष्ठ भूमि का भी ध्यान रखना चाहिए। उचित पष्ठभूमि के अभाव में वस्तुएं स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती उदाहरण के लिए श्यामपट्ट के आगे काली चीज़े नहीं दिखानी चाहिएं।

VI. **प्रदर्शन उपकरण (Demonstration Equipments)–**अध्यापक को प्रयत्न करना चाहिए कि प्रदर्शन उपकरण कक्षा के आकार एवं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं क अनुरूप उचित आकार के हों जिससे विद्यार्थी उन्हें स्पष्ट रूप से देख सकें जैसे–छोटे बीकर, छोटे मापांकित सिलैण्डर के स्थान पर बड़ा बीकर, बड़ा सिलैण्डर आदि का उपयोग करना। परन्तु कुछ उपकरणों को बड़े आकार में दिखाना संभव नहीं होता जैसे–आपेक्षिक घनत्व बोतल (Specific Gravity Bottle), कैपीलरी ट्यूब (Capillarytube) आदि। ऐसी स्थिति में अध्यापक विद्यार्थियों को प्रदर्शन मेज़ के निकट बुलाकर अथवा स्वयं विद्यार्थियों के बीच में जा कर विद्यार्थियों को उन्हें दिखा सकता है।

V. **उपकरण क्रम (Arrangement of Equipments)–**उपकरण प्रदर्शन मेज़ पर उचित क्रम में व्यवस्थित होने चाहिएं। जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाना है, उन्हें मेज़ के बायीं ओर उसी क्रम में रखा जाना चाहिए, जिस क्रम में उन्हें प्रदर्शित किया जाना हैं। किसी उपकरण को प्रदर्शित अथवा उपयोग करने के पश्चात् उसे मेज़ पर दायीं ओर रख देना चाहिए। प्रदर्शन मेज़ पर उपकरणों का ढेर विद्यार्थियों को उलझन में डाल सकता है अतः अनावश्यक उपकरणों को प्रदर्शन मेज़ पर नहीं रखना चाहिए। केवल पाठ से सम्बन्धित उपकरण ही निश्चित क्रम में प्रदर्शन मेज़ पर रखे जाने चाहिए।

2. **लक्ष्यों व उद्देश्यों का निर्धारण (Stipulation of Aims and Objectives)–**अध्यापक को इस बात का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि प्रदर्शन किस प्रयोजन से किया जा रहा है। अध्यापक को प्रदर्शन के लक्ष्यों और प्राप्य उद्देश्यों से अच्छी तरह अवगत होना चाहिए। इन उद्देश्यों का निर्धारण अध्यापक को कक्षा में आने से पूर्व ही कर लेना चाहिए।

3. **प्रदर्शन का पूर्व अभ्यास (Pre-rehersal of Demonstration)–**प्रदर्शन को सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए प्रदर्शन–प्रयोग को पहले से ही कर के देख लेना चाहिए। प्रदर्शन के दौरान विद्यार्थियों को सबसे अधिक निराशा तब होती है जब उन्हें अध्यापक से यह सुनना पड़ता है कि 'इसे ऐसा होना था परन्तु यह हो नहीं सका'। इससे समय एवं शक्ति का अपव्यय तो होता ही है, अध्यापक अपने विद्यार्थियों का विश्वास भी खो सकता है। इस परिस्थिति में उपकरणों का अच्छा न होना, वस्तुएं शुद्ध न मिलना आदि इस प्रकार के बहाने भी अध्यापक द्वारा बनाए जाएं तो उनका कोई महत्व नहीं होता। ऐसी प्रत्येक परिस्थिति अध्यापक को अपने बुद्धि कौशल का प्रयोग करने का अवसर प्रदान करती है। यह आवश्यक है कि अध्यापक प्रदर्शन से पूर्व उपकरणों तथा सामग्री की जांच कर ले।

प्रदर्शन का पूर्व अभ्यास भी अत्यधिक आवश्यक है। इससे अध्यापक में आत्मविश्वास विकसित होता है और यह प्रदर्शन प्रयोग को सफलतापूर्वक कर सकता है। अगर कक्षा में अचानक ही किसी कारणवश किसी प्रयोग से सम्बन्धित उपकरण में टूट फूट या कोई अन्य खराबी उत्पन्न हो जाए और प्रदर्शन करना सभव न हो तो अध्यापक को संयम एवं धैर्य रखना चाहिए। ऐसी अवस्था में अध्यापक को प्रयोग की असफलता को एक समस्या के रूप में विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए–ऐसा क्यों हुआ? प्रयोग के दौरान क्या सावधानियां रखनी आवश्यक थीं? आदि। इसके पश्चात् विद्यार्थियों को वास्तविकता से परिचित करवाकर प्रयोग की पुनरावत्ति करनी चाहिए।

4. **विषय वस्तु से सम्बद्धता (Content-Relatedness)–**अध्यापक को विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में दिए गए प्रकरणों से संबंधित प्रयोग–प्रदर्शनों का आयोजन करना चाहिए। जो प्रकरण विद्यार्थियों को पढ़ाए जा रहे हों, प्रदर्शन उनसे संबंधित क्रम में होना चाहिए।

5. **विद्यार्थी-केन्द्रिता (Student-Centeredness)–**जिन प्रयोगों अथवा वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाए वे विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होने चाहिए। अध्यापक को यथासंभव प्रयत्न करना चाहिए कि विद्यार्थियों के परिवेश में उपस्थित वस्तुओं से संबंधित प्रयोग तथा सामग्री ही प्रदर्शन के लिए उपयोग की जाए।

   अध्यापक को प्रदर्शन में विद्यार्थियों की रुचि जागत करनी चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि प्रदर्शन के अंत तक उनकी रुचि बनी रहे। अध्यापक का प्रदर्शन करने का ढंग ऐसा होना चाहिए जैसे जादूगर अपना जादू दिखा रहा हो। उसे विभिन्न उद्दीपकों, सहायक सामग्री आदि का प्रयोग करके प्रदर्शन को रोचक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। विद्यार्थियों को निष्क्रिय मूक श्रोता न बना कर प्रदर्शन में सहभागी बनने का अवसर दिया जाना चाहिए जिससे वे प्रदर्शन में पूर्ण रुचि ले सकें और उनमें प्रयोग सम्बन्धी कार्यकुशलता भी उत्पन्न हो सके।

6. **सकारात्मक दष्टिकोण (Positive Attitude)–**प्रदर्शन–प्रयोग की सफलता के लिए अध्यापक का दष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिएं अध्यापक को विद्यार्थियों में अन्वेषणात्मक प्रवत्तियों एवं उचित दष्टिकोण का विकास करना चाहिए। प्रयोग के पश्चात् परिणाम विद्यार्थियों द्वारा विकसित करने चाहिए। प्रदर्शन करते समय पहले नियम या सिद्धान्त बना कर प्रयोग करने का विद्यार्थियों पर उचित प्रभाव नहीं पड़ता। अध्यापक को प्रयोग–प्रदर्शन के लिए आगमन–निगमन विधि का उपयोग करना चाहिए अर्थात् पहले उदाहरण, फिर प्रयोग या प्रदर्शन करके नियम प्रस्तुत करना चाहिए और उसके पश्चात् अन्य उदाहरण विद्यार्थियों से पूछे जाने चाहिएं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रदर्शन–प्रयोग से संबंधित मुख्य बिन्दुओं की सूची बनाइये।

3.3 सारांश

विज्ञान एक व्यावहारिक विषय है। इस विषय में विद्यार्थियों को प्रयोग प्रदर्शन द्वारा अधिगम करवाना आवश्यक है। प्रदर्शन प्रयोग से पूर्व अध्यापक विद्यार्थियों को विषय से संबंधित सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करता है। उसके साथ ही वह उस विषय/वस्तु/नियम आदि को प्रदर्शित करके उसकी रचना एवं कार्य प्रणाली का वास्तविक रूप में ज्ञान कराता है। विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठ कर विभिन्न उपकरणों, क्रियाओं और प्रयोगों को देखते हैं। प्रदर्शन प्रयोगों के विकास के लिए आवश्यक को विभिन्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए। जैसे–प्रदर्शन कक्ष एवं उपकरणों कीउचित व्यवस्था, विद्यार्थी केन्द्रिता, पर्याप्त प्रकाश, लक्ष्यों व उद्देश्यों का ज्ञान, सकारात्मक दष्टिकोण एवं प्रदर्शन–प्रयोग का अभ्यास आदि।

अध्यापक को प्रदर्शन–प्रयोग में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेनी चाहिए जिससे वे पाठ में सक्रिय रहें।

मॉडल उत्तर

1. प्रदर्शन प्रयोग के विकास के लिए अध्यापक को निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

   उचित व्यवस्था, लक्ष्यों व उद्देश्यों का ज्ञान, प्रदर्शन का पूर्व अभ्यास, विषय–वस्तु से सम्बद्धता, विद्यार्थी केन्द्रिता तथा सकारात्मक दष्टिकोण।

3.4 मुख्य शब्द

प्रदर्शन–अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष प्रयोग करके दिखाना।

3.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi

Soni, Anju 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludhiana

मंगल, एस०के० 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली

इकाई-III (a)

अध्याय-4: पाठ्य सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- विज्ञान क्लबों का वर्णन कर सकें।
- विज्ञान मेले का वर्णन कर सकें।
- वैज्ञानिक रुचियों की व्याख्या कर सकें।
- विज्ञान भ्रमण के आयोजन का वर्णन कर सकें।

सरंचना:

4.1 प्रस्तावना
4.2 विज्ञान क्लब
4.3 विज्ञान मेले
4.4 वैज्ञानिक रुचियां
4.5 विज्ञान भ्रमण
4.6 सारांश
मॉडल उत्तर
4.7 मुख्य शब्द
4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

विद्यालय में विद्यार्थियों को दिया जाने वाला पुस्तकीय ज्ञान पाठ्यक्रम का मुख्य भाग होता है। इस पाठ्यक्रम के साथ जो भी सहायक क्रियाएं विद्यालय में विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाई जाती हैं, उन्हें पाठ्य–सहगामी क्रियाएं कहा जाता है। पाठ्य–सहगामी क्रियाए विज्ञान शिक्षा की रीढ़ की हड्डी के समान हैं। इनके बिना पुस्तकों से प्राप्त शिक्षा को अधूरा समझा जाता है। विभिन्न पाठ्य–सहगामी क्रियाएं विज्ञान विषय की नीरसता और क्लिष्टता को दूर करके उसे अधिक सार्थक बनाती हैं और विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में रुचि जाग्रत करती हैं। इन क्रियाओं के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में रुचि विकसित करना।
- विद्यार्थियों को वैज्ञानिक रोचक कार्यों के लिए प्रोत्साहन देना।
- विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
- विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि का प्रशिक्षण देना।
- विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों जैसे निरीक्षण, परीक्षण, चिंतन आदि का विकास करना।

भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित पाठ्य सहगामी क्रियाओं में विज्ञान क्लब, विज्ञान मेले, वैज्ञानिक रुचियां एवं विज्ञान भ्रमण आदि सम्मलित होती हैं।

जिस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में सहगामी क्रियाओं का विशेष महत्व है उसी प्रकार भौतिक–विज्ञान मे भी सहगामी क्रियाओं का विशेष महत्व होता है। इन्हीं सहगामी क्रियाओं में विज्ञान क्लब, विज्ञान मेले आदि शामिल है। भौतिकीय–विज्ञान में सहगामी क्रियाओं द्वारा विद्यार्थी को आगे बढ़ने का अवसर मिलता है तथा उसमें आत्म विश्वास पैदा होता है।

4.2 विज्ञान क्लब (Science Club)

प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी विशेषताएं होती है। सभी में व्यक्तिगत विभिन्नताओं के परिणाम स्वरूप विभिन्न योग्यताओं के विकास के लिए अवसरों की रचना करना अति आवश्यक है वरना व्यक्ति की ये विशेषताएं निरर्थक हो जाती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'विज्ञान क्लब' से उपयुक्त स्थान नहीं हो सकता। इन विज्ञान क्लबों में विद्यार्थी की ओर व्यक्तिगत ध्यान दिया जा सकता है तथा 'करके सीखने' के सिद्धान्त का पालन भी संभव होता है।

4.2.1. भौतिकीय विज्ञान क्लब के उद्देश्य (Objectives of Physical Science Club)

विद्यालयों में भौतिक विज्ञान क्लब के निर्माण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं।

(i) वैज्ञानिक नेतत्व तथा भौतिकीय विज्ञान में रुचि को विकसित करना।

(ii) भौतिक–विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में दक्षता प्रदान करना तथा विद्यार्थियों में आत्म विश्वास जगाना।

(iii) भौतिकीय विज्ञान से सम्बन्धित व्यवसायों के प्रति विद्यार्थियों में उचित दष्टिकोण का विकास करना।

(iv) भौतिकीय–विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में सहायता प्रदान करना।

(v) विद्यार्थियों को अपने घरों तथा घरों के समीप के स्थानों को स्वच्छ रखना सिखाना।

(vi) विद्यार्थियों में स्व–शासन का विचार जाग्रत करना।

(vii) नियमित समय सारणी में कई बार जटिल प्रयोगों को करना संभव नहीं होता ऐसे प्रयोगो को विज्ञान–क्लबों के माध्यम से नियमित समय सारणी के अतिरिक्त करना।

(viii) विद्यार्थियों में भौतिकीय–विज्ञान संबंधी कार्यों का विकास करना।

(ix) भौतिकीय–विज्ञान सम्बन्धी विभिन्न समस्यात्मक परिस्थितियों में बुद्धि का स्वतन्त्र प्रयोग करना सिखाना।

(x) विद्यार्थियों में सद्भाव जागत करना।

(xi) विद्यार्थियों को आधुनिक भौतिकीय–विज्ञान संबंधी गतिविधियों तथा आविष्कारों से परिचित कराना जो मानव जीवन को प्रभावित कर रहे हों।

(xii) भौतिकीय–विज्ञान के मूल सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रयोगिक कार्य करने के लिए स्वतंत्र अवसर प्रदान करना।

(xiii) विद्यार्थियों में खोज तथा निर्माण की भावना विकसित करना।

(xiv) भौतिकीय–विज्ञान सम्बन्धी मेले, प्रदर्शनियों, यात्राओं, आदि का संगठन एवं प्रबन्ध करना।

(xv) विभिन्न वैज्ञानिक परिषदों तथा वैज्ञानिक क्लबों के साथ मिल–जुल कर कार्य करना।

4.2.2. भौतिकीय-विज्ञान क्लबों का संगठन (Organisation of Physical Science Clubs)

स्कूल में भौतिकीय–विज्ञान क्लबों के संगठन के लिए विशेष रूपरेखा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। तभी ये क्लब ठीक ढ़ंग से कार्य कर पाते हैं अन्यथा इसका योगदान नगण्य ही रहता है। प्रत्येक भौतिकीय–विज्ञान क्लब का अपना संविधान होना आवश्यक है। प्रत्येक संविधान में निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

(i) क्लब का नाम, (ii) उद्देश्य, (iii) कार्य क्षेत्र, (iv) सदस्य, (v) पदाधिकारी, (vi) कोष अथवा धन–व्यवस्था, (vii) क्लब की बैठके और समय आदि का निर्धारण।

(i) क्लब का नाम (Name of the club) – स्कूल में स्थापित की गई क्लब का नाम क्या हो, सबसे पहले इस पर विचार किया जाना चाहिए (जैसे भौतिकीय–विज्ञान क्लब)

(ii) उद्देश्य (objectives) – संस्था या क्लब की स्थापना से पूर्व उस संस्था के उद्देश्य का निर्धारण करना चाहिए। उदाहरण के लिए समुदाय के लोगों को भौतिकीय–विज्ञान सम्बन्धी नये आविष्कारों के बारे में बताना तथा समुदाय के हितों के लिए समुदाय संबंधी योजनाएँ बनाना तथा उन्हें लागू करना। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को भौतिकीय–विज्ञान संबंधी वैज्ञानिक विवरण लिखना सिखाना, भौतिकीय–विज्ञान संबंधी पत्रिकाओं से परिचित करवाना तथा भौतिकीय–विज्ञान संबंधी सामग्री पर विचार करना आदि।

(iii) कार्यक्षेत्र (Area) – इन क्लबों का कार्य क्षेत्र क्या हो इसकी सीमाएँ भी तय करनी पड़ेगी। सामान्यतः इन क्लबों का कार्य क्षेत्र विद्यालय तथा समुदाय तक ही होता है।

(iv) सदस्यता (Membership) –इस पद में यह तय किया जाता है कि इस विज्ञान–क्लब का सदस्य कौन बन सकता है? अर्थात् सदस्यता के लिए आवश्यक शर्ते तय की जाती हैं। प्रायः स्कूल के विद्यार्थी ही इस क्लब के सदस्य होते हैं। इस क्लब के सदस्यों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है–

(a) सक्रिय सदस्य– जैसे भौतिकीय–विज्ञान पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी।

(b) सामान्य सदस्य– अन्य विज्ञानों के छात्रों को भी इस क्लब का सदस्य सामान्य सदस्य के रूप में बनाया जा सकता है।

(c) जीवन सदस्य– ऐसे सदस्यों में वे लोग होते हैं जो भौतिकीय–विज्ञान में रुचि रखते हों।

(d) आदरणीय सदस्य– भौतिकीय–विज्ञान पढ़ाने वाले विद्यालय के पुराने विद्यार्थी इस क्लब के सदस्य हो सकते है।

(v) पदाधिकारी (Office Bearers) – इस क्लब के कुछ पदाधिकारी भी अवश्य होंगे जो कि निम्नलिखित है–

(a) अध्यक्ष

(b) चेयर मैन

(c) सचिव, कोषाध्यक्ष

(d) पुस्तकालयध्यक्ष

(e) प्रचार अधिकारी आदि।

उपरोक्त पदाधिकारियों के कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

(vi) कोष (Treasuary) – क्लब के विभिन्न कार्यों के लिए इकट्ठे किये गये धन का लेखा–जोखा रखना अनिर्वाय होता है। क्लब के कोषों में किन–किन लोगों का योगदान रहा है। उसका रिकार्ड भी रखना आवश्यक होता है।

(vii) क्लब की बैठकें तथा स्थान (Meeting and place) –क्लब की मीटिंग कितने समय के पश्चात हो, कहां पर तथा कब हो? इसके बारे में निर्देश कौन जारी करे? इत्यादि।

(viii) क्रियाएं (Activities) –भौतिकीय विज्ञान क्लब निम्नलिखित क्रियाएं कर सकता है।

(i) मीटिंग करना।

(ii) मेले तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करना।

(iii) भ्रमणों की व्यवस्था करना।

(iv) संग्रहालय।

(v) वाद–विवाद भाषण तथा निबन्ध आदि प्रतियोगिताएं करवाना।

(vi) बुलेटिन बोर्ड लगवाकर उनका उचित प्रयोग करना।

(vii) भौतिकीय वैज्ञानिक के जीवन व कार्यों के विवरण तैयार करवाना।

(viii) किसी भौतिकीय विज्ञान संबंधी पत्रिका का प्रकाशन करना।

(ix) प्रसार–भाषणों की व्यवस्था करना।

(x) भौतिकीय विज्ञान दिवसों का आयोजन करना।

(xi) भौतिकीय विज्ञान संग्रहालय के लिए वस्तुएं एकत्रित करना।

(xii) भौतिकीय विज्ञान संबंधी निबन्धों की प्रतियोगिताएं करवाना।

(xiii) भौतिकीय विज्ञान संबंधी चार्ट, मॉडल निर्माण प्रतियोगिताएँ आयोजित करना।

(xiv) पर्यटन योजनाएँ बनाना।

(xv) भौतिकीय विज्ञान विशेषज्ञों के साथ वार्ताएं आयोजित करना।

(xvi) स्लाईडस तथा फिल्म–स्ट्रिपस का निर्माण करना।

(xvii) भौतिकीय विज्ञान उपकरण सरंक्षण।

इस प्रकार हम देखते है कि भौतिकीय विज्ञान क्लब किस प्रकार विद्यार्थी तथा शिक्षकों के लिए सहायक हो सकते हैं। इन क्लबों में उन्हीं विद्यार्थी तथा शिक्षकों की सम्मिलित किया जाना चाहिए जो वास्तव में ही उत्साही हों और भौतिकीय विज्ञान विषय के प्रति समर्पित हों। समर्पण की भावना से ही क्लबों की क्रिया कलापों को व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। भौतिकीय विज्ञान क्लबों को हाई तथा सकैन्डरी स्कूलों में लोकप्रिय बनाने के लिए इनका उचित प्रकार से संगठन करना चाहिए तथा इनके लाभों से विद्यार्थियों को अवगत कराना चाहिए।

4.3 विज्ञान मेले (Science Fairs)

स्कूलों में विज्ञान मेलों का आयोजन बहुत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। विज्ञान की सभी शाखाओं को समन्वित करके इन विज्ञान मेलों का आयोजन किया जा सकता है। इन मेलों में विद्यार्थियों द्वारा तैयार की गई वस्तुओं और उनकी क्रियाओं का प्रदर्शन किया जा सकता है। इन मेलों में भौतिकीय विज्ञान विशेषज्ञों की वस्तुएँ, फिल्म शो, वाद–विवाद प्रतियोगिताएँ आदि कार्यक्रम सम्मिलित किए जा सकते हैं। इन मेलों की सफलता के लिए शिक्षक तथा विद्यार्थियों को मिलकर सहयोग करना चाहिए। इन मेलों में भौतिकीय विज्ञान व अन्य विज्ञानों में प्रयोगों की विधियों का भली भांति ज्ञान हो जाता है। इन्हीं मेलों द्वारा माता–पिता तथा समुदाय के अन्य लोगों को भौतिकीय विज्ञान के बारे में भी ज्ञान मिलता है। इन मेलों के अवसरों पर चन्दा इकट्ठा करने का कार्य भी किया जा सकता है। स्कूल के अधिकारीगण समुदाय के लोगों के सम्मुख अपनी आवश्यकताएँ प्रस्तुत करके उन्हें चन्दा इकट्ठा करने के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। इस कार्य में शिक्षक–Teacher Guardian Association एसोसिएशन भी अपना योगदान दे सकती है।

इन विज्ञान मेलों का आयोजन राज्य सरकारें और सरकारी संस्थाएँ करती है। सरकारी आयोजन करने वाली संस्थाओं में एन. सी.ई.आर.टी. (N.C.E.R.T) प्रमुख है।

इन विज्ञान मेलों में विद्यार्थियों के विभिन्न कौशलों के विकास के लिए पर्याप्त अवसर होने चाहिए। इनकी योजना और प्रक्रिया बहुत विस्तत होनी चाहिए। आर्थिक तंगी नहीं होनी चाहिए। इन मेलों के लिए बनाई गई विभिन्न कमेटियों के कार्यों को उचित ढंग से लागू किया जाना चाहिए। इन मेलों में प्रदर्शित वस्तुओं का उचित मूल्यांकन होना चाहिए और उन पर निर्णय दिया जाना चाहिए।

देश तथा राज्यों में एन.सी.ई.आर.टी. (N.C.E.R.T.) इन मेलों का जिला स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर, राज्य स्तर पर और राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन करने के लिए आर्थिक सहायता देती है।

4.3.1. विज्ञान मेलों के उद्देश्य (Objectives of Science Fairs)

(i) विद्यार्थियों को अपने विचारों को प्रयोग करने और कक्षा अधिगम को अधिक सजनात्मक ढंग से प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना।

(ii) विद्यार्थियों को उनके सहपाठियों की उपलब्धियों को देखने का अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करना जिसमें कि उन्हें अपनी परियोजना शुरु करने के लिए अभिप्रेरणा मिल सके।

(iii) भौतिकीय विज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं को विद्यार्थियों में अधिक लोकप्रिय बनाना।

(iv) प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।

(v) भारत में भविष्य के लिए वैज्ञानिकों की खोज करना।

(vi) क्षेत्र के लोगों को स्कूल के निकट लाना तथा शिक्षकों और विद्यार्थियों को मिलाना।

4.3.2. विज्ञान मेलों का महत्व (Importance of Science Fairs)

(i) विद्यार्थी सामूहिक परियोजनाओं और गतिविधियों में भाग लेते हैं और वे कई प्रकार की बातें सीखते है जो कि कक्षा में नहीं सीखी जा सकती।

(ii) विद्यार्थी केवल बौद्धिक रूप से ही विकसित नहीं होते, बल्कि वे सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक रूप से भी विकसित होते हैं।

(iii) इन मेलों से विद्यार्थियों की रचनात्मक, जिज्ञासा और उपलब्धि की प्रवत्तियों को संतुष्टि मिलती है।

(iv) विद्यार्थियों की प्रतिभाओं को मान्यता और प्रोत्साहन मिलता है।

(v) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक खोजों के प्रति रुचि का विकास होता है और वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज की जा सकती है।

4.3.3. विज्ञान मेलों का आयोजन (Organisation of Sceince Fairs)

विज्ञान मेलों के आयोजन की क्रिया विद्यार्थी तथा शिक्षक की संयुक्त क्रिया होनी चाहिए। प्रत्येक पहलू को अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। इन मेलों के आयोजन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए—

1. **योजना (Planning)** मेले को शुरु करने से पहले समुचित योजना बना लेनी अति आवश्यक है। मेले की योजना में निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जा सकती है—

(a) धन की समस्या

(b) स्थान, समय और अवधि का निर्णय।

(c) अन्य कारक और अवधि सुविधाएँ।

(d) मेले के उद्देश्यों और लक्ष्यों का निर्धारण।

(e) मेले की सीमाएँ (Scope of Fair)

2. **कार्य विभाजन (Distribution of work)** – मेले की योजना बनाने के पश्चात विभिन्न कार्यों को अन्य व्यक्तियों और समूहों में बांट देना चाहिए। मेले के विभिन्न अनुभागों के कार्यों की देखभाल के लिए विभिन्न समितियों की रचना की जानी चाहिए ये सभी कमेटियाँ अध्यापक इन्चार्ज और विद्यार्थियों के साथ विचार–विमर्श के आधार पर कार्य करें। कार्य विभाजन के समय विद्यार्थियों की रुचियों तथा उनकी प्रतिमाओं की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

3. **योजना को लागू करना (Execution)–** विज्ञान मेले के लिए विभिन्न कमेटियां पूर्ण योजना को लागू करें; मेले की व्यवस्था की जाये तथा कार्यक्रम जैसे, फिल्में, वार्ताएं, चार्ट, संग्रह, मॉडलों आदि के प्रदर्शन को संगठित किया जाए विज्ञान मेले में हर चीज स्वयं में स्पष्ट होनी चाहिए। इन वस्तुओं पर ठीक ढंग से लेबल लगे होने चाहिए और उन पर पूरा विवरण लिखा जाना चाहिए। चुने हुए विद्यार्थियों को विभिन्न वस्तुओं और प्रयोगों का इन्चार्ज बनाया जाना चाहिए। दूसरे स्कूलों तथा समुदाय के लोगों को मेलों मे आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

4. **निर्णय (Judging)** -मेले में प्रस्तुत वस्तुओं की विभिन्न श्रेणियों का मूल्यांकन करके उन पर निर्णय लें। इस कार्य के लिए समुदाय के लोगों में से, कॉलेज के प्रोफसरों में से तथा शिक्षकों के अन्य वर्गों में से निर्णायकों को नियुक्त किया जा सकता है। मूल्यांकन के लिए उचित नियमावाली पहले से ही बना लेनी चाहिए इस नियमावली को उपयुक्त नोटिस–बोर्ड पर लगा दिया जाए तो ओर भी उत्तम होगा। उनमें वैज्ञानिक उपागम, मौलिकता, तकनीकी कौशल आदि का मूल्यांकन किया जा सकता है। मेले की समाप्ति पर विद्यार्थियों और शिक्षकों को मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या मेले के उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया गया है? यदि नहीं तो इस मेले में कौन–कौन सी त्रुटियाँ रह गई है।

4.3.4 विज्ञान मेले के आयोजन संबंधी सुझाव
(Suggestions for Organising Science Fairs)

विज्ञान मेलों के आयोजन और इनमें सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं–

(i) यदि किसी प्रयोग में कोई खतरा हो तो सावधान रहने के निर्देश लाल रंग में लिखकर प्रयोग–स्थल पर लगाया जाये।

(ii) यदि कोई बाहरी खतरा हो तो मेले में रखी वस्तुओं की सुरक्षा की जानी चाहिए।

(iii) मेले में रखी सभी वस्तुएं सभी आगन्तुकों से सुरक्षित रखी जानी चाहिए।

(iv) आयोजकों की ओर से एक प्रतिनिधि प्रत्येक परियोजना के साथ आवश्यक होना चाहिए।

(v) आग आदि से बचने के सभी प्रबन्ध होने आवश्यक हैं।

(vi) मेले में वस्तुओं के प्रदर्शन में एक जैसा फर्नीचर ही इस्तेमाल हो।

(vii) वस्तुओं पर लेबल ठीक तरह से लगाने चाहिएं।

4.4 वैज्ञानिक रुचियां (Scientific Hobbies)

विज्ञान की किसी भी शाखा से यदि संबंध स्थापित किया जाए तो हर शाखा का विस्तत रूप ही देखने को मिलता है। भौतिकीय विज्ञान भी एक ऐसा ही विषय है जो कि इतना व्यापक है कि विद्यार्थी इसमें खोकर रह जाता है। विज्ञान एक प्रयोगात्मक विषय होने के कारण विद्यार्थी इसमें कोई न कोई प्रयोग करता है और इस प्रयोग के आधार पर विद्यार्थी कुछ न कुछ अवश्य सीखता है।

विद्यार्थी परिवेश की ओर आकर्षित होता है। वह इसकी खोजबीन में बहुत आनन्द अनुभव करता है। यही रुचि या आकर्षण उसका प्रिय कार्य या रुचि कहलाता है। इन रुचियों या प्रिय कार्यों के प्रति आकर्षण सभी व्यक्तियों में होता है। किसी लेखक ने इसके बारे में कहा भी है कि व्यक्ति उसकी रुचियों से जाना जाता है। विज्ञान शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि विद्यार्थियों की रुचियों की ओर ध्यान देकर उसे विकसित किया जाए। इन रुचियों को विकसित करने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों में भौतिकीय विज्ञान के प्रति रुचियों की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है–

(i) विद्यार्थी प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने के लिए जिज्ञासा का प्रदर्शन करता है।

(ii) भौतिकीय विज्ञान संबंधी कौशलों का प्रयोग करने की जिज्ञासा।

(iii) प्रत्यक्ष प्रमाण पर बल देना।

(iv) सभी कार्यों में विद्यार्थियों द्वारा वैज्ञानिक दष्टिकोण अपनाना।

(v) अपने आस–पास की परिस्थितियों का विश्लेषण करने का प्रयास।

4.4.1. भौतिकीय वैज्ञानिक रुचियों से युक्त विद्यार्थियों की पहचान

हम निम्नलिखित आधारों पर उन विद्यार्थियों की पहचान कर सकते हैं जो भौतिकीय विषय और इससे संबंधित गतिविधियों में रुचि रखते हो–

1. **परीक्षणों के आधार पर (On the basis of tests)–** विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की परीक्षाएँ देकर हम उनकी रुचियों तथा प्रिय–कार्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ये परीक्षाएँ लिखित या मौखिक हो सकती हैं। जैसे, विद्यार्थियों के सम्मुख भौतिकीय विज्ञान या अन्य विज्ञान से संबंधित वस्तुएं/ विषयों की एक सूची विद्यार्थियों को दी जा सकती है जिनमें विद्यार्थियों को कोई एक विषय चुनने को कहा जायेगा। इस प्रकार विद्यार्थियों की रुचियों का पता लगाया जा सकता है।

2. **विद्यार्थी व्यवहार (Student Behaviour)**– विद्यार्थी के पिछले और वर्तमान रिकार्ड को देखकर उसके व्यवहार एवं रुचियों का पता लगाया जा सकता है।

3. **प्रमापीकृत परीक्षाएँ (Standardized Tests)** –विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक रुचि के प्रमापीकृत परीक्षणों के प्रशासन एवं मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों की वैज्ञानिक रुचि के विषय में जानकारी इकट्ठी की जा सकती है।

4. **स्वयं रचित प्रश्न और उत्तर (Self made questions and answers)** – इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को यह छूट दी जाती है कि वे विज्ञान पर जितने चाहे प्रश्न बनाकर इन प्रश्नों के उत्तर दें। इन प्रश्नों में जितने चाहे प्रश्नों के उत्तर उन्हें आते हों। फिर इन प्रश्नों और इनके सही उत्तरों की संख्या के आधार पर विद्यार्थियों की रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है।

5. **निरीक्षण के आधार पर (On the basis of observation)**–कई परिस्थितियों में विद्यार्थी के निरन्तर निरीक्षण से भी उसकी रुचियों का अनुमान लग जाता है। जैसे विद्यार्थी कक्षा में किस प्रकार व्यवहार करते हैं। कैसे कार्य करते हैं। किस प्रकार की पुस्तके पढ़ना पसन्द करते हैं, वे किन विषयों की वार्तालाप में अधिक रुचि का प्रदर्शन करते हैं तथा वे अपना खाली समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं।

4.4.2. भौतिक विज्ञान सम्बन्धी रुचियों के लाभ (Advantages of Scientific Hobbies)

मनोवैज्ञानिक दष्टि से इन रुचियों की बहुत ही उपयोगिता है इन उपयोगिताओं की सूची निम्नलिखित है–

1. **भौतिकीय विज्ञान विषय का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक (Helpful in securing knowledge about Physical Science)** – भौतिकीय विज्ञान के प्रति रुचियों के विकास के परिणाम स्वरूप विद्यार्थी भौतिकीय विज्ञान विषय का ज्ञान सफलतापूर्वक अर्जित कर लेता है। इस प्रकार का ज्ञान स्थायी होता है क्योंकि जब विद्यार्थी अपनी रुचि के आधार पर अध्ययन करेगा, तो वह उसमें संतोष का अनुभव करेगा।

2. **अवकाश का सदुपयोग (Proper Utilization of Leisure time)** –अपनी रुचियों के अनुसार कार्य करने से विद्यार्थी के अवकाश के क्षणों का सदुपयोग हो जाता है। इससे उसमें रचनात्मक और सजनात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है। विद्यार्थी में कुछ सीखने की भावना को नई दिशा मिलती है।

3. **आर्थिक उपयोगिता (Economic Utility)** –अपनी रुचियों के आधार पर विद्यार्थी भौतिकीय विज्ञान संबंधी वस्तुओं का संग्रह करता है जो उसे सीखने में सहायक होती है। कई चीज़ो का वह स्वयं भी निर्माण कर लेता है जैसे चार्ट, मॉडल आदि इस प्रकार ये प्रिय कार्य या रुचियां आर्थिक दष्टि से भी लाभकारी होती हैं उदाहरणार्थ, मोमबत्ती बनाना, साबुन बनाना, श्रंगार–वस्तुएँ बनाना।

4. **मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of Psychological needs)** –रुचियों के अनुसार कार्य करने से विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। इससे विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक प्रवत्तियों का विकास स्वभाविक रूप से होने लगता है जो विद्यार्थियों की कार्य कुशलता बढ़ाने में सहायक है।

4.5 विज्ञान भ्रमण (Science Excursions)

भौतिकीय विज्ञान में भ्रमण को सबसे पुरानी सामग्री माना गया है इससे वास्तविक जीवन के अधिगम–अनुभव प्राप्त होते हैं। ये साधन विद्यार्थी को उनके सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण के बारे में बताते हैं। इस प्रकार के भ्रमणों से पूर्व–अर्जित अर्थात् पहले से प्राप्त अधिगम को पुनर्बलन मिलता हैं। इन भम्रणों पर मौके पर निरीक्षण करने की सुविधा प्रदान की जाती है। भौतिकीय विज्ञान संबंधी भम्रण कई रुचिकर स्थानों पर हो सकते हैं जैसे–पानी शुद्धीकरण के स्थान, संग्रहालय, भूमि सरंक्षण स्थल, मौसम कार्यालय आदि।

4.5.1. विज्ञान भ्रमण के उद्देश्य (Objectives of Science Excursions)

भौतिकीय विज्ञान भ्रमण के निम्नलितिख उद्देश्य प्रमुख है–

(i) भौतिकीय–विज्ञान सम्बन्धित जिज्ञासा को बढ़ाना।

(ii) भौतिकीय–विज्ञान की किसी परियोजना को शुरु करने के लिए।

(iii) कक्षा–कार्य को बाहर, परिवेश में रुचि का विकास करने के लिए।

(iv) स्थानीय–रुचि को विकसित करने के लिए।

4.5.2. विज्ञान भ्रमण का महत्व (Importance of Science Excursions)

भ्रमण के स्थानों का निर्णय इलाके तथा स्कूल में पढ़ाये जाने वाले विषय पर आधारित होता है। भ्रमणों की निम्नलिखित उपयोगिता है–

(i) भ्रमणों द्वारा विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है।

(ii) भ्रमणों द्वारा नेतत्व, सहयोग, आत्म विश्वास, योजना बनाने आदि योग्यताओं का विकास होता है।

(iii) भ्रमणों से विद्यार्थियों को भौतिकीय विज्ञान से संबंधित वस्तुओं के संग्रह करने के अवसर मिलते हैं।

(iv) इस प्रकार के भ्रमण विद्यार्थियों को कक्षा की दैनिक प्रक्रिया से मुक्ति दिलाकर कुछ आराम पहुंचाते है।

(v) भ्रमणों द्वारा इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकती हैं जिससे विद्यार्थियों में पूछताछ की प्रवत्ति प्रोत्साहित होती है।

(vi) इस प्रकार के भ्रमणों द्वारा स्कूलों और समुदायों में खाई कम होती है।

(vii) इन भ्रमणों द्वारा स्कूलों में कई सप्रत्ययों को स्पष्ट किया जा सकता है।

(viii) इन भ्रमणों द्वारा विद्यार्थियों के भौतिकीय–विज्ञान के प्रति उचित दष्टिकोण का विकास होता है।

एस. के. कोचर के अनुसार, "विज्ञान भ्रमण कल्पना और प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करते हैं तथा कक्षा–कक्ष अनुदेशन को एकीकृत करते हैं। ऐसे भ्रमण समुदाय से वास्तविक अनुभव करवाते हैं जो कि पुस्तकीय ज्ञान से संभव नहीं। इसके अतिरिक्त ये भ्रमण हमें दूसरों के साथ जीवन निर्वाह करने की कला सिखाते हैं तथा संवेगातमक और बौद्धिक परिधि का विस्तार करते हैं।"

4.5.3. भौतिकीय विज्ञान भ्रमण का आयोजन (Organization of Physical Science Excursion)

भौतिकीय–विज्ञान भ्रमणों के सफल आयोजन के लिए यह आवश्यक है कि इनका प्रबन्ध क्रमबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षक निम्नलिखित पदों का अनुसरण कर सकते है।

1. **उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of objectives)** –इस प्रकार के भ्रमणों की सम्पूर्ण तैयारी से पहले यह निश्चित करना अति आवश्यक है कि भ्रमण किन उद्देश्यों को सामने रखकर किया जा रहा है। ये उद्देश्य शिक्षक और विद्यार्थियों के सम्मुख पूर्णतया स्पष्ट होने चाहिए। इन उद्देश्यों की स्पष्टता ही सम्पूर्ण योजना का आधार है। शिक्षक इन उद्देश्यों के आधार पर ही आगमी योजना तय कर सकता है।

2. **योजना (Planning)** –सभी कार्यों को व्यवहारिक रूप देने से पहले उनकी योजना बनाना परम आवश्यक है अन्यथा सफलता की स्थिति में समय नष्ट होने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगेगा। इस प्रकार के भ्रमणों का प्रबन्ध स्कूल में स्थापित विज्ञान–क्लब अपने हाथ में ले। यदि ये क्लब ऐसा नहीं कर सकते तो विद्यार्थी और शिक्षक आपसी सहयोग से ये सब कुछ कर सकते हैं। योजना बनाने में निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं।

   (i) विद्यार्थियों की संख्या जिनको भ्रमण में साथ लेकर चलना हो।

   (ii) उच्चाधिकारी से अनुमति लेना।

   (iii) ऐसे विद्यार्थियोंका आयु वर्ग।

   (iv) ट्रासपोर्ट का प्रबन्ध।

   (v) आर्थिक छूट।

   (vi) भ्रमण के दौरान जहां रुकना हो वहां पर बहुत पहले से ही पत्र व्यवहार द्वारा रहने आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध करना।

   (vii) खर्चे आदि का निर्धारण।

   (viii) भ्रमण के साथ सामान आदि जो लेकर चलना हो या जिस सामान की आवश्यकता हो।

   (ix) भ्रमण के प्रबन्धों के लिए विभिन्न समितियों की रचना करके उनके कार्य को समझाना।

3. **तैयारी (Preparation)** योजना बनाने के पश्चात भ्रमण पर जाने वाले सभी लोग अपनी–अपनी तैयारी में लग जाएं। विद्यार्थियों को भ्रमण पर चलने के लिए अभिप्रेरित किया जाना चाहिए न कि ये भ्रमण उन पर थोपे जायें।

4. **लागू करना (Execution)** –भ्रमण की सफलता का सारा भार भ्रमण की योजना को प्रभावशाली ढंग से लागू करने पर है। योजना को लागू करने में यह देखना भी शामिल है। कि क्या सभी लोग अपने–अपने कर्त्तव्यों को निभा रहे हैं या नहीं। योजना को लागू करने के लिए विद्यार्थियों को छोटे–छोटे समूह में बाँट दिया जाता है और उन्हें उनके कर्त्तव्य बता दिए जाते हैं। ऐसे आयोजनों में कड़ा अनुशासन आयोजन की सफलता के लिए पहली शर्त्त होती है।

5. **अनुवर्ती क्रिया (Follow up)** –इस प्रकार के भ्रमणों के पश्चात अनुवर्ती क्रिया का होना अति आवश्यक है। इसके लिए विद्यार्थियों से कहा जाए कि वे अपने भ्रमण के दौरान अर्जित ज्ञान पर लेख लिखें।

6. **मूल्यांकन (Evaluation)** – सम्पूर्ण भ्रमण समाप्त होने के पश्चात इसका पूर्ण मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भ्रमण में रह गई त्रुटियों आदि का विश्लेषण करके आगमी भ्रमणों के दौरान उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

4.5.4. भ्रमण के संभावित स्थल (Posssible places of Excursions)

1. चीनी, कागज आदि के कारखाने। इस प्रकार के स्थानों पर कई प्रकार की रासायनिक क्रियाओं को देखने का अवसर मिलता है।

2. आधुनिक हस्पताल, जहां पर अनेक प्रकार के उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता हो।

3. मेडिकल प्रयोगशाला जो कि अत्यधिक आधुनिक हो। यहां पर भी कई प्रकार के आधुनिक उपकरण तथा यन्त्र देखने को मिलेंगे।

4. मिल्क प्लांट आदि।

4.5.5. भ्रमणों के दोष या हानियां (Disadvantages of Excursions)

(i) इन भ्रमणों से विद्यालय के अन्य कार्यक्रमों में बाधा पड़ती है।

(ii) ये भ्रमण बहुत महंगे सिद्ध होते है।

(iii) इन भ्रमणें के उद्देश्यों को बहुत कम विद्यार्थी ही समझ पाते हैं। व्यर्थ ही समय नष्ट करते हैं।

(iv) वे कक्षाएं जिनमें अधिक विद्यार्थी होते हैं, उनको ऐसे भ्रमणों पर ले जाना बहुत कठिन होता है।

(v) ये भ्रमण कई बार उपयुक्त समय पर संभव नहीं हो पाते।

(vi) कई शिक्षकों का विद्यार्थियों के प्रति उचित दष्टिकोण नहीं होता।

4.5.6. भौतिकीय-विज्ञान भ्रमणों के लिए सावधानियां (Precautions for Physical-Science Excursions)

जब कभी भी भ्रमण का कार्यक्रम बनाया जाए तो निम्नबातों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। तभी भ्रमणों का लाभ उठाया जा सकता है–

(i) भ्रमण लोकतांत्रिक ढंग से नियोजित करके तथा ठीक ढंग से संगठित करके सावधानी पूर्वक लागू किया जाना चाहिए।

(ii) शिक्षक विद्यार्थियों को मार्ग–दर्शक प्रश्न बता सकता है जिनका उत्तर विद्यार्थी शिक्षक से या समुदाय के नेताओं से पूछ सके।

(iii) जहां तक संभव हो सके, शिक्षक को उन सभी रास्तों बस स्टापों, दिग्दर्शक–सुविधा का ज्ञान तथा उन वस्तु तथा स्थानों का ज्ञान हो जिन्हें उन्हें देखना है, उन कार्यों का ज्ञान, जिनको समूह द्वारा किया जाना हो, खाने–पीने का प्रबन्ध और भ्रमण के प्रत्येक स्तर या चरण के लिए समय की आवश्यकता आदि का पहले से ही ज्ञान होना चाहिए।

(iv) प्रत्येक भ्रमण के पश्चात् निश्चित अनुवर्ती–सेवा का होना अति आवश्यक है। इस सेवा के अन्तर्गत उन स्थानों से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन किया जाना चाहिए। जिन स्थानों का भ्रमण किया गया हो या जिन स्थानों का निरीक्षण किया जा चुका हो, उन पर बहस करने के लिए पैनल बनाया जाना चाहिए।

(v) भ्रमण का मूल्यांकन मौलिक रूप से निर्धारित उद्देश्यों के संदर्भ में किया जाना चाहिए, त्रुटियों और कठिनाइयों का निदान किया जाना चाहिए। समूह के व्यवहार पर बहस होनी चाहिए। संबंधित व्यक्तियों को धन्यवाद के पत्र प्रेषित किये जाने चाहिएं तथा भ्रमणों के मुख्य अंशों का स्थायी रिकार्ड रखा जाना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) विज्ञान क्लब का संगठन किस प्रकार किया जाता है?

(ii) विज्ञान मेले के आयोजन की प्रक्रिया के मुख्य चरण कौन से हैं?

(iii) भौतिक विज्ञान शिक्षण में वैज्ञानिक रुचियों का क्या महत्व है?

(iv) भौतिक विज्ञान सम्बन्धी भ्रमण से किन उद्देश्यों की पूर्ति होती है?

4.6 सारांश

किसी भी देश की उन्नति उसके विद्यार्थियों की वैज्ञानिक प्रक्रिया पर निर्भर करती है। इसलिए विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा को अधिक से अधिक रोचक बनाने तथा विद्यार्थियों को अपनी विज्ञान सम्बन्धी प्रतिभा का उपयोग करने के उचित अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित पाठ्य सहगामी क्रियाओं में विज्ञान क्लब, विज्ञान मेले, वैज्ञानिक रुचियां एवं विज्ञान भ्रमण आदि सम्मिलित होते है।

विज्ञान क्लब द्वारा विद्यार्थियों की व्यक्तिगत अभिरुचियों को पोषण मिलता है और वे स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं को अभिव्यक्त कर सकते हैं। विज्ञान क्लब की उपलब्धियों तथा कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए विज्ञान मेले एक अच्छे रंगमंच के रूप में कार्य करता है। विज्ञान मेलों में विज्ञान सम्बन्धी उपकरणों एवं मॉडलों का प्रदर्शन किया जाता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान के महत्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यानों, वाद–विवाद प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता, विचार–गोष्ठी आदि का आयोजन भी किया जाता है।

वैज्ञानिक रुचियों से तात्पर्य उन रोचक कार्यों से है जिन्हें करने से विद्यार्थी को प्रसन्नता का अनुभव होता है। शुरू में तो इन्हें अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने के लिए किया जाता है परन्तु फिर धीरे–धीरे इन कार्यों का एक आदत अथवा लगन के रूप में विकास हो जाता है उदाहरण के लिए बागवानी, स्वयं निर्मित उपकरणों का निर्माण, फोटोग्राफी, साबुन, स्याही, पॉलिश आदि बनाना।

विज्ञान भ्रमण विद्याथ्रियों को प्रत्यक्ष वस्तुओं के सम्पर्क में आ कर उन्हें स्वाभाविक रूप से देखकर ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देने में विशेष रूप से उपयोगी है। भ्रमण विषय के स्पष्टीकरण में, विषय में रुचि उत्पन्न करने में, मनोरंजन के साधन के रूप में, वैज्ञानिक दष्टिकोण के विकास में, उपयोगी सामग्री के संग्रह और सहयोग की भावना के विकास में सहायक है।

मॉडल उत्तर

(i) कपया 4.2 में देखें

(ii) विज्ञान मेलों के आयोजन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए–

नियोजन, कार्य विभाजन, योजना को लागू करना तथा निर्णय लेना।

3. भौतिक विज्ञान शिक्षण में वैज्ञानिक रुचियों का महत्व निम्नलिखित है–विषय का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक, अवकाश का सदुपयोग, आर्थिक उपयोगिता, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति।

4. विज्ञान भ्रमण विषय के स्पष्टीकरण में, विषय में रुचि उत्पन्न करने में, मनोरंजन के साधन के रूप में, वैज्ञानिक दष्टिकोण के विकास में तथा उपयोगी सामग्री के संग्रह में सहायक है।

4.7 मुख्य शब्द

पाठ्य-सहगामी क्रियाएं–विद्यालय में पाठ्यक्रम के साथ उपलब्ध कराई जाने वाली सहायक क्रियाएं।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi

Soni, Anju 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludhiana

मंगल, एस०के० 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली

इकाई-III (b)

अध्याय-1: स्व-अधिगम सामग्री का विकास (रेखीय अभिक्रम)

(Development of Self-Learning Material-Linear Programme)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- स्व अधिगम सामग्री के संप्रत्यय का वर्णन सकें।
- स्व अधिगम सामग्री के विकास का आधार बता सके।
- रेखीय अभिक्रम की संरचना का वर्णन कर सकें।
- अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सके।

सरंचना:

1.1 प्रस्तावना
1.2 स्व अधिगम सामग्री
1.3 स्व अधिगम सामग्री का विकास
1.4 रेखीय अभिक्रम की संरचना
1.5 अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाएं
1.6 सारांश
मॉडल उत्तर
1.7 मुख्य शब्द
1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

हमने पिछले अध्यायों में अनुदेशनात्मक सामग्री के नियोजन एवं विकास से सम्बन्धित अध्ययन किया। हम जानते हैं कि विषय–वस्तु को विद्यार्थियों तक प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने के लिए अध्यापक को इकाई योजना एवं पाठ योजना बनानी चाहिए और सहायक सामग्री का आवश्कतानुसार प्रयोग करना चाहिए। कक्षा शिक्षण में अध्यापक विषय वस्तु को अपनी गति और समय सीमाओं के अनुरूप प्रस्तुत करता है और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को कम महत्व देता है। मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण के अनुसार कोई भी दो विद्यार्थी या व्यक्ति एक समान नही होते, उनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएं पाई जाती हैं। एक कक्षा में अलग–अलग गति से अधिगम करने वाले विद्यार्थी होते हैं। अध्यापक इन विभिन्न रुचियों, अधिगम गति, बुद्धि स्तर आदि

के विद्यार्थियों को लगभग समान रूप से अधिगम करवाने का प्रयत्न कर सकता है और इसके लिए वह विभिन्न उद्दीपकों, सहायक सामग्री आदि का प्रयोग करता हैं परन्तु अध्यापक द्वारा कक्षा शिक्षण की अपनी सीमाएं हैं और अध्यापक चाहे तो भी प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी स्वयं की गति से अधिगम करने का अवसर नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त पाठ्य पुस्तकें भी पूर्णतया दोषरहित नहीं है। पाठ्य पुस्तकों में विषय–वस्तु को जटिल एवं नीरस रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिससे विद्यार्थियों की विषय में रूचि व उत्साह कम हो जाता है। इन सभी सीमाओं को देखते हुए यह अनुभव किया गया है कि ऐसी अधिगम सामग्री का विकास किया जाए जिससे विद्यार्थी स्वयं अनुदेशन प्राप्त करके अध्यापक की उपस्थिति या अनुपस्थिति में अपनी गति से अधिगम कर सके। प्रस्तुत अध्याय में हम इसी सामग्री के संप्रत्यय एवं विकास के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

1.2 स्व-अधिगम सामग्री (Self-learning Material)

ऐसी सामग्री जिसका उपयोग करके अधिगमकर्त्ता बिना शिक्षक के अपनी गति एवं क्षमताओं के अनुरूप अधिगम करता है और अपनी ज्ञान–प्राप्ति का बोध भी करता है, स्व–अधिगम सामग्री कहलाती है।

इस सामग्री का निर्माण मनोविज्ञान के आधार पर किया जाता है। आदि काल से शिक्षण –अधिगम की प्रमुख समस्या विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर अधिगम सुविधाएं प्रदान कर रही है। भारतीय परिस्थितियों में तो विशेष रूप से अध्यापक के लिए यह संभव नहीं है कि प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं, रुचियों, क्षमताओं आदि के अनुरूप संसाधन उपलब्ध करवा सके और कक्षा में उनका उचित प्रयोग कर सकें। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं उनका ध्यान केन्द्रित करने के लिए किसी प्रविधि को प्रयोग नहीं किया जाता है। पाठ्य–पुस्तकों में तत्त्वों की व्यवस्था मनोवैज्ञानिक ढंग की अपेक्षा तार्किक ढंग से की जाती है। इससे विद्यार्थियों को अधिगम में कठिनाई होती है, वे कुछ तथ्यों तथा प्रत्ययों को समझ नहीं पाते और इसके लिए कोई सुधारात्मक शिक्षण या अनुदेशन की सुविधा भी नहीं प्रदान की जाती है इसीलिए अधिगम को प्रभावपूर्ण बनाने एवं विद्यार्थियों को प्रत्ययों का उचित बोध कराने के लिए आधुनिक काल में स्व–अधिगम सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त जिन विद्यालयों में योग्य शिक्षकों का अभाव है, उनके लिए यह अधिक उपयोगी हो सकती है। पत्राचार पाठ्यक्रमों से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को भेजी जाने वाली पाठ्य सामग्री भी इसी रूप में भेजी जाती है।

स्व–अधिगम सामग्री का निर्माण अभिक्रमित अधिगम के सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। अभिक्रमित अधिगम में शिक्षण–सामग्री को एक ऐसे क्रम में नियोजित किया जाता है जिससे विद्यार्थियों में लगातार अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा सकता है और उनका मापन भी किया जा सकता है स्व–अधिगम सामग्री (SLM) को अभिप्रेरित अधिगम सामग्री (Programmed Learning Material) अथवा अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री (Programmed Instruction Material) भी कहा जाता है।

इस सामग्री के निर्माण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार सीखने का अवसर प्रदान करना है। विद्यार्थी इस सामग्री का स्वयं अध्ययन कर के सीखता है। अधिगम की प्रक्रिया में विद्यार्थी लगातार सक्रिय रहता है और उसे अपनी ज्ञान–प्राप्ति का बोध भी होता रहता है। इस सामग्री में विषय–वस्तु का संगठन छोटे–छोटे पदों (फ्रेमों) के रूप में किया जाता है और प्रत्येक पद से सम्बन्धित श्रेणीबद्ध प्रश्न क्रमानुसार व्यवस्थित होते हैं। विद्यार्थी एक प्रश्न का सही उत्तर देने के पश्चात ही दूसरे भाग की ओर अग्रसर होता है।

1.3 स्व-अधिगम सामग्री (रेखीय अभिक्रम) का विकास

Development of Self-Learning Material (Linear Programme)

इस प्रकार की सामग्री का निर्माण एवं विकास विख्यात शिक्षाविद् एवं मनोवैज्ञानिक श्री बी. एफ. स्किनर (B.F.Skinner) द्वारा प्रतिपादित आपरेण्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया प्रतिमान (Operant conditioning Model of Teaching) के आधार पर किया जाता है। स्किनर ने अपनी प्रयोगशाला में जानवरों और पक्षियों पर प्रयोग किए। प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर उसने आपरेण्ट प्रतिबद्ध अनिक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्किनर के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्य के

प्रतिफल की पुष्टि तुरन्त मिल जाए तो उस व्यक्ति के लिए यह अभिप्रेरक का कार्य करता है और व्यक्ति सीखने के क्षेत्र में अग्रसर होता जाता है। सीखने की क्रिया में पुर्नबलन का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए ताकि विद्यार्थी द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान स्थाई हो सके। इस सिद्धान्त का उपयोग करके स्किनर ने आपरेण्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया शिक्षण प्रतिमान का विकास किया है। स्किनर के शिक्षण प्रतिमान के तत्वों का प्रयोग रेखीय अभिक्रम का निर्माण एवं विकास करने से पूर्व इसकी संरचना को समझना आवश्यक है।

1.4 रेखीय अभिक्रम की संरचना (Structure of a linear Programme)

रेखीय अभिक्रम से अभिप्राय 'सीधी रेखा का अभिक्रम या कार्यक्रम' है जिसमें विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour) से अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour) तक सीधी रेखा की तरह चलता रहता है। इस में पाठ्य–सामग्री को छोटे–छोटे पदों में क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन पदों को फ्रेम (Frame) कहा जाता है। प्रत्येक फ्रेम विद्यार्थी को नवीन ज्ञान प्रदान करता है और उद्दीपक के रूप में कार्य करता है। ये फ्रेम आपस में सम्बन्धित होते हैं। इन फ्रेमों को एक–एक करके सरलता से कठिनता के क्रम में विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थी प्रस्तुत फ्रेम के प्रति अनुक्रिया (Response) करता है। उचित प्रतिक्रिया करने के लिए उसे संकेत (Hints) दिये जाते हैं। इन संकेतों को अनुबोधन (Prompts) भी कहा जाता है। उचित प्रतिक्रिया करने के उपरान्त उसके सामने अगला फ्रेम प्रस्तुत किया जाता है जिस पर प्रथम फ्रेम के प्रश्न का उत्तर दिया होता है। इससे विद्यार्थी को पुर्नबलन (Reinforcement) प्राप्त होता है पुर्नबलन से विद्यार्थी प्रेरित होता है और अगले फ्रेम में दी गई पाठ्य–सामग्री को सीखने का प्रयास करता है। इस प्रकार विद्यार्थी एक फ्रेम से दूसरे, दूसरे फ्रेम से तीसरे फ्रेम पर पहुँचता हुआ अन्तिम फ्रेम तक पहुँच जाता है।

प्रत्येक फ्रेम में इतनी ही पाठ्य–सामग्री प्रस्तुत की जाती है जिससे कि विद्यार्थी उचित प्रतिक्रिया कर सके। फ्रेमों में दी गई सूचना अपने आप में पूर्ण होती है। प्रत्येक फ्रेम में दिये गए रिक्त स्थान में उसे प्रतिक्रिया लिखनी होती है। वह अपनी प्रतिक्रिया की जाँच अगले फ्रेम में करता है। प्रत्येक फ्रेम के उत्तर को तब तक छिपाया जाता है। जब तक कि विद्यार्थी उचित प्रतिक्रिया नहीं करता। फ्रेम के प्रति उचित प्रतिक्रिया करने पर नया ज्ञान एवं पुनर्बलन प्राप्त होता है। पुर्नबलन से विद्यार्थी उद्दीपक–प्रतिक्रिया में नये सम्बन्ध स्थापित करता है जिसे पुष्टिकरण (Verification) कहते हैं।

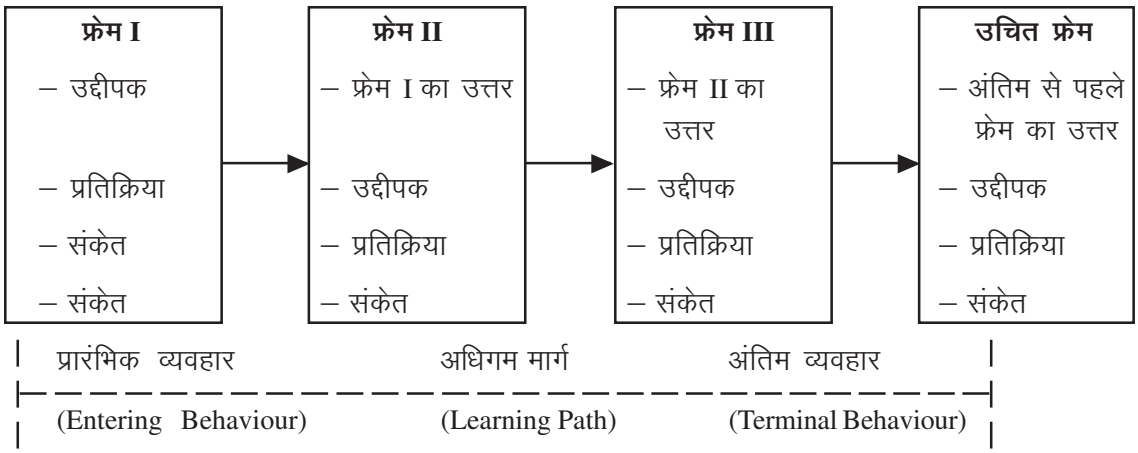

1.5 अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाएं (Stages of Preparation of a Programme)

अभिक्रम का निर्माण निम्न अवस्थाओं में सम्पन्न किया जाता है–

(A) तैयारी की अवस्था (Stage of Preparation)

(B) लेखन की अवस्था (Stage of Writing)

(C) परीक्षण की अवस्था (Stage of Try-out)

(D) मूल्यांकन की अवस्था (Stage of Evaluation)

इन सभी अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है।–

(A) तैयारी की अवस्था (Stage of Preparation)

अभिक्रम निर्माण की यह पहली अवस्था है। अभिक्रम की सफलता के लिए तैयारी आधार का कार्य करती है। तैयारी की अवस्था में निम्नलिखित कार्य सम्पादित किये जाते हैं–

1. इकाई का चयन (Selection of unit) –सर्वप्रथम पाठ्य सामग्री की चयन किया जाता है। पाठ्य सामग्री के उपयुक्त चयन पर अभिक्रम की सफलता निर्भर करती है। लिसौट तथा विलियम ने अभिक्रम के निर्माण हेतु इकाई का चयन करने के लए छः निम्नलिखित मानदण्ड बताए हैं–

(I) **अध्यापक या अभिक्रमक (Programmer)–** जिस विषय में अध्यापक अभिक्रम तैयार करना चाहता है, उस विषय पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए।

(II) उसी इकाई का चयन किया जाना चाहिए जिस की व्यवस्था समुचित ढंग से की जा सके।

(III) इकाई की लम्बाई (length of the Unit) इतनी होनी चाहिए कि उससे अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

(IV) इकाई का चयन विद्यार्थियों के सम्मुख आने वाली बाधाओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

(V) इकाई का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे तत्वों को तर्कपूर्ण ढंग से एक क्रम में व्यवस्थित किया जा सके।

(VI) इकाई का सम्बन्ध विशिष्ट अध्ययन के क्षेत्र से होना चाहिये जिससे विद्यार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

2. पाठ्य सामग्री की रूपरेखा तैयारी करना (To prepare conent outline)– अध्यापक जो कुछ भी अभिक्रम के माध्यम से पढ़ाना चाहता है, वह सारी सामग्री इस रूपरेखा में होनी चाहिए। इसमें पाठ्य–पुस्तकों व अन्य संसाधनों (Resources) का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। यदि अध्यापक ने यह विषय न पढ़ाया हो तो किसी अनुभवी अध्यापक से विचार–विमर्श कर लेना चाहिए।

3. उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में परिभाषित करना (Defining objectives in Behavioural terms)– इकाई का चयन करने एवं पाठ्य –सामग्री की रूपरेखा तैयार करने के पश्चात उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में परिभाषित किया जाता है। उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में परिभाषित करने के लिए कार्य–विवरण (Task Description) व कार्य–विश्लेषण (Task Analysis) किया जाता है। कार्य विवरण में अपेक्षित व्यवहारों का वर्णन होता है, जबकि कार्य विश्लेषण में उन व्यवहारों का वर्णन होता है जिनके आधार पर अन्तिम व्यवहार प्राप्त होता है। स्केफोल्ड (Scafold) ने व्यवहारपरक उद्देश्यों की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

I. उद्देश्यों के स्वरूप का विशिष्टीकरण हो जाता है।

II. परीक्षण के प्रश्नों के निर्माण में सहायता मिलती है।

III. शिक्षण तथा परीक्षण में समन्वय स्थापित किया जाता है।

4. प्रारम्भिक व्यवहार को परिभाषित करना (Defining Entering Behaviour) –विद्यार्थियों के प्रारम्भिक व्यवहार को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए क्योंकि फ्रेम निर्माण के लिए प्रारम्भिक व्यवहार आधार का कार्य करते हैं। ये वे बिन्दु होते हैं जहाँ से अभिक्रम का आरम्भ होता है। प्रभावशाली शिक्षण एवं अधिगम के लिए विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार अर्थात् पूर्व–आवश्यक ज्ञान एवं कौशलों (Pre-requisite knowledge and skills) का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना अनिवार्य है। इससे अध्यापक को अन्तिम व्यवहार निश्चित करने में सहायता मिलती है।

5. मानदण्ड परीक्षण की रचना (To construct Criterion Test) –मानदण्ड परीक्षण में अभिक्रम द्वारा विकसित किऐ जाने वाले अन्तिम व्यवहारों को दर्शाया जाता है। इसी से अभिक्रम की सफलता अथवा असफलता निश्चित होती है। डा. के. पी. पाण्डे (Dr. K.P. Pandey) के अनुसार, ''एक अच्छा मानदण्ड परीक्षण वह है जिसमें अन्तिम व्यवहार के रूप में व्यवहार के प्रतिनिधि तत्व प्रतिबिम्बित हों।''

मानदण्ड परीक्षण की सहायता से उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। इस परीक्षण में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक उद्देश्य के मापन के लिए प्रश्नों की रचना की जाती है।

B. लेखन की अवस्था (Stage of Writing)

यह अभिक्रम निर्माण की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में अभिक्रम को एक व्यवस्थित क्रम में लिखा जाता है। इस अवस्था के तीन चरण होते हैं–

1. पाठ्य-सामग्री को पदों में प्रस्तुत करना (To present the Subject Matter in Frames) –पद अनुदेशन सामग्री की वह सब से छोटी इकाई है जो एक समय में विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। फ्रेम पाठ्य–सामग्री की केवल एक सरल इकाई नहीं होता अपितु यह एक व्यावहारिक इकाई भी होता है जो विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन को सूचित करता है। रेखीय अभिक्रम में फ्रेम का आकार छोटा होता है। इसमें कुछ शब्द या एक–दो वाक्य ही होते हैं। ये शब्द या वाक्य पाठ्य–सामग्री से सम्बन्धित होते हैं और उद्दीपक के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक फ्रेम के तीन तत्व होते हैं–उद्दीपक, प्रतिक्रिया एवं पुनर्बलन।

फ्रेम चार प्रकार के होते हैं–

I. **प्रस्तावना फ्रेम (Introductory Frames)** –इस प्रकार के फ्रेम में पूर्व ज्ञान से आरम्भ करके नीवन ज्ञान से सम्बन्ध ा स्थापित किया जाता है। इस फ्रेम मे अनुबोधनों (Prompts) एवं उभारकों (Priming) का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तावना फ्रेम 10 या 15 प्रतिशत से अधिक नहीं बनाने चाहिएं।

II. **शिक्षण फ्रेम (Teaching Frames)** –इन फ्रेमों की सहायता से पाठ्य–वस्तु के स्वरूप को प्रस्तुत किया जाता है इन में विद्यार्थियों के सामने नया ज्ञान प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थियों की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए इन फ्रेमों में अनुबोधकों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षण फ्रेमों की संख्या 60–70 प्रतिशत तक होती है।

III. **अभ्यास फ्रेम (Practice Frames)** –इन फ्रेमों की सहायता से सीखे हुए ज्ञान का अभ्यास करवाया जाता है। इनमें धीरे–धीरे अनुबोधकों को कम किया जाता है। अभ्यास फ्रेमों की संख्या 20–25 प्रतिशत तक होती है।

IV. **परीक्षण फ्रेम (Testing Frames)** –विद्यार्थियों के नये ज्ञान के परीक्षण के लिए प्रत्येक इकाई के अन्त में परीक्षण फ्रेमों की रचना की जाती है। इन फ्रेमों का उद्देश्य सीखे हुए ज्ञान की जांच करना होता है इसलिए इन में अनुबोधनों का प्रयोग नहीं किया जाता है। परीक्षण फ्रेम 10–15 प्रतिशत तक होने चाहिएं।

एक अच्छे फ्रेम की विशेषताएंः–

(1) अच्छा फ्रेम चुनौतीपूर्ण होता है और विद्यार्थी को अभिप्रेरित करता है।

(2) अच्छे फ्रेम की भाषा सार्थक एवं विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल होती है।

(3) अच्छे फ्रेम के शब्द स्पष्ट होते हैं।

(4) अच्छे फ्रेम की अनुक्रिया सार्थक एवं सही होती है। इस अनुक्रिया का सम्बन्ध अन्तिम व्यवहार से होता है।

(5) अच्छे फ्रेम का स्वरूप इस प्रकार का होता है कि एक ही सही अनुक्रिया की जा सके।

(6) अच्छे फ्रेम में समुचित अनुबोधकों का प्रयोग किया जाता है।

(7) अच्छे फ्रेम का आकार विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल होता है।

(8) अच्छे फ्रेम का उद्दीपन पिछले फ्रेम की अनुक्रिया पर आधारित होता है।

2. फ्रेमों को क्रमबद्ध करना (Sequencing the Frames)

पाठ्य–सामग्री को फ्रेमों में प्रस्तुत करने के बाद फ्रेमों को व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध करना होता है। फ्रेमों को तार्किक एवं व्यावहारिक रूप से उचित क्रम में रखा जाता है जिससे विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार से अन्तिम व्यवहार की ओर अग्रसर हो सकें।

फ्रेमों को निम्नलिखित दो क्रमों में व्यवस्थित किया जाता है–

a. तार्किक क्रम (Logical Sequence)

तार्किक क्रम व्यवस्था में अध्यापक पाठ्य–सामग्री को तर्कपूर्ण ढंग से क्रमबद्ध करता है। इसके लिए अध्यापक निम्नलिखित तीन उपागमों का प्रयोग करता हैं

I. नियम-उदाहरण उपागम (Ruleg Approach)

इस उपागम के अनुसार पहले उन फ्रेमों को रखा जाता है जिन में नियम होते हैं और इसके पश्चात् उन फ्रेमों को रखा जाता है जिनमें उन नियमों के उदाहरण होते हैं। इस उपागम को 'निगमनात्मक उपागम' (Deductive Approach) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें फ्रेमों को क्रमबद्ध करने के लिए निगमनात्मक तर्क का प्रयोग किया जाता है।

II. उदाहरण -नियम उपागम (Egrule Approach)

इस उपागम में उन फ्रेमों को पहले रखा जाता है जिनमें उदाहरण होते हैं। इसके पश्चात उन फ्रेमों को रखा जाता है जिनमें उदाहरणों द्वारा नियमों को सामान्यीकृत किया गया हो। इस उपागम को आगमनात्मक उपागम (Inductive Approach) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें फ्रेमों की क्रम–व्यवस्था के लिए आगमनात्मक तर्क का प्रयोग किया जाता है।

III. मैट्रिक्स उपागम (Matrix Approach)

इस उपागम में अधिगम बिन्दुओं तथा मुख्य प्रत्ययों की मैट्रिक्स तैयार की जाती है। मैट्रिक्स के एक सिरे पर अधिगम बिन्दु, मुख्य प्रत्यय, उप–प्रत्यय तथा सूचना बिन्दु आदि होते हैं और दूसरे पर कार्यक्रम होता है। इस प्रकार मैट्रिक्स से विषय–सामग्री और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले परिणामों का पता लगता है।

b. व्यावहारिक क्रम (Empirical Sequencing)

इस क्रम व्यवस्था में फ्रेमों को एक निश्चित क्रम में व्यावहारिक रूप से व्यवस्थित किया जाता है। यह क्रम ऐसा होता है जिससे विद्यार्थी सुगमता तथा सरलता से सीख सके।

3. अभिक्रम का सम्पादन (Editing of Programme)

अभिक्रम का मौलिक ड्राफ्ट तैयार करने के पश्चात उसका सम्पादन आवश्यक है। अभिक्रम के सम्पादन के लिए सबसे पहले विषय– विशेषज्ञ (Subject Expert) की सहायता ली जाती है। विषय–वस्तु विशेषज्ञ अभिक्रम की विषय–वस्तु की शुद्धता (Accuracy), नवीनता, (Uptodateness), शब्दावली आदि की जांच करके उसमें सुधार करता है। इसके पश्चात अभिक्रम तकनीक का सम्पादन करने के लिए अनुदेशन के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षातकनीकी विशेषज्ञ की सहायता ली जाती है। इस सम्पादन कार्य में अभिक्रम विकास की तकनीकी कमियों तथा अशुद्धियों को दूर किया जाता है। फ्रेमों की क्रम व्यवस्था, विद्यार्थियों से अपेक्षित प्रतिक्रिया आदि बिन्दुओं की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। अन्त में अभिक्रम की भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर करने के लिए भाषा विशेषज्ञ की सहायता ली जाती है।

C. परीक्षण की अवस्था (Stage of Try-out)

अभिक्रम की तैयारी एवं लिखने के बाद उसका परीक्षण किया जाता है ताकि अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किये जा सकें। अभिक्रम की सफलता के लिए अभिक्रम इकाईयों की तीन बार प्रयोगात्मक जांच की जाती है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

1. व्यक्तिगत परीक्षण (Individual Tryout) –व्यक्तिगत परीक्षण में अभिक्रम की जांच एक समय में एक विद्यार्थी पर की जाती है। जिस प्रकार के विद्यार्थियों के लिए अभिक्रम बनाया जाता है उनके प्रतिनिधि के रूप में चार–पांच विद्यार्थियों पर यह परीक्षण किया जाता है। व्यक्तिगत परीक्षण करते समय पाठ्य–सामग्री को फ्रेम कार्डों पर लिख कर व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। परीक्षण से पहले अभिक्रमक (Programmer) विद्यार्थी की मानसिकता को अनुकूल बनाता है। विद्यार्थी को यह स्पष्ट रूप से बता दिया जाता है कि उसकी परीक्षा नहीं ली जा रही बल्कि उसे अभिक्रम के संशोधन में सहायता देनी है। विद्यार्थी को कार्ड के साथ–साथ उत्तर–पुस्तिका भी दी जाती हैं। उत्तर–पुस्तिका पर विद्यार्थी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। एक कार्ड पर केवल एक ही फ्रेम होता है। कार्ड के पीछे वाले भाग पर सही प्रतिक्रियाएं लिखी होती हैं। विद्यार्थी एक–एक फ्रेम को पढ़ता है और फ्रेम सम्बन्धी कठिनाइयों एवं सुझावों को उत्तर–पुस्तिका में लिखता है। फ्रेम सम्बन्धी अपनी प्रतिक्रिया का मिलान वह कार्ड के पीछे लिखी प्रतिक्रिया से करता है।

विद्यार्थी के फ्रेम पूरा करने के पश्चात अभिक्रमक उसके साथ विचार–विमर्श करता है। वह उस की प्रतिक्रियाओं, कठिनाइयों, टिप्पणियों एवं सुझावों को रिकार्ड करता है। प्रत्येक फ्रेम पर विद्यार्थी ने जितना समय लगाया उसे भी लिख लिया जाता हैं इस प्रकार व्यक्तिगत परीक्षण के परिणामों के आधार पर अभिक्रमक अभिक्रम के प्रारूप में आवश्यक संशोधन करता है।

साधारणतः फ्रेमों में निम्नलिखित त्रुटियां पाई जाती हैं–

I. अपर्याप्त एवं अस्पष्ट सूचना (Insufficient and vague Information)

II. उद्दीपकों का अनुचित प्रस्तुतीकरण (Inappropriate placement of stimulus)

III. उद्दीपक के सन्दर्भ में असम्बन्धित अनुक्रिया (Irrelevant response to the stimulus context)

IV. सही प्रतिक्रिया तक पहुंचने में अनुबोधकों का अभाव (Lack of prompts to arrive at correct response)

V. शिक्षण फ्रेमों में अत्याधिक अनुबोधक अन्तिम फ्रेमों में अशुद्धियाँ उत्पन्न करते हैं (Too many prompts at the teaching frames cause error on terminal frames)

VI. शिक्षण एवं अभ्यास पदों में अंतर न होना (No difference between teaching and Practice frames)

2. लघु समूह परीक्षण (Small group Try-out) –व्यक्तिगत परीक्षण से प्राप्त परिणामों एवं सुझावों के आधार पर अभिक्रम का संशोधन किया जाता है। इसके पश्चात् संशोधित अभिक्रम का परीक्षण विद्यार्थियों के एक छोटे समूह पर किया जाता है। ये विद्यार्थी औसत स्तर के होने चाहिएं और इन की संख्या 5 से 10 तक होती हैं विद्यार्थी उसी कक्षा में से होने चाहिएं जिनके लिए अभिक्रम तैयार किया गया है। समूह पर परीक्षण करने से पहले विद्यार्थियों के ज्ञान एवं अधिगम स्तर का पता लगाने के लिए उन का पूर्व–परीक्षण (Pre-Test) किया जाता है। इसके पश्चात उनके सामने संशोधित अभिक्रम प्रस्तुत किया जाता है। अभिक्रमक विद्यार्थियों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हुए अनौपचारिक वातावरण में उनसे अभिक्रम के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए कहता है। विद्यार्थी प्रस्तुत अभिक्रम के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएं लिखते हैं। परीक्षण के समय अभिक्रमक विद्यार्थियों के हाव–भाव, व्यवहार तथा प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने में लिऐ गए कुल समय को नोट करता है। अभिक्रम की समाप्ति के पश्चात अभिक्रमक विद्यार्थियों का उत्तर–परीक्षण (Post-Test) करता है। पूर्व–परीक्षण एवं उत्तर–परीक्षण के परिणामों के अन्तर से अभिक्रम की प्रभावशीलता का पता लगाया जाता है। लघु समूह परीक्षण द्वारा प्राप्त होने वाले परिणामों एवं सुझावों के आधार पर अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किये जाते हैं।

3. क्षेत्र परीक्षण (Field Try-out) –लघु समूह परीक्षण के पश्चात संशोधित अभिक्रम की वास्तविक परिस्थितियों में जाँच की जाती है। क्षेत्र परीक्षण से अभिप्राय है– वास्तविक शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों में अभिक्रम का परीक्षण करना। यह कार्य अभिक्रमक के स्थान पर अध्यापक द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसके लिए 40–50 विद्यार्थियों का एक समूह चुना जाता है। इस परीक्षण का मुख्य उद्देश्य उन विशिष्ट स्थलों को चिन्हित करना होता है जिनमें और अधिक सुधार की आवश्यकता है। लघु परीक्षण की भांति इसमें भी अभिक्रमक विद्यार्थियों के ज्ञान एवं अधिगम स्तर का पता लगाने के लिए पूर्व–निर्देश देता है और संशोधित अभिक्रम उनके सामने प्रस्तुत करता है। विद्यार्थी अभिक्रम के प्रति प्रतिक्रियाएं करते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों के कार्यों का निरीक्षण करता है, कठिनाइयों के समाधान में उनकी सहायता करता है और विद्यार्थियों

द्वारा लिए गए कुल समय को नोट करता है। इसके बाद विद्यार्थियों का उत्तर–परीक्षण (Post-Test) किया जाता है। उत्तर–परीक्षण और पूर्व–परीक्षण के प्राप्ताकों के अन्तर के आधार पर विद्यार्थियों के ज्ञान व अधिगम स्तर में होने वाली वद्धि के साथ–साथ अभिक्रम की प्रभावशीलता का पता भी लगता है। क्षेत्र–परीक्षण के परिणामों के आधार पर अभिक्रम में वांछित सुधार किए जाते हैं।

D. मूल्यांकन की अवस्था Stage of Evaluation

यह अभिक्रम निर्माण की अन्तिम अवस्था है। क्षेत्र परीक्षण से प्राप्त परिणामों तथा आंकड़ों की सहायता से अभिक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन का उद्देश्य अभिक्रम की वैधता (Validity) की जाँच करके उसकी गुणवत्ता में वद्धि करना तथा उसे शिक्षण–अधिगम के क्षेत्र में प्रयोग करने के लिए एक प्रभावशाली आधार प्रदान करना हे। अभिक्रम का मूल्यांकन आन्तरिक एवं बाह्य मानदण्डों दोनों के अनुसार किया जाता है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

1. आन्तरिक मानदण्ड पर आधारित मूल्यांकन (Evaluation based on Internal Criterion) –मूल्यांकन का आन्तरिक मानदण्ड अभिक्रम के आन्तरिक तत्वों, शक्तियों एवं कमज़ोरियों से संबंधित होता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में क्षेत्र परीक्षण से प्राप्त आंकड़ों के माध्यम से निम्न चार मापों की गणना की जाती है। –

I. त्रुटि दर (Error Rate)

II. अभिक्रम घनत्व (Programme Density)

III. आरोही क्रम (Sequence Progression)

IV. फ्रेम सूची (Frame Inventory)

I. त्रुटि दर (Error Rate) –क्षेत्र परीक्षण के समय विद्यार्थियों द्वारा की गई गलत प्रतिक्रियाओं की दर त्रुटि दर कहलाती है। त्रुटि दर दो प्रकार की होती है (a) अभिक्रम त्रुटि दर (Programme Error Rate) (b) फ्रेम त्रुटि दर (Frame Error Rate)

अभिक्रम त्रुटि दर में सम्पूर्ण अभिक्रम की त्रुटियाँ सम्मिलित होती है, जबकि फ्रेम विशेष की समस्त त्रुटियाँ फ्रेम दर में सम्मिलित होती है त्रुटि दरों को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{अभिक्रम त्रुटि दर} = \frac{\text{त्रुटिया की कुल संख्या X 100}}{\text{फ्रेमों की संख्या X विद्यार्थियों की संख्या}}$$

$$\text{फ्रेम त्रुटि दर} = \frac{\text{फ्रेम विशेष की त्रुटियों का योग X 100}}{\text{विद्यार्थियों की संख्या}}$$

I. उच्चतर त्रुटि दर अभिक्रमक को यह संकेत देता है कि अभिक्रम में संशोधन की आवश्यकता है। त्रुटि दर कम होने से सदैव यह नहीं कहा जा सकता कि अभिक्रम पूर्ण रूप से सही है क्योंकि त्रुटि दर में कमी अभिक्रम के अत्याधिक आसान होने औंर अत्याधिक अनुबोधकों व उभारकों के प्रयोग के कारण हो सकती है।

II. अभिक्रम घनत्व (Programme Density) –अभिक्रम घनत्व अभिक्रम के कठिनाई स्तर का सूचक होता है। (Programme Density is an index of difficulty of a programme) अभिक्रम का सही मूल्यांकन करने के लिए कठिनाई स्तर को ज्ञात करना आवश्यक है जिसे अभिक्रम घनत्व द्वारा ज्ञात किया जाता है। अभिक्रम घनत्व का मापन टाइप टोकन अनुपात (Type Token Ratio) के रूप में किया जाता है। इस अनुपात को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\text{टाइप टोकन अनुपात (TTR)} = \frac{\text{अभिक्रम में वांछित विभिन्न प्रतिक्रियाओं की संख्या}}{\text{कुल प्रतिक्रियाओं की संख्या}}$$

उदाहरण के लिए यदि 20 फ्रेमों के अभिक्रम में विद्यार्थी कुल 16 प्रतिक्रियाएं करता है तो अभिक्रम घनत्व = 16/20 = 0.8 होता है।

अभिक्रम घनत्व का मान 0 से 1 के मध्य ही हो सकता है परन्तु 1 से अधिक नहीं हो सकता।

III. आरोही क्रम (Sequence Progression)– आरोही क्रम के मूल्यांकन से अभिप्राय अभिक्रम के भागों की तर्कयुक्त व्यवस्था के अध्ययन से हैं। इससे यह पता लगाया जाता है कि अभिक्रम के विभिन्न फ्रेमों के प्रस्तुतीकरण की क्रम व्यवस्था विद्यार्थियों के अधिगम के अनुरूप है या नहीं।

आरोही क्रम के अध्ययन की दो विधियां है–

– प्रवाह चित्र (Flow Diagram) तैयार करना।

– रैंक क्रम में विद्यार्थियों के अंकों का अध्ययन करना।

IV. फ्रेम सूची का विश्लेषण (Frame Inventory Analysis)–यह एक पूरक विधि है जिसकी सहायता से अभिक्रम में विद्यमान अतिरिक्त समस्याओं का ज्ञान होता है। इससे फ्रेमों की संरचना, उनकी क्रमव्यवस्था की उपयोगिता एवं फ्रेमों में अनुबोधकों के प्रयोग का पता चलता है। फ्रेम सूची तैयार करने के लिए विभिन्न प्रतीकों (Symbols) का प्रयोग किया जाता है।

पूर्ण अनुबोधित फ्रेम (Full Prompted Frame)

अर्द्ध अनुबोधित फ्रेम (Half Prompted Frame)

अनुबोधन रहित फ्रेम (Unprompted Frame)

सूचना फ्रेम (Information Frame)

एक फ्रेम सूची इस प्रकार हो सकती है–

फ्रेम नम्बर

यूनिट	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	सूची
क	○	⊗	●	○	◒	⊗	●	○	○	◒	नं.1
ख	●	◒	●	◒	⊗	●	○	○	◒	●	नं.2
ग	◒	●	⊗	●	⊗	○	○	⊗	●	●	नं.3

2. बाह्य मानदण्ड पर आधारित मूल्यांकन (Evaluation based on External Criteria)– बाह्य मानदण्ड पर आधारित मूल्यांकन का सम्बन्ध विद्यार्थियों की अधिगम उपलब्धि अर्थात् व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों से है। जो अभिक्रम विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को जितना ऊँचा उठाता है, उसे उतना ही ठीक माना जाता है।

बाह्य मानदण्डों पर आधारित मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित मापनों का प्रयोग किया जाता है–

I. निष्पत्ति स्तर (Performance Level)

II. 90/90 स्तर मानदण्ड (90/90 Standard Criterion)

III. उपलब्धि अनुपात (Gain Ratio)

IV. अभिवत्ति गुणांक (Attitude Coefficient)

I. विद्यार्थियों का निष्पत्ति स्तर – अभिक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन विद्यार्थी के निष्पत्ति स्तर से किया जाता है। उत्तर परीक्षण (Post-Test) में विद्यार्थियों के प्राप्ताकों का मध्यमान (Mean) निकाला जाता है और इसे प्रतिशत में बदल दिया जाता है।

उदाहरण –यदि एक उत्तर परीक्षण में 30 प्रश्न हैं और विद्यार्थियों के प्राप्त अंकों का मध्यमान 24 है। इस मध्यमान का प्रतिशत है 80% अर्थात् अभिक्रम प्रभावशाली है।

II. 90/90 स्तर मानदण्ड– इस मानदण्ड का प्रयोग यह जानने के लिये किया जाता है कि विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हुई या नहीं। इस स्तर से अभिप्राय है कि उत्तर परीक्षण में 90% विद्यार्थी 90% अंक अवश्य प्राप्त करें अथवा विद्यार्थी 90% फ्रेमों के सही उत्तर देने में सक्षम हों।

III. उपलब्धि अनुपात–यह अभिक्रम की कार्यकुशलता का सर्वोत्तम माप है। उपलब्धि अनुपात से अभिप्राय है वास्तविक उपलब्धि तथा अपेक्षित उपलब्धि का अनुपात। इससे हमें विद्यार्थियों की सीखने की संभावनाओं में से सीखे गये ज्ञान का पता लगता है।

$$\text{उपलब्धि अनुपात} = \frac{\text{उत्तर–परीक्षण व पूर्व–परीक्षण प्राप्ताकों के अन्तर का औसत}}{\text{उत्तर–परीक्षण पूर्णांक और पूर्व–परीक्षण पूर्णाकों के अन्तर का औसत}}$$

$$= \frac{\text{Mean of (Post-test scores —Pre-test Scores)}}{\text{Mean of (Full Marks of Post test —Pre test scores)}}$$

IV. विद्यार्थियों की अभिवत्ति का मापन –अभिक्रम के प्रति विद्यार्थियों की अभिवत्तियों के मापन से भी अभिक्रम का सही मूल्यांकन किया जाता है। इसमें एक अभिवत्ति मापनी (Attitude scale) का निर्माण किया जाता है जिससे अभिक्रम के प्रति विद्यार्थियों की अभिवत्तियों को ज्ञात किया जाता है। इस मूल्यांकन में अधिक वस्तुनिष्ठता लाने के लिए व्यवस्थापक प्राप्त आंकड़ों के आधार पर अभिवत्ति गुणांक (Coefficient of Attitude) की गणना करता है। अभिवत्ति गुणांक निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जाता है –

$$\text{अभिवत्ति गुणांक} = \frac{\text{Fyes -Fno}}{\text{Fyes + F? + Fno}}$$

Fyes = हाँ प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

Fno = नहीं प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

F? = अनिश्चयपूर्ण प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

अपनी प्रगति जांचिए

(i) अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं के नाम बताओ।

(ii) स्व अधिगम सामग्री से क्या अभिप्राय है?

(iii) उपलिब्ध अनुपात का सूत्र लिखिए।

1.6 सारांश

इस अध्याय में हमने पढा कि स्व अधिगम सामग्री ऐसी सामग्री है जिसमें अधिगमकर्त्ता या विद्यार्थी अपनी स्वयं की गति एवं क्षमताओं के अनुरूप अधिगम करता है और अपनी ज्ञान–प्राप्ति का बोध भी करता है। स्व अधिगम सामग्री का निर्माण स्किनर द्वारा प्रतिपादित 'आपरेन्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया' के आधार पर किया जाता है। स्किनर के इस सिद्धान्त का प्रयोग

अभिक्रमित अनुदेशन के रेखीय अभिक्रम के निर्माण के लिए किया जाता है। रेखीय अभिक्रम में विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार से अंतिम व्यवहार तक एक सरल रेखा में अधिगम करता है। रेखीय अभिक्रम में पाठ्यवस्तु को छोटी–छोटी इकाइयों अर्थात् फ्रेमों में बांटा जाता है। इन फ्रेमों को सरल से कठिन के क्रम में व्यवस्थित किया जाता हैं प्रत्येक फ्रेम के अन्त में फ्रेम से सम्बन्धित एक प्रश्न दिया जाता है जिसका उत्तर दूसरे फ्रेम के आरम्भ में दिया जाता है जिससे अधिगमकर्त्ता को प्रतिपुष्टि मिल सके। अभिक्रम का निर्माण चार अवस्थाओं में किया जाता है–तैयारी, लेखन, परीक्षण एवं मूल्यांकन।

अभिक्रम की तैयारी में पाठ्यवस्तु का चयन, पाठ्यवस्तु की रूपरेखा तैयार करना, उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना, प्रारम्भिक व्यवहार को परिभाषित करना एवं मानदण्ड परीक्षण का निर्माण आदि सम्मिलित होते हैं। अभिक्रम की लेखन अवस्था में पाठ्य सामग्री को पहले विभिन्न फ्रेमों में बांटा जाता है। इसके पश्चात् इन फ्रेमों की व्यावहारिक क्रम में व्यवस्थित करके इनका संपादन किया जाता है। अभिक्रम का परीक्षण करने के लिए उसे विभिन्न प्रयोगात्मक परीक्षणों से गुजारा जाता है। परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किए जाते हैं। अंत में अभिक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के मानदण्डों के अनुसार किया जाता है।

मॉडल उत्तर

1. तैयारी की अवस्था, लेखन की अवस्था, परीक्षण की अवस्था तथा मूल्यांकन की अवस्था

2. स्व अधिगम सामग्री से अभिप्राय ऐसी सामग्री से है जिसका उपयोग करके विद्यार्थी स्वयं की गति से अधिगम करता है और अपनी ज्ञान प्राप्ति का बोध भी करता है।

3. उपलब्धि अनुपात = $\frac{\text{उत्तर परीक्षण एवं पूर्व परीक्षण प्राप्तकों के अंतर का औसत}}{\text{उत्तर परीक्षण पूर्णांक और पूर्व परीक्षण पूर्णांकों के अंतर का औसत}}$

1.7 मुख्य शब्द

स्व-अधिगम–अपनी गति एवं क्षमता के अनुरूप स्वयं सीखने की प्रक्रिया।

प्रारंभिक व्यवहार–शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थी की व्यवहार ज्ञान, कौशल, बोध आदि।

अंतिम व्यवहार–शिक्षण की समाप्ति के पश्चात विद्यार्थी का व्यवहार।

अभिक्रमित अधिगम–वह प्रक्रिया जिसमें अभिक्रमित अनुदेशनात्मक सामग्री का प्रयोग करके विद्यार्थी स्वयं अधिगम करें।

अभिक्रमित अनुदेशन–वह प्रक्रिया जिसमें अध्यापक अधिगम सामग्री को क्रमिक पदों की श्रंखला में व्यवस्थित करके विद्यार्थी को स्व अधिगम के लिए प्रेरित करता है।

अनुबोधक–अभिक्रम के प्रकार्यात्मक तत्व जिनका परिपूरक उद्दीपक के रूप में शिक्षण फ्रेमों में प्रयोग किया जाता है जिससे विद्यार्थी शुद्ध अनुक्रिया कर सकें।

सुधारात्मक शिक्षण–वह शिक्षण जो विद्यार्थियों की अधिगम संबंधी कठिनाइयों को दूर करने के लिए किया जाता है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Chuhan, S.S. 'A text Book of Programmed Instruction'.

Markle, Surtan Meyer 'Good Frames & Bad–A Grammer of Frame Writing', John Wiley and Sons.

शर्मा, आर०ए० 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ

इकाई-IV(a)

अध्याय-1: व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि (Lecture-cum-Demonstration Method)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि का स्वरूप बता सकेंगे।
- व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के संचालन से सम्बन्धित विभिन्न चरणों की व्याख्या कर सकें।
- व्याख्यान–प्रदर्शन पाठ में की जाने वाली सामान्य भूलों की सूची बना सकें।
- व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के गुण एवं दोषों का वर्णन कर सकें।

संरचनाः

1.1 प्रस्तावना
1.2 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि
1.3 व्याख्यान प्रदर्शन विधि का संचालन
1.4 व्याख्यान–प्रदर्शन पाठ में सामान्य भूलें
1.5 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के गुण
1.6 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के दोष
1.7 सारांश
माडॅल उत्तर
1.8 मुख्य शब्द
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक शिक्षण (Methodology) का उद्‌गम जॉन एमॉस कोमेनिसय के महान ग्रन्थ 'ग्रेट डाइडेक्टिक' (Great Didactic) से हुआ है। उसके अनुसार सम्पूर्ण अनुदेशन प्राकृतिक क्रम में श्रेणीबद्ध एवं व्यवस्थित किया जाना चाहिए। अध्यापक को अध्यापन कार्य करते समय विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों को जाग्रत करके ज्ञान एवं समझ को विकसित करना चाहिए। कोमोनियस ने वैज्ञानिक ढंग से शिक्षण–विधि का वर्णन किया है। वास्तव में विज्ञान एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास के साथ–साथ नई शिक्षण–विधियों का अविष्कार हुआ है। विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की शिक्षण–विधियों का प्रतिपादन किया है। इन विधियों में से भौतिक विज्ञान शिक्षण में प्रयोग की जाने वाली तीन विधियों का वर्णन इस इकाई में किया गया है। इस अध्याय में हम व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के स्वरूप, गुणों एवं दोषों के बारे में पढेंगे।

1.2 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि (Lecture-cum-Demonstration Method)

व्याख्यान एवं प्रदर्शन दोनों विधियों की अपनी–अपनी सीमायें हैं। व्याख्यान अथवा भाषण (Lecture) विधि में मुख्य दोष यह है कि यह एक पक्षीय–प्रक्रिया है और इसमें विद्यार्थियों की पूर्णतया अवहेलना कर दी जाती है। प्रदर्शन विधि में अध्यापक का पूरा ध्यान विषय–वस्तु को प्रदर्शन द्वारा समझाने एवं प्रदर्शन (Demonstration) को सफल बनाने की ओर रहता है। इन दोनों विधियों के दोषों को दूर करने एवं गुणों को प्रभावशाली बनाने के लिए इन विधियों से सम्मिलित रूप से पढ़ाया जाता है जिसे व्याख्यान–प्रदर्शन विधि अथवा व्याख्यान–युक्त प्रदर्शन विधि के नाम से जाना जाता है। इस विधि में अध्यापक कक्षा में विद्यार्थियों को प्रकरण सम्बन्धी जानकारी देता है, प्रयोग करता है और इसी के साथ–साथ वह विद्यार्थियों से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछता है। इस विधि में विद्यार्थी सभी वस्तुओं को सावधानीपूर्वक देखने के लिए बाध्य हो जाते हैं क्योंकि उन्हें प्रयोग के प्रत्येक चरण को ठीक–ठीक व्याख्या करनी पड़ती है और साथ ही निष्कर्ष भी निकालने होते हैं। विद्यार्थी इस विधि में सक्रिय भाग लेते हैं तथा उनका सहयोग आवश्यक भी होता है। भौतिक विज्ञान–शिक्षण के लिये यह विधि विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि इसके बिना प्रायोगिक कार्य असंभव प्रतीत होता है।

व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का प्रतिपादन एवं विकास इस धारणा के साथ किया गया कि विद्यार्थियों में विज्ञान–शिक्षण के प्रति रूचि और आश्चर्य उत्पन्न करने के लिये उनके सामने अनेकों प्रदर्शन करके दिखाये जाए जिससे विद्यार्थियों को यह विश्वास हो जाए कि अध्यापक विषय वस्तु से सम्बन्धित जिन तथ्यों, नियमों अथवा सिद्धांतों आदि का वर्णन कर रहा है वे सत्य हैं। इससे विद्यार्थी जो कुछ देख रहे होते हैं, उसे भली–भांति स्मरण भी रख सकते हैं। परन्तु इसके पश्चात् विज्ञान शिक्षकों ने यह महसूस किया कि यदि विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से प्रयोगशाला में प्रयोग करे तो इससे वह शीघ्र तथा प्रभावशाली ढंग से सीखेगा। इस सम्बन्ध में कई अनुसंधान किये गए हैं परन्तु यह स्थापित नहीं हो पाया कि कौन सी विधि श्रेष्ठ है। इस क्षेत्र में किये विभिन्न अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप यह तथ्य स्पष्ट हुआ है कि व्याख्यान–प्रदर्शन विधि सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो सकती है यदि प्रदर्शन कार्य सुनियोजित हो और अध्यापक ने उसका भली–भांति अभ्यास कर लिया हो।

1.3 व्याख्यान युक्त-प्रदर्शन विधि का संचालन (Conduct of Lecture-cum-Demonstration Method)

व्याख्यान–प्रदर्शन विधि में निम्नलिखित चरण हैं–

1. ***योजना एवं तैयारी (Planning and Preparation)*** – यह व्याख्यान–प्रदर्शन का सबसे पहला चरण है। इसमें व्याख्यान–प्रदर्शन की योजना बनाई जाती है और योजना के अनुरूप तैयारी की जाती है। तैयारी करते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए–

   – विषय–वस्तु (Subject-matter)
   – पाठ–संकेत अथवा पाठ–सम्बन्धी नोट्स (Lesson-notes)
     (इसके पूछे जाने वाले प्रश्न भी सम्मिलित होते हैं।)
   – आवश्यक उपकरणों का सकंलन
   – प्रयोगों की रिहर्सल (Rehersal of Experiments)

   (a) *विषय–वस्तु (Subject-matter)* – अध्यापक को विषय–सामग्री को पूर्ण रूप से तैयार कर लेना चाहिए। सम्बन्धित विषय का पूर्ण परिचय होने पर भी अध्यापक को विद्यार्थियों की पाठ्य–पुस्तकों में से सम्बन्धित पष्ठ अवश्य पढ़ने चाहिए जिससे वह अपने शिक्षण बिन्दु पर केन्द्रित रह सके।

(b) *पाठ–योजना (Lesson-plan)* – पाठ–योजना बनाना एक आवश्यक कार्य है। इसके अन्तर्गत वे सिद्धान्त सम्मिलित होने चाहिएं जिनकी व्याख्या की जानी है। अध्यापक को यह पहले से सोच लेना चाहिए कि पाठ को किस तरह प्रस्तुत करना है; कौन से प्रयोगों का प्रदर्शन किया जाना है, विद्यार्थियों से कौन से प्रश्न पूछे जायेंगे एवं किस क्रम में पूछे जायेंगे। इससे पाठ व्यवस्थित रूप से संचालित हो सकेगा। उचित ढंग से तैयार पाठ–योजना से विद्यार्थियों का अभिप्रेरित करने में सहायता मिलती है।

(c) *प्रयोगों की रिहर्सल (Rehersal of Expriments)* – प्रदर्शन के सभी पहलुओं की एक बार रिहर्सल कर लेनी चाहिए। जिससे प्रयोग–प्रदर्शन कक्षा में सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सके। यदि कक्षा में प्रयोग सफल नहीं होता तो इससे विद्यार्थियों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

(d) *उपकरणों का सकंलन एवं उचित व्यवस्था (Collection and Arrangement of Apparatus)* – प्रदर्शन से सम्बन्धित प्रत्येक उपकरण को समय से पूर्व इकट्ठा कर लेना चाहिए और उन्हें प्रदर्शन मेज पर ठीक ढंग से व्यवस्थित करके रखना चाहिए जिससे प्रयोग की प्रक्रिया में कोई कठिनाई उत्पन्न न हो और वह उचित रूप से सम्पन्न हो सके।

2. ***पाठ की प्रस्तावना (Introduction of Lesson)*** – पाठ को प्रस्तुत करने से पूर्व विद्यार्थियों को मानसिक रूप से तैयार करना व अभिप्रेरित करना आवश्यक है। इसके लिये पाठ को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करना चाहिए। विद्यार्थी की विषय में उत्साह एवं रूचि जाग्रत करने के लिए पाठ को समस्यात्मक (Problematic) ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापक पाठ को किसी व्यक्तिगत अनुभव अथवा घटना या किसी रोचक कहानी द्वारा आरम्भ किया जा सकता है। कहा जाता है 'Well begin is half done' अर्थात् उचित रूप से आरम्भ किया गया कार्य आधा सम्पन्न हो जाता है इसीलिए पाठ को उचित रूप से आरम्भ करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों की रूचि पाठ में बनी रहे।

उदाहरण:

(i) *कार्बन डाई–ऑक्साइड (Carbondioxide)* – कार्बन डाई–ऑक्साइड गैस के प्रकरण की प्रस्तावना करने के लिए अध्यापक कक्षा में सोड़े की एक बोतल खोलकर उसमें से निकलती हुई गैस के बारे में पूछकर प्रकरण को प्रस्तावित कर सकता है।

(ii) *हाइड्रोजन (Hydrogen)* – हाइड्रोजन गैस प्रकरण की प्रस्तावना करने के लिए अध्यापक कक्षा में दो गुब्बारें ले जा सकता है जो एक ही रंग तथा आकार के हों। एक गुब्बार। हवा से भरा हो तथा दूसरा हाइड्रोजन गैस से। जब दोनों गुब्बारों को एक साथ छोड़ा जाए तो एक ऊपर की ओर जाएगा और दूसरा नीचे की ओर। इसका कारण क्या है?

(iii) *रासायनिक अभिक्रियाएं (Chemical Reactions)* – इस प्रकरण की प्रस्तावना करने के लिये अध्यापक विद्यार्थियों को घर या विद्यालय में की जाने वाली सफेदी (white washing) की प्रक्रिया का प्रत्यास्मरण करवा सकता है अथवा कुछ जंग लगी एवं कुछ बिना जंग लगी कीलें दिखा सकता है।

3. ***पाठ का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Subject-matter)*** – पाठ को उचित रूप से प्रस्तावित करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों की पूरे पाठ में रूचि बनी रहे। इसके लिये पाठ को व्यापक रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। पाठ में व्यापकता का समावेश करने के लिये अध्यापक को अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर विषय से सम्बन्धित दष्टान्त तथा सामग्री का चयन करना चाहिए। जहां व्यवाहारिक हो, अध्यापक वैज्ञानिकों के नाम तथा उनके द्वारा किये प्रयोगों तथा उनकी उपलब्धियों का उल्लेख कर सकता है। इससे विद्यार्थियों को प्ररेणा मिली है। उदाहरण के लिये आर्किमिडीज़ (Archimides) का नियम समझाते समय अध्यापक विद्यार्थियों को इस नियम की खोज से सम्बन्धित परिस्थितियों की जानकारी दे सकता है। विद्यार्थियों को यह

बताया जा सकता है कि आर्किमिडीज़ नहाने के लिये जब एक सार्वजनिक स्नानघर में गया। उसने देखा कि बच्चे के बाथ टब में घुसने पर थोड़ा सा पानी बाहर गिरता है। इस प्रक्रिया ने आर्कमिडीज़ को 'Law of floating Bodies' प्रतिपादित करने का आधार प्रदान किया और वह खुशी के अतिरेक में लगभग नग्न अवस्था मे स्नानघर से बाहर निकलकर सड़क पर Eureka! Eureka! कहते हुए दौड़ने लगा (Eureka – I got it!)

प्रस्तुतीकरण के दौरान सुविचिरित, सरल एवं स्पष्ट प्रश्न पूछने चाहिए। प्रश्नों की संरचना इस प्रकार की जानी चाहिए कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपने आप में शिक्षण की एक पूर्ण इकाई हो। यह भी संभव है कि प्रश्नों के वांछित उत्तर प्राप्त न हों परन्तु प्रश्नों द्वारा विद्यार्थियों से अज्ञात को जाने की इच्छा जाग्रत होना ही पर्याप्त है प्रस्तुतीकरण करते समय अध्यापक का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए। निरर्थक एवं अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अध्यापक को प्रभावशाली ढंग से बोलना चाहिए। उसकी आवाज न तो बहुत अधिक ऊंची होनी चाहिए और न ही बहुत धीमी। उसकी आवाज में कथनों के अनुरूप उतार–चढ़ाव होने चाहिए।

4. ***प्रयोगीकरण (Performance of Experiments)*** – प्रदर्शन–मेज पर किया गया कार्य अर्थात् प्रयोग विद्यार्थियों के लिये आदर्श होना चाहिए। अस्वच्छ प्रयोग–प्रदर्शन विद्यार्थियों पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। प्रयोग–प्रदर्शन करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

(a) **सरल प्रयोग** (Simple Experiments)

प्रयोग सरल एवं तेज़ गति से चलने चाहियें। जटिल उपकरणों से लम्बे समय तक चलने वाले प्रयोग से प्रदर्शन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिये–'लोहे को वायु एवं नमी की उपस्थिति में जंग लगना' जैसे लम्बे प्रयोग छोड़ देने चाहिएं।

(b) प्रयोग का उचित समय (Appropriate time of Experiment)

प्रयोग उचित समय पर किया जाना चाहिए। सभी प्रयोग पाठ के प्रारम्भ में करना उचित प्रभाव नहीं डालता।

(c) स्पष्ट परिणाम (Clear Results)

प्रयोगों के परिणाम स्पष्ट तथा प्रभावशाली होने चाहिए। अध्यापक को अनुचित साधनों द्वारा कोई प्रयोग सफल करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

प्रयोग विषय से सम्बन्धित होना चाहिए और इससे विद्यार्थियों को विषयवस्तु स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलनी चाहिए।

(d) उपकरणों का क्रम (Sequence of Apparatus)

उपकरणों को उसी क्रम में प्रदर्शन मेज पर रखा जाना चाहिए जिस क्रम में उनका प्रयोग किया जाना है।

5. ***चॉक पट्ट कार्य (Chalkboard Work)*** – चाक–बोर्ड का प्रयोग बहुत ही कुशलतापूर्वक होना चाहिए। चाक–बोर्ड पर लिखा गया सारांश (Summary) संक्षिप्त एवं सुगम होना चाहिए। शीर्षक एवं मुख्य बिन्दु बड़े–बड़े शब्दों में लिखे जाने चाहिए। ब्लैक बोर्ड पर शब्द शुद्ध रूप में लिखे जायें तथा जहाँ आवश्यक हो, वहाँ रंगीन चॉक का प्रयोग करना चाहिए। ब्लैक बोड पर लेख साफ, स्पष्ट एवं पठनीय होना चाहिए। शब्दों के ऊपर शब्द नहीं लिखे जाने चाहिये और न ही ब्लैक बोर्ड पर अस्पष्ट एवं तिरछे शब्द लिखने चाहिए। आवश्यकतानुसार रेखाचित्र तथा आकृतियाँ भी बनाई जानी चाहिए। ब्लैक बोर्ड पर सदा सीधी पंक्तियों में बायीं से दायीं ओर लिखना चाहिए। एक पंक्ति के समाप्त होने से पूर्व दूसरी पंक्ति आरम्भ नहीं करनी चाहिए।

विद्यार्थी प्रायः अध्यापक की नकल करते हैं अध्यापक चॉक बोर्ड पर जितना सुन्दर अथवा असुन्दर लिखेगा, विद्यार्थी भी उसी प्रकार के लेखन का अनुसरण करेंगे। चॉक पट्ट के संक्षिप्त विवरण विद्यार्थियों के लिये

बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि इनमें प्रयुक्त भाषा विद्यार्थियों की अपनी होती है। इससे विद्यार्थियों को नोट्स बनाने में सहायता मिलती है। अध्यापक को रेखाचित्रों का उचित रूप से नामांकन करना चाहिए।

1.4 व्याख्यान-प्रदर्शन पाठ में सामान्य भूलें (Common Errors in Lecture-demonstration Lesson)

व्याख्यान युक्त प्रदर्शन पाठों में की जाने वाली कुछ सामान्य भूलें निम्नलिखित हैं:

1. प्रयोग के लिए आवश्यक उपकरण तैयार न रखना।
2. अध्यापक का इस बिन्दु को स्पष्ट करने में असफल होना कि प्रयोग पाठ में ली गई समस्या को कैसे स्पष्ट करता है।
3. अध्यापक का प्रयोग के आवश्यक तथ्यों की ओर विद्यार्थियों को आकर्षित न कर सकना।
4. चाक–बोर्ड का उचित प्रयोग न करना।
5. मुख्य बातों की अपेक्षा छोटी–छोटी बातों को अधिक महत्व देना।
6. अध्यापक द्वारा कठिन भाषा का प्रयोग।
7. उचित प्रश्न न पूछना एवं प्रश्नों को उचित ढंग से न पूछना।
8. विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता न लेना।
9. अध्यापक का आवश्यकता से अधिक या कम बोलना।
10. निगमन विधि का उचित ढंग से प्रयोग न करना।
11. प्रदर्शन की रिहर्सल न करना।
12. विद्यार्थियों को संकलित सामग्री का रिकार्ड रखने के लिए पर्याप्त समय न देना।

1.5 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के गुण (Merits of Lecture-cum-Demonstration Method)

1. यह विधि भारतीय विद्यालयों एवं परिस्थितियों के अनुरूप सबसे अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी है। विद्यार्थी विज्ञान को प्रयोग के द्वारा सीखें परन्तु भारतीय विद्यालयों में प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से प्रयोग करने की सुविधा देना संभव नहीं है इसलिए यह विधि अधिक उपयुक्त है।
2. इस विधि में विद्यार्थी केवल निष्क्रिय श्रोता या मूक दर्शक बनकर नहीं बैठे रहते तथा अध्यापक भी केवल शब्दों की बौछार नहीं करता। अध्यापक पाठ्यविषय को पढ़ाने के साथ–साथ उससे संबंधित सभी आवश्यक प्रयोग स्वयं करके दिखाता है। विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए ही विभिन्न प्रकार के उपकरणों, प्रयोगों और क्रियाओं को देखते रहते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार उनसे प्रदर्शन में सहायता लेता रहता है और प्रश्न भी पूछता रहता है।
3. इस विधि में विद्यार्थियों को प्रयोग तथा प्रदर्शन सामग्री को ध्यानपूर्वक देखते रहना पड़ता है। इससे उनकी निरीक्षण, तर्कशक्ति तथा विचारशक्ति आदि मानसिक शक्तियों को विकसित करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।
4. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने एवं वैज्ञानिक ढंग से सोचने की क्षमता का

विकास करने में सहायता मिलती है।

5. यह विधि मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों को किसी चीज़ की कल्पना नहीं करनी पड़ती, अपितु उन्हें ठोस चीजें तथा जीवित नमूने दिखाये जाते हैं। इससे उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव (Direct Experiences) प्राप्त होते हैं और विज्ञान में उनकी रूचि जाग्रत होती है।

6. यह विधि कम खर्चीली (Economical) है। यह समय तथा संसाधनों की बचत करने में सहायता करती है। ऐसे प्रयोगों में जिनके लिये मंहगे उपकरणों अथवा रसायनों की आवश्यकता होती है, यह विधि विशेष रूप से सहायक है। इस विधि में कक्षा समय में ही प्रयोग किये जा सकते हैं जिससे समय की बचत होती है।

7. यह विधि मध्यवर्गीय, मन्दबुद्धि तथा बुद्धिमान – सभी प्रकार के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती हैं।

8. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को स्पष्ट एवं स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है। इससे विद्यार्थी विज्ञान के कठिन प्रसंग आसानी से समझ सकते हैं। विद्यार्थी जो कुछ सुनते हैं, उसे प्रत्यक्ष रूप में देखते भी हैं तथा अपनी मानसिक शक्तियों का पूरी तरह से उपयोग करते हुए सक्रिय होकर ज्ञान प्राप्ति में भाग लेते हैं। इससे एक ओर तो ज्ञान को ग्रहण करने में आसानी होती है और दूसरी ओर प्राप्त किया ज्ञान स्थायी एवं उपयोगी भी होता है।

1.6 व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के दोष (Demerits of Lecture-cum-Demonstration Method)

1. इस विधि में विद्यार्थी स्वयं प्रयोगात्मक कार्य करने से वंचित रह जाता है। इसलिए उनमें प्रयोग करने तथा स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता का विकास नहीं हो पाता।

2. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की अवहेलना करती है। 'करके सीखो' (Learning by doing) शिक्षण का प्रमुख सिद्धान्त है परन्तु इस विधि में विद्यार्थियों को स्वयं प्रयोग करने का अवसर नहीं मिलता। इस विधि में कक्षा का वातावरण सक्रिय रहता है परन्तु यह सक्रियता अध्यापक की ओर से होती है।

3. इस विधि द्वारा प्रयोग प्रदर्शन के पश्चात् विद्यार्थियों के मन में जिज्ञासा पूर्ववत बनी रहती है। उन्हें स्वयं प्रयोग करके सीखने का अवसर न मिलने से उनकी अन्वेषणात्मक व रचनात्मक प्रवत्तियों का उचित रूप से विकास नहीं होता।

4. इस विधि द्वारा प्रयोगशाला सम्बन्धी कौशलों का उचित विकास नहीं होता।

5. इस विधि में यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थी व्याख्यान को उचित रूप से सुन रहे हों और प्रदर्शन को समझ रहे हों।

6. इस विधि के सफल होने के लिए अध्यापक के पास तैयारी के लिए पर्याप्त समय एवं प्रदर्शन के लिए पर्याप्त सामग्री का उपलब्ध होना आवश्यक है। परन्तु भारतीय विद्यालयों में अध्यापकों पर प्रशिक्षण के अतिरिक्त बहुत से कार्यों का बोझ होता है जिससे उनमें न तो प्रदर्शन के लिए उत्साह होता है और न ही समय।

7. इस विधि का प्रयोग करने के लिए सक्रिय एवं अनुभवी अध्यापकों की आवश्यकता होती है। परन्तु दुर्भाग्यवश केवल वही लोग अध्यापन कार्य को अपनाते हैं जो जीवन में किसी क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। ऐसे निरुत्साही अध्यापकों के कारण पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया प्रभावित होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।

(ii) व्याख्यान–प्रदर्शन पाठ में अध्यापक को क्या सावधानियां रखनी चाहिएं?

1.7 सारांश

इस अध्याय के अध्ययन से हमने जाना – व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि एक मिश्रित विधि है जिसमें व्याख्यान विधि के दोषों को दूर करके प्रदर्शन द्वारा प्रभावशाली बनाया जाता है। इसमें अध्यापक कक्षा में विद्यार्थियों से सम्बन्धित जानकारी देता है, प्रयोग करता है और साथ ही विद्यार्थियों से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछता है। इस विधि में विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता न रहकर सक्रिय भाग लेते हैं। इस विधि के मुख्य चरण–योजना एवं तैयारी, पाठ की प्रस्तावना, पाठ का प्रस्तुतीकरण, प्रयोगीकरण तथा चाकपट्ट कार्य हैं। प्रयोग प्रदर्शन से पूर्व अध्यापक को उचित रूप से नियोजन एवं अभ्यास कर लेना चाहिए। पाठ का प्रस्तुतीकरण करने के लिए अध्यापक उदाहरणों, सहायक सामग्री, प्रश्नों आदि की सहायता ले सकता हैं। प्रयोग प्रदर्शन के लिए अध्यापक को सरल एवं तेज गति से होने वाले प्रयोगों का चयन करना चाहिए। प्रयोगों के परिणाम स्पष्ट तथा प्रभावशाली होने चाहिए। प्रयोग–प्रदर्शन के परिणाम, मुख्य बिन्दु, निष्कर्ष आदि को चाकपट्ट पर लिखा जाना चाहिए। यह विधि आधुनिक भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक, मितव्ययी, उपयोगी, मनोवैज्ञानिक, विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को स्थान देने वाली तथा मानसिक शक्तियों के विकास में सहायक हैं।

मॉडल उत्तर

(i) व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि के मुख्य चरण निम्नलिखित हैं–योजना एवं तैयारी, पाठ की प्रस्तावना, पाठ का प्रस्तुतीकरण, प्रयोगीकरण तथा चाकपट्ट कार्य। इनकी व्याख्या के लिए 1.3 में देखें।

(ii) व्याख्यान–प्रदर्शन पाठ में अध्यापक को निम्न सावधानियां रखनी चाहिएं–

- प्रयोग प्रदर्शन का उचित रूप से नियोजन एवं अभ्यास किया जाए।
- सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रश्न कौशल का उचित प्रयोग।
- चाक पट्ट का उचित उपयोग।
- विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेना।
- प्रयोग के आवश्यक तथ्यों की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करना।

1.8 मुख्य शब्द

शिक्षण विधि–अध्यापक द्वारा अनुदेशन को विशेष क्रम में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया

व्याख्यान युक्त प्रदर्शन–वह शिक्षण विधि जिसमें अध्यापक प्रयोग–प्रदर्शन करके विषय विधि से सम्बन्धित व्याख्यान को प्रभावशाली बनाता है।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi.

Mangal, S.K. 'Teaching of Physical & Life Science', Arya Book Depot, New Delhi.

Soni, Anju 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludiana.

इकाई-IV(a)

अध्याय-2: प्रोजेक्ट विधि (Project Method)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- प्रोजेक्ट का अर्थ एवं विशेषताएं बता सकें।
- प्रोजेक्ट विधि के स्वरूप से परिचित हो सकें।
- प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।
- प्रोजेक्ट विधि के चरणों की व्याख्या कर सकें।
- प्रोजेक्ट विधि के गुण एवं दोष बता सकें।
- कुछ प्रोजेक्ट कार्यों की सूची बना सकें।
- प्रोजेक्ट विधि में अध्यापक की भूमिका का वर्णन कर सकें।

संरचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रोजेक्ट का अर्थ एवं विशेषताएं
2.3 प्रोजेक्ट विधि का स्वरूप
2.4 प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धान्त
2.5 प्रोजेक्ट विधि के चरण
2.6 प्रोजेक्ट विधि के गुण
2.7 प्रोजेक्ट विधि के दोष
2.8 कुछ प्रोजेक्ट कार्य
2.9 प्रोजेक्ट विधि में अध्यापक की भूमिका
2.10 सारांश
आदर्श उत्तर
2.11 मुख्य शब्द
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

प्रोजेक्ट विधि प्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षाशास्त्री जॉन डेवी (John Dewey) के प्रयोजनवाद पर आधारित है। इस विधि के प्रवर्तक जॉन डेवी के शिष्य, कोलंबिया यूनिवर्सिटी के डॉ. विलियम. एच. किलपैट्रिक (Dr. William Heard Kilpatrick) थे एवं श्री जे.ए. स्टीवेन्सन (Prof. J.A. Stevenson) ने इसे पूर्णता प्रदान की।

डेवी के अनुसार जो कार्य भोजन ग्रहण तथा सन्तानोत्पादन की क्रिया शारीरिक जीवन के लिए करती है, वही कार्य सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा करती है। शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक है अर्थात् व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में रखकर ही शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जा सकता है। इसीलिए डेवी ने विद्यालय को समुदाय का एक अभिन्न अंग माना है। परन्तु विद्यालय में जिन बहुत से विषयों की शिक्षा दी जाती है तथा जिस प्रकार का योजना रहित वातावरण होता है वह बाह्य संसार में वांछित सामाजिक जीवन से मेल नहीं खाता। प्रयोजन विधि इस पुस्तकीय तथा अकर्मण्य पद्धति एक खुला विद्रोह है क्योंकि इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को सावधानीपूर्वक प्रशिक्षित किया जाता है। उन्हें वास्तविक जीवन से सम्बन्धित बातों का उचित रूप से ज्ञान करवाया जाता है जिससे वे श्रेष्ठ सामाजिक जीवनयापन कर सकें तथा सामाजिक विकास में योगदान दे सकें।

2.2 प्रोजेक्ट का अर्थ एवं विशेषताएं (Meaning and Characteristics of Project)

प्रोजेक्ट विधि के स्वरूप को समझने से पूर्व प्रोजेक्ट का अर्थ समझना आवश्यक है। प्रोजेक्ट के अर्थ को समझाने के लिए विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने इसकी अपने–अपने ढंग से व्याख्या की है। कुछ मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

1. डॉ. विलियम किलपैट्रिक के अनुसार, "प्रोजेक्ट अथवा प्रयोजन एक तन्मयतापूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण क्रिया है जिसका सामाजिक वातावरण में विकास होता है।"
   "A project is a whole-hearted purposeful activity proceeding in a social environment."
   –Dr. William Heard Kilpatrick

2. प्रो. जे.ए. स्टीवेन्सन के अनुसार, "प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है जो अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों में पूर्णता को प्राप्त करता है।"
   "A project is a problematic act carried to completion in its natural setting."
   –Prof. J.A. Stevenson

3. बेलार्ड के अनुसार, "प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन का वह छोटा सा भाग है जिसे विद्यालय में लाया गया है।"
   "A project is a bit of real life that has been imported in school."
   –Ballard

4. स्नेडेन के अनुसार, "प्रोजेक्ट शिक्षात्मक कार्य की वह कड़ी है जिसका महत्वपूर्ण तत्व है निश्चित तथा ठोस निष्पत्ति।"
   "A project is that part of educational act whose important element is specific and solid performance."
   –Snedden

इन परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर प्रोजेक्ट की निम्नलिखित विशेषताएं कही जा सकती हैं–

1. ***समस्यामूलक क्रियाशीलता (Problematic Activity)***

   प्रोजेक्ट का आधार एक समस्या होती है जिसके परिणामस्वरूप क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। किसी समस्या का समाधान ढूंढने के लिए प्रोजेक्ट की रचना की जाती है और उसी समस्या के स्वरूप के आधार पर प्रोजेक्ट में की जाने वाली क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि समस्या ही प्रोजेक्ट है जिसका परिणाम होता है क्रियाशीलता। परन्तु यह बात ध्यान देनी चाहिए कि केवल यांत्रिक तत्वों से ही कोई प्रोजेक्ट नहीं हो जाता अपितु किसी स्वाभाविक समस्या को कार्यशील रहकर सुलझाने से ही कोई प्रोजेक्ट बनता है।

2. ***उद्देश्यपूर्ण क्रियाशीलता (Purposeful Activity)***

   प्रत्येक प्रोजेक्ट का कुछ निश्चित उद्देश्य होता है और इन पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं का आयोजन किया जाता है।

3. ***तन्मयतापूर्ण क्रियाशीलता (Whole-hearted Activity)***

   प्रोजेक्ट को पूरे मनोयोग से अर्थात् पूरी लगन के साथ किया जाता है जिससे इच्छित परिणामों की प्राप्ति हो सके।

4. ***प्राकृतिक वातावरण में क्रियाशीलता (Activity in Natural Settings)***

   प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन से जुड़ी समस्याओं पर आधारित होता है इसलिए प्रोजेक्ट को कृत्रिम परिस्थितियों में आयोजित करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। जहाँ तक सम्भव हो, प्रोजेक्ट से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को प्राकृतिक वातावरण में ही करना चाहिये।

5. ***सामाजिक वातावरण में क्रियाशीलता (Activity in a Social Environment)***

   प्रोजेक्ट में व्यक्ति को वास्तविक जीवन सम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया जाता है जिससे वह सामाजिक कुशलता प्राप्त कर सके और श्रेष्ठ सामाजिक जीवनयापन कर सके। इसीलिए प्रोजेक्ट को सामाजिक वातावरण में किया जाता है।

6. ***स्कूल में वास्तविक जीवन की प्रस्तावना (A bit of real-life introduced in school)***

7. ***व्यावहारिक समस्याओं का समाधान (Problem Solving of Practical Nature)***

8. ***ठोस तथा निश्चित उपलब्धि (Positive and Concrete Achievement)***

9. ***एक ऐसी क्रियाशीलता जिसके द्वारा अनेकानेक समस्याओं के हल निकाले जाते हैं। (An activity through which solutions of various problems are found out)***

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रोजेक्ट विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या का समाधान खोजने के लिए अच्छी प्रकार से चुना हुआ तथा पूर्ण लगन से किया जाने वाला वह कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियों में सामाजिक वातावरण में पूरा किया जाता है।

2.3 प्रोजेक्ट विधि का स्वरूप (Form of Project Method)

इस विधि का केन्द्र प्रोजेक्ट होता है। विद्यार्थी किसी समस्या के समाधान के लिये किसी प्रोजेक्ट का चयन करते हैं तथा योजनाबद्ध रूप से उसे पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। प्रोजेक्ट पर कार्य करते समय उन्हें जिस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है, वह उसी समय ग्रहण कर लिया जाता है चाहे वह किसी भी विषय से सम्बन्धित क्यों न हो। इस प्रकार इस विधि में प्रासंगिक (Incidental) ढंग से पढ़ाई की जाती है। विज्ञान सम्बन्धी जिन तथ्यों, सिद्धान्तों, नियमों एवं व्यावहारिक ज्ञान आदि की भी जहाँ आवश्यकता होती है, वह ज्ञान उसी समय विद्यार्थियों को प्रदान कर दिया जाता है।

2.4 प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Project Method)

प्रोजेक्ट विधि व्यावहारिकतावाद दर्शन पर आधारित है। व्यावहारिकतावादी उपयोगिता को सबसे अधित महत्व देते हैं इसलिए इस विधि में उपयोगी प्रोजेक्टों को ही चुना जाता है। जॉन डेवी की भांति किलपैट्रिक का भी यह विश्वास था कि मनुष्य में कुछ जन्मजात् शक्तियाँ होती हैं जिनका वांछित विकास उचित सामाजिक परिस्थितियों

में ही किया जा सकता है। किलपैट्रिक के अनुसार यह विधि शिक्षण के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. ***प्रयोजन अथवा निश्चित उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of Purpose or specific objective)***

विद्यार्थी प्रयोजनयुक्त क्रियाओं में अधिक रूचि लेते हैं। इसलिए ऐसे प्रोजेक्ट का चयन किया जाना चाहिए जिसको पूरा करने से विद्यार्थियों का कोई प्रयोजन सिद्ध होता हो अथवा किसी उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं की ओर विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होते हैं और उन्हें रूचि एवं लगन के साथ करते हैं।

2. ***क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of Activity)***

मनोविज्ञान के अनुसार 'स्वयं करके सीखना' (learning by doing) सबसे अधिक प्रभावशाली और स्थायी सीखना होता है। प्रोजेक्ट विधि 'स्वयं करके सीखने' के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी किसी भी प्रोजेक्ट को चुनने, पूरा करने के लिए स्वयं विचार करते हैं और स्वयं क्रिया करते हैं। अध्यापक इस कार्य में केवल विद्यार्थियों की सहायता करता है।

3. ***वास्तविकता का सिद्धान्त (Principle of Reality)***

प्रयोजन विधि में किसी भी ऐसे कार्य का चयन नहीं किया जाता जो वास्तविकता से सम्बन्धित न हो। इसमें विद्यार्थियों के 'जीवन से सम्बन्धित' वास्तविक प्रोजेक्ट ही चुने जाते हैं और उन्हें इस प्रकार पूरा किया जाता है जैसे विद्यार्थी अपने वास्तविक जीवन की क्रियाएं करते हैं।

4. ***सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Correlation)***

ज्ञान अपने आप में पूर्ण इकाई है। हमने अपनी सुविधा के लिए एवं विशिष्ट ज्ञान प्रदान करने के लिए इसे विभिन्न विषयों में बांटा है। प्रोजेक्ट विधि में सभी विषयों के ज्ञान एवं क्रियाओं के प्रशिक्षण को एक इकाई के रूप में प्रदान किया जाता है। एक प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए अनेक विषयों के ज्ञान को एक–दूसरे से सम्बन्धित करके दिया जाता है।

5. ***स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom)***

विद्यार्थी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। उनकी स्वतन्त्रता में किसी भी प्रकार की बाधा उनके व्यक्तित्व के विकास में अवरोध पैदा करती है। इसलिए आधुनिक शिक्षा विद्यार्थियों को अपना विकास अपने तरीके से करने की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में हैं। प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थी अपनी रूचि, योग्यता, आवश्यकता एवं अभिवत्ति के अनुसार प्रोजेक्ट का चयन कर सकते हैं। इससे प्राप्त अधिगम स्थाई रहता है और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास भी उचित ढंग से होता है।

6. ***सामाजिक विकास का सिद्धान्त (Principle of Social Development)***

किलपैट्रिक के अनुसार विद्यार्थियों का विकास उचित सामाजिक पर्यावरण में ही सम्भव होता है और सामाजिक पर्यावरण को उचित बनाने के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सामाजिक गुणों का विकास करना आवश्यक होता है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसके नागरिकों में सामाजिक भावना का विकास न हो। इसलिए प्रोजेक्ट विधि में सामूहिक क्रियाओं को महत्व दिया जाता है। विद्यार्थी मिल–जुल कर एक दूसरे के सहयोग से प्रोजेक्ट को पूरा करते हैं और सामाजिक भावना के आधार प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा आदि का व्यावहारिक पाठ पढ़ते हैं।

7. ***उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)***

ज्ञान तभी वास्तविक जीवन में उपयोग किया जा सकता है जब वह क्रियात्मक तथा उपयोगी हो। शिक्षण के परम्परागत सिद्धान्त में मौखिक शिक्षा एवं पुस्तकीय ज्ञान को ही महत्व दिया जाता था जो किसी भी रूप में उपयोगी नहीं था। प्रोजेक्ट विधि द्वारा विभिन्न रूचियों तथा मूल्यों का निर्माण होता है जो व्यावहारिक तथा रचनात्मक दष्टि से अत्याधिक लाभदायक सिद्ध होती है। इस प्रकार प्रोजेक्ट विधि द्वारा अर्जित ज्ञान वास्तविक जीवन में उपयोगी होता है।

8. ***अनुभव का सिद्धान्त (Principle of Experience)***

कहा जाता है कि अनुभव एक श्रेष्ठ अध्यापक है। जो कुछ वास्तविक है वह अनुभव से सिद्ध होना चाहिए। प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थी स्वयं अनुभव करके ज्ञान अर्जित करता है। यही कारण है कि प्रोजेक्ट विधि द्वारा प्राप्त किये गए ज्ञान को रटना नहीं पड़ता और यह अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रहता है।

2.5 प्रोजेक्ट विधि के चरण (Steps of Project Method)

किसी प्रोजेक्ट के आयोजन के मुख्यतः छः चरण होते हैं। ये चरण निम्नलिखित हैं–

1. स्थिति प्रदान करना (Providing a situiation)
2. चुनाव तथा उद्देश्य (Choosing and Purposing)
3. नियोजन (Planning)
4. योजना का क्रियान्वयन (Executing the Plan)
5. मूल्यांकन (Evaluation)
6. अभिलेखन (Recording)

1. **स्थिति प्रदान करना (Providing a Situiation)**

विद्यार्थियों पर किसी भी प्रोजेक्ट को जबरदस्ती थोपना अहितकर हो सकता है। प्रोजेक्ट का आरम्भ करने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थी प्रोजेक्ट पर काम करने के लिए अभिप्रेरित हों और स्वयं प्रोजेक्ट का चयन करें। अध्यापक के लिये यह आवश्यक है कि वह उचित स्थिति का आयोजन करें। अध्यापक विद्यार्थियों की रूचियों, योग्यताओं, अभिरूचियों, अभिवत्तियों आदि का अध्ययन करके इस प्रकार की स्थिति का आयोजन करें जिसमें विद्यार्थी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित हो जाएं। उचित स्थिति विभिन्न साधनों के प्रयोग द्वारा प्रदान की जा सकती है जैसे सामान्य रूचि से सम्बन्धित विषयों पर बात करके, दैनिक जीवन से सम्बन्धित वस्तु आदि द्वारा। प्रो. स्टीवेन्सन ने बिजली की घण्टी का प्रयोग विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट विधि द्वारा ही सिखाया था। स्कूल में घण्टी को पूर्णतया Overhaul करने की आवश्यकता पड़ी और उसने इसी अवसर को एक स्थिति के रूप में उपस्थित कर दिया।

2. **चुनाव तथा उद्देश्य (Choosing and Purposing)**

किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसका उद्देश्य निश्चित करना बहुत आवश्यक है। उद्देश्य ही वह केन्द्र–बिन्दु है जिस पर प्रोजेक्ट आधारित होता है। जिस प्रोजेक्ट का चुनाव किया जाये, वह किसी न किसी उद्देश्य अथवा आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम होना चाहिए। जहां तक संभव हो, ऐसे उद्देश्य आधारित प्रोजेक्ट का चयन करना चाहिये जिसे सभी विद्यार्थी स्वीकार करें। डॉ. किलपैट्रिक के अनुसार, "स्कूल के कार्यों में अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के कार्यों के वही निश्चित करता है जो उद्देश्य को निश्चित करता है। क्रियात्मक रूप से यही मूल कार्य है। विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट स्वयं

चुनना चाहिए। अध्यापक को जल्दी–जल्दी अधीर होकर स्वयं प्रोजेक्ट का चुनाव नहीं कर देना चाहिए। श्रेष्ठ परिणाम तथा पूर्ण सन्तुष्टि तभी होती है यदि प्रोजेक्ट बच्चे स्वयं चुनें।"

प्रोजेक्ट का निश्चय प्रजातंत्रात्मक ढंग से होना चाहिए। अध्यापक को केवल विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करना चाहिए न कि अपनी राय विद्यार्थियों पर थोपनी चाहिये। अध्यापक विद्यार्थियों को प्रेरणा तो दे सकता है परन्तु अन्तिम चुनाव विद्यार्थियों द्वारा ही होना चाहिये। अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट का उद्देश्य उचित रूप से समझ आ जाये। यदि विद्यार्थियों का चुनाव बुद्धिमतापूर्ण न हो तो अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह चतुरता से किसी अन्य स्थिति द्वारा विद्यार्थियों का किसी अन्य उत्तम प्रोजेक्ट की ओर मार्गदर्शन करे।

3. **नियोजन (Planning)**

प्रोजेक्ट के चुनाव एवं उद्देश्य निर्धारण के पश्चात् प्रोजेक्ट का नियोजन किया जाता है। अच्छी योजना अच्छे परिणाम की ओर ले जाती है। एक अच्छी योजना बनाना अत्यन्त कठिन कार्य है। अध्यापक को विद्यार्थियों से विचार–विमर्श करके, उनके कार्य क्षमताएं, उपलब्ध संसाधनों, प्रोजेक्ट में आने वाली कठिनाइयों आदि का विवेचन करके योजना बनानी चाहिए। एक अच्छी योजना में प्रोजेक्ट से सम्बन्धित कार्यक्रम इस प्रकार बनाना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी उसमें हाथ बंटा सके। सबसे पहले मौखिक विचार–विमर्श किया जाना चाहिए, उसके पश्चात् विद्यार्थियों को पूरी योजना अपनी कॉपी में लिखने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

यह आवश्यक है कि अध्यापक पहले से ही योजना के सम्बन्ध में कुछ धारणायें निश्चित कर ले ताकि वह योजना बनाने में विद्यार्थियों की श्रेष्ठतम ढंग से सहायता कर सके।

4. **योजना का क्रियान्वयन (Executing the Plan)**

यह प्रोजेक्ट का चौथा एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण होता है। योजना के क्रियान्वयन से अभिप्राय है – योजना को कार्यरूप में परिणित करना। यह चरण सबसे अधिक लम्बा होता है और इसमें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है। इस चरण में सभी विद्यार्थी सहयोगात्मक रूप से प्रोजेक्ट को पूरा करने में प्रयत्नशील रहते हैं। अध्यापक कक्षा के विभिन्न विद्यार्थियों को उनकी रूचियों, अभिरूचियों, योग्यताओं, क्षमताओं आदि के अनुसार कार्य निर्धारित करता है प्रोजेक्ट में प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी क्षमता के अनुसार कुछ न कुछ काम दिया जाना चाहिए। एक विद्यार्थी किसी क्षेत्र विशेष में कमजोर हो सकता है परन्तु किसी दूसरे क्षेत्र में वह अपनी क्षमता का उचित प्रदर्शन कर सकता है। उदाहरण – एक विद्यार्थी गणना करने में कठिनाई अनुभव कर सकता है परन्तु वह चित्र बनाने, मानचित्र का अध्ययन करने जैसे काम कुशलतापूर्वक कर सकता है। अध्यापक का कार्य केवल इतना है कि वह विद्यार्थियों को उचित रूप से उत्साहित करें, उनका मार्गदर्शन करे, उनकी क्षमता के अनुरूप उन्हें कार्य निर्धारित करे और प्रोजेक्ट कार्यों को पूरा करने के अवसर प्रदान करे।

5. **मूल्यांकन (Evaluation)**

यह प्रोजेक्ट विधि का पांचवां चरण है। प्रोजेक्ट के समाप्त होने पर सारे कार्य की जांच अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रोजेक्ट पर कार्य करते हुए यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसे पहचान कर उससे शिक्षा ग्रहण की जाती है। विद्यार्थी अपने कार्य की स्वयं आलोचना करना सीखते हैं। आत्मालोचन प्रशिक्षण का एक बहुमूल्य रूप है। विद्यार्थी अपनी उपलब्धियों एवं सफलताओं का भी आकलन करते हैं।

6. **अभिलेखन (Recording)**

यह प्रोजेक्ट विधि का छटा एवं अन्तिम चरण होता है। प्रोजेक्ट से सम्बन्धित सभी क्रियाओं जैसे – सुझाव, योजना सम्बन्धी विचार–विमर्श, कार्य–निर्धारण, पुस्तकें, रेखा–चित्र, सर्वेक्षित स्थानों, भवनों आदि का पूरा रिकार्ड रखा जाना चाहिए। विद्यार्थियों को सभी क्रियाओं को अपनी कॉपी में लिखना चाहिए। विभिन्न चरणों में आई सूक्ष्मताओं

का पूरा लेखा जोखा तैयार करना चाहिए। प्रोजेक्ट की कॉपी या 'प्रोजेक्ट रिपोर्ट' ऐसी हो जो प्रोजेक्ट का विस्तत चित्र प्रस्तुत कर सके। यह स्थिति का निर्माण, प्रोजेक्ट का चुनाव, उत्तरदायित्वों का निर्धारण, प्रोजेक्ट में आई कठिनाइयों तथा प्राप्त किये गये अनुभवों आदि का स्पष्ट वर्णन करने योग्य होनी चाहिए।

2.6 प्रोजेक्ट विधि के गुण
(Merits of Project Method)

1. यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें शिक्षण के मुख्य सिद्धान्त, रूचि का सिद्धान्त, करके सीखने का सिद्धान्त और जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने का सिद्धान्त, सभी का पालन किया जाता है। विद्यार्थी स्वयं प्रोजेक्ट का चयन करते हैं, उसको पूरा करने में कोई उद्देश्य निहित होता है और यह विद्यार्थियों के जीवन से सम्बन्धित भी होता है इसलिए इसमें विद्यार्थियों की रूचि बनी रहती है प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए सभी विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों से क्रियाशील रहते हैं और स्वयं करके सीखते हैं। जो कुछ भी विद्यार्थी करते हैं उसका उनके जीवन से सम्बन्ध भी होता है। दूसरे शब्दों में, यह विधि थार्नडाइक (Thorndike) द्वारा प्रतिपादित सीखने के नियमों के अनुसार है। सीखने का पहला नियम 'तत्परता का नियम' (Law of Readiness) है। समस्या को उपस्थित कर उसे हल करने के लिए विद्यार्थी प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। सीखने का दूसरा नियम 'अभ्यास का नियम' (Law of Exercise) है। स्वयं करके सीखना इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता है। सीखने का तीसरी नियम 'प्रभाव का नियम' (Law of effect) होता है। प्रोजेक्ट की समाप्ति पर विद्यार्थी अपने परिश्रम का फल देखकर सन्तोष अनुभव करते हैं। इससे सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है और विद्यार्थी नये प्रोजेक्टों को पूरा करने के लिए तैयार होते हैं।

2. इस विधि में विद्यार्थियों को स्वतन्त्र रूप से सोचने, विचारने तथा कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है अर्थात् यह विधि निष्क्रिय रहकर ज्ञान प्राप्त करने का विरोध करती है। इसमें विद्यार्थी ज्ञान के तथ्यों, संप्रत्ययों आदि को दूसरों के कहने मात्र से नहीं मान लेते अपितु उन्हें खोज कर ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह विधि विद्यार्थियों को अन्वेषण करने का अवसर प्रदान करती है। इस विधि से कार्य करके विद्यार्थी उस ज्ञान और कौशल को स्वयं ही प्राप्त करता है जिसकी वास्तविक जीवन में आवश्यकता पड़ती है। इससे विद्यार्थियों को स्वयं निर्णय करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार इस विधि द्वारा विद्यार्थियों की अनेक शक्तियों का विकास होता है।

3. इस विधि में रटने की प्रवत्ति का कोई स्थान नहीं है। इसमें रहने तथा स्मरण करने की क्रिया की अपेक्षा सोचने तथा कार्य करने की प्रवत्ति पर बल दिया जाता है। कार्य करके जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह अधिक स्थायी होता है।

4. इसके अनुसार पाठ्य विषयों का विभाजन और उनका पथक–पथक रूप से पढ़ाया जाना अवांछनीय है। यह विधि पाठ्यक्रम के विषयों में परस्पर तथा पाठ्यक्रम का जीवन से सम्बन्ध स्थापित करती है। इसमें पाठ्यक्रम के समस्त विषय समन्वित रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। समन्वित शिक्षा का विचार नया नहीं है किन्तु क्रिया द्वारा समन्वय स्थापित करने का विचार इस विधि की विशेषता है। किसी विशेष समस्या के हल करने में विद्यार्थी अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पाठ्य विषयों के स्थान पर विद्यार्थी को शिक्षा का केन्द्र माना जाता है और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उसे प्रोजेक्ट दिया जाता है। इससे विद्यार्थी पाठ्य विषयों में अधिक रूचि लेता है और अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

5. प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थियों को मिल जुलकर कार्य करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं। विद्यार्थी सांझे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं। सभी कार्य प्रजातान्त्रिक ढंग से किये जाते हैं। विद्यार्थी जो कार्य करते हैं या जो योजना बनाते हैं, उस विषय में अपनी सहमति अथवा असहमति प्रकट कर सकते हैं। अध्यापक

विद्यार्थियों की इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुरूप प्रोजेक्ट का चयन करता है और कार्यों का बंटवारा करता है। विद्यार्थियों के मिल–जुल कर काम करने से उनमें सहिष्णुता, आत्मनिर्भरता, उदारता, सहयोग भावना आदि गुणों का विकास होता है। इस प्रकार यह विधि प्रजातन्त्रात्मक जीवनयापन का प्रशिक्षण करती है।

6. यह विधि पिछड़े एवं कमजोर विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से सहायक है क्योंकि इसमें प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुसार रचनात्मक कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाती है। ऐसे विद्यार्थी जो अमूर्त परिभाषाओं एवं प्रत्ययों पर सोच–विचार नहीं कर सकते, वे मूर्त प्रत्ययों तथा रचनात्मक कार्य में व्यस्त रहते हैं।

7. इससे विद्यालय का बाह्य संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है और विद्यालयी शिक्षा सजीव एवं जीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। सीखने की स्थितियों और विद्यार्थियों के परिवेश में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिससे अधिगम अधिक स्थायी होता है।

8. इससे उपक्रम तथा आत्मक्रिया (Self activity) का विकास होता है इसमें विद्यार्थी 'स्वयं अपने हाथों से कार्य' करते हैं और कार्य में आनन्द का अनुभव करते हैं। विद्यार्थी केवल निष्क्रिय ग्रहणकर्त्ता (Passive Recipient) न रह कर सक्रिय बनते हैं और उनमें कार्य के प्रति सम्मान (Dignity of labour) का भी विकास होता है।

2.7 प्रोजेक्ट विधि के दोष (Demerits of Project Method)

1. प्रोजेक्ट विधि में प्रयोजन को पूरा करने में बहुत अधिक समय व्यय होता है।
2. इस विधि में अध्यापक पर काम का अध्याधिक बोझ बढ़ जाता है। अध्यापक पूरा समय योजना बनाने, तैयारी करने, निरीक्षण तथा मूल्यांकन करने में व्यस्त रहता है।
3. भारतीय विद्यालयों में प्रोजेक्ट के लिये आवश्यक सन्दर्भ सामग्री (Reference Material) का अभाव रहता है।
4. उच्च कक्षाओं का पाठ्यक्रम प्रोजेक्ट द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता।
5. प्रोजेक्ट के लिये सुसज्जित प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालयों की आवश्यकता होती है। अतः यह विधि अत्याधिक खर्चीली होती है।
6. भौतिक विज्ञान में प्रोजेक्ट के लिये अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सभी विषयों के ज्ञाता हो और सभी विषयों एवं प्रकरणों को समावयवित करके पढ़ाये। यह बहुत कठिन कार्य है और इसके लिये विशेष कौशलयुक्त अध्यापकों की आवश्यकता होती है। हमारी शिक्षण व्यवस्था में ऐसे अध्यापकों का अभाव है।
7. प्रोजेक्ट विधि द्वारा शिक्षण कार्य संगठित रूप से और निरन्तर नहीं हो सकता। इसमें विषय–वस्तु का विकास भी क्रमबद्ध रूप से न होकर अंशों में एवं अस्त व्यस्त (Haphazard) रूप से होता है।
8. प्रोजेक्ट विधि में विभिन्न कार्यों से संबंधित कौशलों के अभ्यास के लिए अवसर प्रदान नहीं किये जाते। विज्ञान विषयों के लिये ये अभ्यास अति आवश्यक होते हैं। इस प्रकार यह विधि विज्ञान विषयों के लिए उपयुक्त नहीं है।
9. प्रोजेक्ट विधि से पढ़ाने के लिए विद्यालय की सम्पूर्ण समय–सारणी (Time Table) में परिवर्तन करना पड़ता है जिससे दूसरे विषयों अथवा कक्षाओं में बाधा पहुंचती है।
10. इस विधि द्वारा किसी भी प्रकरण का विस्तत ज्ञान नहीं दिया जा सकता। केवल प्रारंभिक ज्ञान (Superficiail Knowledge) ही दिया जाता है।
11. प्रोजेक्ट विधि के विभिन्न चरणों के अनुरूप लिखी गई पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। इससे विद्यार्थियों एवं अध्यापक को प्रोजेक्ट की स्पष्ट दिशा निर्धारित करने में कठिनाई होती है।

2.8 कुछ प्रोजेक्ट कार्य (Some Project Works)

विद्यालय में भौतिक विज्ञान शिक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकरणों से सम्बन्धित प्रोजेक्ट किये जा सकते हैं–

1. सौर ऊर्जा से विद्युत बनाना।
2. रेडियों से सम्बन्धित तकनीक का ज्ञान।
3. स्कूल के कुछ कमरों को वातानुकूलित करना।
4. जल प्रदूषण एवं उसके घटक।
5. विज्ञान संग्रहालय की स्थापना।
6. विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन।
7. विद्यालय में मौसम सम्बन्धी जानकारी की व्यवस्था करना।
8. हस्तनिर्मित विज्ञान–उपकरणों का निर्माण।

2.9 प्रोजेक्ट विधि में अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher in Project Method)

प्रोजेक्ट विधि विद्यार्थी केन्द्रित विधि है। इसमें विद्यार्थी को सक्रिय करना अत्यन्त आवश्यक होता है। विद्यार्थी की सक्रियता के बिना प्रोजेक्ट की सफलता अनिश्चित होती है। विद्यार्थियों को सक्रिय बनाने एवं अभिप्रेरित करने में अध्यापक की विशेष भूमिका होती है। इसके निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिन्दु हैं–

1. अध्यापक प्रोजेक्ट में एक मार्गदर्शक, सहयोगी तथा मित्र के रूप में कार्य करता है न कि तानाशाह के रूप में।
2. अध्यापक विद्यार्थियों के साथ घनिष्ठ एवं स्वस्थ सम्बन्ध (Healthy Relations) स्थापित करता है। वह उनकी समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुनता है, समझता है और उन्हें हल करने में सहायता करता है।
3. अध्यापक प्रोजेक्ट के किसी भी भाग को स्वयं कार्यान्वित नहीं करता, वह अपनी इच्छा को विद्यार्थियों पर थोपता नहीं है अपितु वह उन्हें उनकी त्रुटियों और असफलताओं के कारणों के बारे में बताता है। वह उन्हें यह भी बताता है कि किन उत्तम प्रणालियों या शैलियों को अपनाया जाये।
4. इस विधि में अध्यापक शर्मीले, पिछड़े हुए तथा कम बुद्धि वाले विद्यार्थियों को भी अवसर प्रदान करता है कि वे अपने सहपाठियों के साथ मिल कर प्रोजेक्ट के सम्पन्न होने में अपना योगदान दें।
5. अध्यापक कक्षा में प्रजातन्त्रात्मक वातावरण का विकास करता है और विद्यार्थियों को स्पष्ट एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित करता है।
6. अध्यापक विद्यार्थियों के साथ–साथ स्वयं भी सीखता है। वह कभी भी स्वयं सब कुछ जानने का दावा नहीं करता।
7. वह विद्यार्थियों को जिम्मेवारी सौंप कर उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व के विकास में सहयाता करता हैं
8. वह सारा समय सक्रिय एवं सचेत रहता है और इस बात का ध्यान रखता है कि प्रोजेक्ट से सम्बन्धित कार्य उचित रूप से विकसित हो।
9. अध्यापक विद्यार्थियों को उनकी क्षमता के अनुसार कार्य सौंपता है। वह कक्षा में विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता बनाये रखता है और उनके भय एवं हिचकिचाहट को दूर करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रोजेक्ट की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

(ii) प्रोजेक्ट विधि के विभिन्न चरणों का वर्णन करो।

(iii) प्रोजेक्ट विधि में अध्यापक की भूमिका का विवेचन कीजिए।

2.10 सारांश

प्रोजेक्ट विधि प्रयोजनवाद पर आधारित है। इस विधि के प्रवर्तक डॉ० विलियम एच. किलपैट्रिक थे और प्रो० स्टीवेन्सन ने इसे पूर्णता प्रदान की। प्रोजेक्ट विधि का केन्द्र प्रोजेक्ट होता है। किसी समस्या के समाधान के लिए प्रोजेक्ट का चयन किया जाता है और योजनाबद्ध रूप से उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। प्राजेक्ट विधि में प्रासंगिक रूप से ज्ञान प्रदान किया जाता है। प्रोजेक्ट विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इनमें करके सीखना (learning by doing), जीवन द्वारा सीखने (learning by living), प्रयोजन का सिद्धान्त, क्रियाशीलता का सिद्धान्त, वास्तविकता का सिद्धान्त, सह–सम्बन्ध का सिद्धान्त, स्वतंत्रता का सिद्धान्त, सामाजिक विकास का सिद्धान्त, उपयोगिता का सिद्धान्त, अनुभव का सिद्धान्त आदि सम्मिलित हें। प्रोजेक्ट विधि के मुख्यतः छः चरण होते हैं–स्थिति प्रदान करना, चयन तथा उद्देश्य, नियोजन, योजना का क्रियान्वन, मूल्यांकन तथा अभिलेखन।

कोई भी शिक्षण विधि पूर्णतया दोष रहित नहीं होती। प्रोजेक्ट विधि में भी कुछ गुण एवं कुछ दोष हैं इन दोषों के होते हुए भी प्रोजेक्ट विधि का विज्ञान शिक्षण में विशिष्ट महत्व है। प्रोजेक्ट विधि विद्यार्थी–केन्द्रित विधि है। इसमें विद्यार्थियों को सक्रिय करना आवश्यक होता है। विद्यार्थियों को सक्रिय करके एवं अभिप्रेरित करने में अध्यापक की विशेष भूमिका होती है। अध्यापक प्रोजेक्ट में मित्र, सहयोगी तथा मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है।

मॉडल उत्तर

(i) प्रोजेक्ट विधि की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

–समस्यामूलक क्रियाशीलता, उद्देश्यपूर्ण क्रियाशीलता, तन्मयतापूर्ण क्रियाशीलता, प्राकृतिक वातावरण में क्रियाशीलता, सामाजिक वातावरण में क्रियाशीलता, व्यावहारिक समस्याओं का समाधान आदि।

(ii) प्रोजेक्ट विधि के मुख्य चरण–स्थिति प्रदान करना, चुनाव तथा उद्देश्य, नियोजन, योजना का क्रियान्वन, मूल्यांकन एवं अभिलेखन आदि हैं। वर्णन के लिए कपया खण्ड 2.5 में देखें।

(iii) कपया 2.9 में देखें।

2.11 मुख्य शब्द

प्रोजेक्ट–ऐसी उद्देश्यपूर्ण क्रिया जिसे सामाजिक परिस्थितियों में किया जाता है।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi.

Mangal, S.K. 'Teaching of Physical & Life Science', Arya Book Depot, New Delhi.

Soni, Anju 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludhiana.

इकाई-IV(a)

अध्याय-3: समस्या समाधान विधि (Problem Solving Method)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- समस्या समाधान विधि का अर्थ व स्वरूप बता सकें।
- समस्या समाधान विधि के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकें।
- समस्या समाधान विधि के गुण एवं दोषों का विवेचन कर सकें।

संरचनाः

3.1 प्रस्तावना
3.2 समस्या समाधान विधि का अर्थ व स्वरूप
3.3 समस्या समाधान विधि के चरण
3.4 समस्या समाधान विधि के गुण
3.5 समस्या समाधान विधि के दोष
3.6 सारांश
आदर्श उत्तर
3.7 मुख्य शब्द
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

जीवन संघर्ष का दूसरा नाम है। हमारे जीवन में प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार की समस्या आती है तथा हमारी यह इच्छा होती है कि हमारी समस्या जल्दी से जल्दी हल हो जाए। हम अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर समस्याओं को चुनौती के रूप में लेकर उनके समाधान के लिये प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार किये गये प्रयत्नों द्वारा हम सीखते हैं और अपने व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं। वास्तविक जीवन में समस्या का समाधान इतना सरल नहीं होता जितना पढ़ने या सुनने में प्रतीत होता है और प्रत्येक व्यक्ति समस्या को चुनौती के रूप में लेकर उसका समाधान भी नहीं कर सकता। समस्या समाधान विधि विद्यार्थियों में इसी योग्यता का विकास करती है जिससे वे जीवन में आने वाली समस्याओं से न घबराएं और न ही हताश होकर बैठ जाएं अपितु समस्याओं का सामना करते हुए निरन्तर उनके समाधान के लिए प्रयत्नशील रहें।

3.2 समस्या समाधान विधि-अर्थ व स्वरूप (Problem Solving Method-Meaning & Form)

समस्या समाधान विधि का जन्म प्रयोजनवाद के फलस्वरूप हुआ। यह विज्ञान शिक्षण की महत्वपूर्ण विधि है। इसे वैज्ञानिक विधि के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में गहन चिन्तन और तर्क सम्मिलित होता है। यह विधि विज्ञान की महत्वपूर्ण देन है और विद्यार्थियों को इसका उचित प्रकार से प्रशिक्षण देना चाहिए। यदि एक बार विद्यार्थी इस विधि में प्रशिक्षित

हो जाते हैं तो वे सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं यहां तक कि ऐसी स्थिति में भी जिससे वे सर्वथा अनभिज्ञ हों।

3.2.2. समस्या समाधान विधि का स्वरूप (Form of Problem Solving Method)

समस्या समाधान विधि में विद्यार्थियों के समक्ष विषय से सम्बन्धित किसी समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे वे उद्देश्यपूर्ण गहन चिन्तन (Reflective thinking) कर सकें। विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर समस्या समाधान सम्बन्धी विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं। इस कार्य में अध्यापक उनकी सहायता करता है। विद्यार्थी प्रयोग अथवा अनुभव द्वारा विकल्पों की पुष्टि करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार वे समस्या के समाधान का मार्ग खोजकर नवीन ज्ञान और कौशल अर्जित करते हैं। इससे विद्यार्थी न केवल समस्या का समाधान करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं अपितु इससे उनमें वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास होता है, वे वैज्ञानिक विधि में कार्य करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, विषय–सम्बन्धी ज्ञान एवं अनुभव अर्जित करते हैं और जीवन के प्रति उनमें एक स्वस्थ विचारधारा का विकास भी होता है।

3.2.3. समस्या की विशेषताएं (Characteristics of a Problem)

अध्ययन के लिए चुनी गई समस्या में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत की गई समस्या का शिक्षात्मक मूल्य होना चाहिए। यह यथासंभव उनके वास्तविक जीवन अथवा परिवेश से सम्बन्धित होनी चाहिए जैसे – आकाश में इन्द्रधनुष का अध्ययन, वर्षा के समय बिजली की चमक एवं बादल का गरजना।
2. समस्या विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमताओं तथा मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
3. समस्या विद्यार्थियों की रूचि तथा दष्टिकोण के अनुरूप होनी चाहिए।
4. समस्या चुनौतीपूर्ण होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों की तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास हो सके।
5. समस्या पाठ्यक्रम के अनुसार, तर्कसंगत, व्यावहारिक तथा उपयोगी होनी चाहिए।
6. समस्या विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिए जिससे उसका समाधान करने में अत्यधिक कठिनाई न हो।
7. समस्या के समाधान में उपयोग किये जाने वाले उपकरण विद्यालय की प्रयोगशाला में उपलब्ध होने चाहिए।
8. समस्या विद्यार्थियों पर एक भार की तरह नहीं होनी चाहिए। समस्या ऐसी हो जिसे विद्यार्थी प्रसन्नतापूर्वक समाधान करने के लिए प्रयत्न करें।

3.3 समस्या समाधान विधि के चरण (Steps of Problem Solving Method)

विज्ञान शिक्षण में प्रयुक्त समस्या समाधान विधि में विद्यार्थी किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों अथवा दूसरों द्वारा कही गई बातों पर आश्रित न हो कर अपने प्रयत्नों एवं पूर्व अनुभवों द्वारा समस्या का हल ढूंढता है। इस विधि के निम्नलिखित चरण हैं:

1. **समस्या को महसूस करना (Sensing a Problem)**

   अध्यापक को इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे विद्यार्थी प्रश्न पूछने की आवश्यकता अथवा समस्या को महसूस करे। अध्यापक स्वयं भी ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जिनमें गहन चिन्तन की आवश्यकता हो और इस प्रकार विद्यार्थी समस्या को पहचान सकें। कभी–कभी विद्यार्थी स्वयं भी पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ते हुए, प्रयोगशाला में कार्य करते समय अथवा प्रकृति में होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित कोई शंका होने पर समस्या को महसूस कर सकते हैं। कक्षा में समस्या का प्रस्तुतीकरण अध्यापक एवं विद्यार्थियों के सहयोग से होना चाहिए। समस्या का चयन करते समय विद्यार्थियों की आयु, रूचि, उद्देश्य, योग्यता आदि का ध्यान रखना चाहिए।

2. **समस्या को परिभाषित करना (Defining a Problem)**

समस्या को ठीक प्रकार से समझने एवं उसका समाधान करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उसे स्पष्ट, सरल एवं सुनिश्चित भाषा में परिभाषित किया जाए। समस्या को परिभाषित करते समय उसकी सीमाओं और विस्तार (Limitations and boundaries) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। समस्या की परिभाषा, सीमाओं आदि को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।

3. **समस्या का विश्लेषण (Analysis of Problem)**

समस्या को परिभाषित करने के पश्चात् उसका सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को समस्या की प्रकृति (Nature) और मुख्य बिन्दुओं का ज्ञान हो जाए। इसके अतिरिक्त वे समस्या समाधान की दष्टि से उपलब्ध संसाधन, पूर्व ज्ञान आदि सम्बन्धित जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं।

4. **उपयुक्त आंकड़ों का संकलन (Collection of Relevant Data)**

इस चरण में विद्यार्थियों को समस्या से संबंधित आंकड़ों या सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस संबंध में अध्यापक विद्यार्थियों को निर्देश या संदर्भ देता है। ये आंकड़े पुस्तकालय निरीक्षण, प्रयोग, मॉडलों, भ्रमण, विचार–विनिमय द्वारा एकत्रित किये जाने चाहिए। इससे विद्यार्थियों में विभिन्न कौशलों का विकास होता है। आंकड़ों का संकलन करते समय विद्यार्थियों को निम्नलिखित त्रुटियों से सावधान रहना चाहिए–

क) **यात्रिक त्रुटियां (Mechanical Errors)** – यांत्रिक त्रुटियों से अभिप्राय ऐसी त्रुटियों से है जो उस उपकरण अथवा सामान से सम्बन्धित हो जिसका उपयोग समस्या समाधान के लिए किया जाता है।

ख) **व्यक्तिगत त्रुटियां (Personal Errors)** – इसमें व्यक्ति द्वारा की जाने वाली त्रुटियां जैसे पक्षपात, उद्वेगपूर्ण निर्णय, असम्बन्धित तथ्यों या आंकड़ों का संग्रह आदि सम्मिलित हैं।

5. **परिकल्पनाओं का निर्माण (Formulation of Hypothess)**

परिकल्पना से अभिप्राय समझदारीपूर्वक लगाए गए अनुमान अथवा कल्पित समाधान से है। समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं एवं आंकड़ों के विश्लेषण और पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर समस्या के कल्पित समाधान का निर्माण किया जाता है। विद्यार्थियों को अपने–अपने ढंग से परिकल्पना का निर्माण करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है जिससे समस्या के एक से अधिक कल्पित समाधान मिल जाते हैं।

6. **परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing of Hypothess)**

विद्यार्थी जितनी भी परिकल्पनाओं अर्थात् किसी समस्या के संभावित समाधानों का निर्माण करते हैं उनमें से कौन सा उचित एवं सार्थक है, इसका निर्णय इस चरण में किया जाता है। इसमें एक–एक करके सभी परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। यह कार्य स्वाध्याय, गोष्ठी, सामूहिक विचार–विनिमय तथा प्रयोगशाला परीक्षणों आदि के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सबसे सार्थक परिकल्पना अथवा समाधान को निष्कर्ष रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। परिकल्पनाओं का परीक्षण करते समय निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

क) परिकल्पना समस्या को यथार्थ और विश्वसनीय समाधान प्रस्तुत कर सकें

ख) समाधान पूर्व स्थापित तथ्यों एवं सिद्धान्तों के अनुकूल हो।

ग) ऐसे सभी नकारात्मक उदाहरणों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे परिकल्पना की सत्यता पर संदेह उत्पन्न होता हो।

7. **निष्कर्ष निकालना**

प्रयोग तथा परीक्षण के पश्चात जो परिकल्पनाएं सही पायी जाती हैं, उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है तथा असत्य व अपूर्ण परिकल्पनाओं को अस्वीकार कर दिया जाता है। इस प्रकार समस्या का समाधान निष्कर्ष रूप में प्राप्त किया जाता है। यह समाधान किन–किन परिस्थितियों अथवा साधनों की उपस्थिति में किस प्रकार की समस्याओं के लिए उपयोगी रहेगा, यह सामान्यीकरण भी इसी चरण में किया जाता है। इस सामान्यीकरण का प्रयोग दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान में किया जा सकता है।

3.4 समस्या समाधान विधि के गुण (Merit of Problem-Solving Method)

1. समस्या समाधान विधि में समस्या के समाधान का प्रयत्न किया जाता है जिससे यह विधि विज्ञान की प्रकृति से मिलती जुलती है। इसलिए विज्ञान विषय को समझने के लिए यह विधि सहायक सिद्ध होती है।
2. यह विधि विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने में सहायक है।
3. यह विधि विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि में कार्य करने का प्रशिक्षण प्रदान करती है।
4. यह विधि विद्यार्थियों और अध्यापक के मध्य मधुर सम्बन्धों के निर्माण में सहायता करती है।
6. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी समस्या को स्वयं महसूस करके उसके समाधान से सम्बन्धित आंकड़े एवं सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इन आंकड़ों व सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर वे परिकल्पनाओं का निर्माण एवं पुष्टि करके निष्कर्ष निकालते हैं। समस्या का स्वयं समाधान करने की प्रक्रिया से उनकी छिपी हुई प्रवत्तियों जैसे रचनात्मकता, आलोचनात्मक निरीक्षण आदि का विकास होता हैं और समस्या का हल उन्हें परम सुख की अनुभूति प्रदान करता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान व अधिगम स्थायी एवं प्रभावपूर्ण होते हैं।
7. विद्यार्थी समस्या समाधान विधि का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं को हल करने के लिए कर सकते हैं।
8. इस विधि के प्रयोग द्वारा गहकार्य देना, कॉपियां जांचना, कक्षा में अनुशासन बनाए रखना आदि कई समस्याओं का स्वतः ही निपटारा हो जाता है।

3.5 समस्या समाधान विधि के दोष (Demerits of Problem Solving Method)

1. यह विधि वर्तमान भारतीय शिक्षण परिस्थितियों के अनुरूप नहीं है। इस विधि का प्रयोग करने में निम्नलिखित व्यावहारिक बाधाएं हैं–
   - क) पुस्तकालय में संसाधनों का अभाव।
   - ख) अच्छी प्रयोगशालाओं का अभाव।
   - ग) पाठ्यक्रम को समाप्त करने का दबाव।
   - घ) अध्यापक विद्यार्थी अनुपात अधिक होना।
   - ङ) अनुभवी एवं सुयोग्य विज्ञान शिक्षकों की अनुपलब्धता।
   - च) शिक्षण एवं मूल्यांकन में कौशलों के विकास का दिया जाने कम महत्व।
2. इस विधि में विद्यार्थियों से अत्यधिक अपेक्षाएं की जाती हैं। वैज्ञानिक विधि से समस्या का विश्लेषण करना एवं उसका समाधान ढूंढना सभी विद्यार्थियों के लिए संभव नहीं होता।
3. पाठ्यक्रम में दिए गए सभी उपविषयों से सम्बन्धित समस्या का चयन एवं उसका नियोजन संभव नहीं होता।

यदि अध्यापक समस्या–चयन कर भी ले तो भी अधिकांशतः वह समस्या विद्यार्थियों की रूचि, मानसिक स्तर, योग्यताओं आदि के अनुसार नहीं होती।

4. इस विधि में संसाधनों का अपव्यय होता है। विद्यार्थी समस्या समाधान संबंध आंकड़े एकत्रित करने, उनका विश्लेषण करने और परिकल्पनाओं का निर्माण करते समय अटकलें लगाते हैं जिससे धन, शक्ति और समय का अपव्यय होता है।

5. यह विधि विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप नहीं है।

6. इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान को कहीं लिख कर नहीं रखा जाता जिससे कुछ समय पश्चात् वह विस्मत हो सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) समस्या की विशेषताओं की सूची बनाइये।

(ii) समस्या समाधान विधि के विभिन्न चरणों की व्याख्या करो।

3.6 सारांश

हमारे जीवन में प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार की समस्या आती है अतः समस्या को हल करने की योग्यता का विकास करना आवश्यक है। समस्या समाधान विधि से अभिप्राय ऐसी विधि से है जो विद्यार्थियों में समस्या को हल करने की क्षमता का विकास करें। समस्या समाधान विधि का विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान है। वैज्ञानिक नई खोजें करने के लिए इसी विधि का प्रयोग करते हैं इसलिए इस विधि को वैज्ञानिक विधि भी कहा जाता है। इस विधि का केन्द्र समस्या होती है। अध्ययन के लिए चयन की गई समस्या तर्कसंगत, व्यावहारिक, विषय वस्तु के अनुरूप, एवं विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान रुचि व स्तर के अनुसार होनी चाहिए।

इस विधि के मुख्य चरण हैं–समस्या को महसूस करना, समस्या को परिभाषित करना, समस्या का विश्लेषण, उपयुक्त आंकड़ों का संकलन, परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण तथा निष्कर्ष निकालना। यह विधि विद्यार्थियों में मानसिक शक्तियों का विकास, वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने, वैज्ञानिक विधि में प्रशिक्षण देने, अध्यापक–विद्यार्थी मे मधुर सम्बन्धों का निर्माण करने आदि में सहायक है।

मॉडल उत्तर

(i) समस्या की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- समस्या का शिक्षात्मक मूल्य होना चाहिए।
- समस्या पाठ्यक्रम के अनुसार तर्कसंगत, व्यावहारिक तथा उपयोगी होनी चाहिए।
- समस्या विद्यार्थियों की रुचि, शारीरिक क्षमताओं, मानसिक स्तर तथा दष्टिकोण के अनुरूप होनी चाहिए।
- समस्या विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिए।

(ii) कपया खण्ड 3.3 में देखें।

3.7 मुख्य शब्द

समस्या समाधान विधि–यह विधि जो समस्या का समाधान ढूंढने में सहायक हो।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi.

Mangal, S.K. 'Teaching of Physical & Life Science', Arya Book Depot, New Delhi.

Soni, Anju 'Teaching of Physical Science', Tandon Publications, Ludhiana.

इकाई-IV(b)

अध्याय-1: प्रयोग प्रदर्शन-प्रयोगशाला प्रयोग कौशल (Practical Demonstration-Skill of using Laboratory)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- प्रयोगशाला प्रयोग कौशल का वर्णन कर सकें।
- प्रयोगशाला में संभव कुछ आम दुर्घटनाओं और उनके प्राथमिक उपचारों की सूची बना सकें।

संरचनाः

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रयोगशाला प्रयोग कौशल

1.3 प्रयोगशाला में संभव कुछ आम दुर्घटनाएं और उनके लिए प्राथमिक उपचार

1.4 सारांश

आदर्श उत्तर

3.5 मुख्य शब्द

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

विज्ञान शिक्षण में प्रयोगशाला का विशेष स्थान है। विज्ञान शिक्षण चाहे किसी भी श्रेणी से सम्बन्धित क्यों न हो, प्रयोग और परीक्षणों से अलग नहीं किया जा सकता। इन प्रयोगों और परीक्षणों के लिए कई तरह के उपकरण, वस्तुओं और सामग्री की आवश्यकता पड़ती हैं अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार की सामग्री और उपकरणों को कहां रखा जाए जिससे विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग करने की सुविधा प्रदान की जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोगशाला की आवश्यकता अनुभव की जाती है। संक्षेप में, प्रयोगशाला से निम्न लाभ हैं–

1. सभी प्रकार की आवश्यक वैज्ञानिक सामग्री और उपकरणों को जो प्रयोग एवं निरीक्षण करने के काम में लाये जाते हैं, सुरक्षित रखा जा सकता है।
2. प्रयोगशाला में सामान एक ही स्थान पर उचित विभाजन और क्रम के अनुसार रखा जाता है। जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो तुरन्त मिल जाती है। इससे समय की बचत होती है।
3. विज्ञान अध्ययन के लिए उचित वातावरण तैयार करने में भी प्रयोगशाला का विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री एवं उपकरणों को देखकर विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न होती है और वे उनका प्रयोग करने तथा देखने में विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं।

4. विद्यार्थियों में वैज्ञानिक ढंग से ज्ञान ग्रहण करने और उनके दष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में भी प्रयोगशाला से सहायता मिलती है।

5. प्रयोगशाला में सामूहिक रूप से कार्य करने से छात्रों में सामाजिक दष्टिकोण का उचित विकास होता है।

प्रयोगशाला के निर्माण के अतिरिक्त प्रयोगशाला का उचित प्रयोग करना भी आवश्यक है।

1.2 प्रयोगशाला प्रयोग कौशल (Skill of Using Laboratory)

प्रयोगशाला में विभिन्न प्रकार के महंगे और सूक्ष्म उपकरण होते हैं। इनसे सम्बन्धित तनिक भी असावधानी बहुत नुकसान का कारण बन जाती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगशाला में विभिन्न प्रकार के विषैले एवं विस्फोटक पदार्थ होते हैं। क्षार और अम्ल थोड़ी सी असावधानी के कारण समस्या उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए प्रयोगशाला में अध्यापक का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है। अध्यापक और विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में निम्नलिखित नियमों का अनुसरण करना चाहिए–

अध्यापकों के लिए नियम (Rules for Teachers)

1. अध्यापक को अपनी अनुपस्थिति में प्रयोगशाला के अंदर किसी भी छात्र का प्रवेश निषेध कर देना चाहिए।
2. अध्यापक को स्वयं अपना व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं अनुकरणीय बनाना चाहिए।
3. अध्यापक को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कक्षा पर उसका पूरा नियन्त्रण रहे।
4. प्रत्येक छात्र का स्थान निश्चित कर देना चाहिए तथा निष्प्रयोजन इधर–उधर घूमने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।
5. प्रयोग के आरम्भ होने से पूर्व ही अध्यापक द्वारा छात्रों को आवश्यक निर्देश दे दिये जाने चाहिएं। क्या करना है और क्या सावधानी रखनी चाहिए, इस की जानकारी दे देनी चहिए।
6. प्रत्येक छात्र के पास कार्य करने के लिए पर्याप्त साधन है या नहीं, इस की जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए।
7. प्रयोगशाला में प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर रहे तथा उस पर सही लेबल चिपका रहे।
8. उपकरणों की क्षमता, योग्यता तथा प्रयोग सम्बन्धी आवश्यक सामग्री है या नहीं, इस बात की जांच करनी चाहिए।
9. गैस तथा बिजली का ठीक प्रकार प्रयोग करने से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश देने चाहिए।
10. छात्रों को अनुशासन और दुर्घटनाओं के बचाव से सम्बन्धित सभी आवश्यक निर्देश सूचनार्थ टांग देने चाहिए।
11. छात्रों को प्रयोग के दौरान निर्देश एवं सहयोग देते रहना चाहिए।

विद्यार्थियों के लिए आवश्यक नियम (Laboratory Rules for Students)

1. प्रयोगशाला में किसी वस्तु को इधर–उधर मत करो। जो वस्तु जहां रखी है, उसे वहीं रखने का प्रयत्न करो।
2. प्रयोगशाला सम्बन्धी सामान केवल प्रयोगशाला में ही प्रयोग में लाओ, इसे कहीं और न ले जाओ।
3. अध्यापक से जिस उपकरण एवं सामग्री के द्वारा जो करने की आपने अनुमति ली है, वही करो; उससे आगे बढ़ने का प्रयत्न न करो।

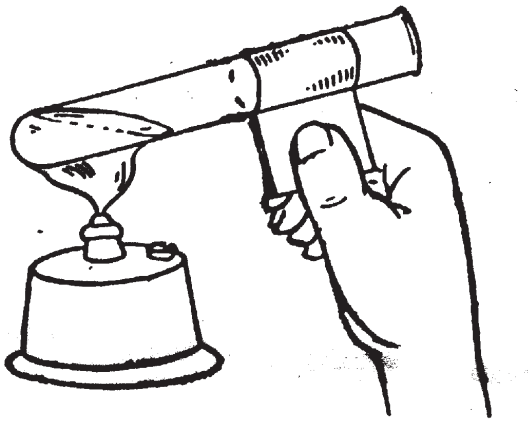

(a) कागज की पट्टी में एक परखनली

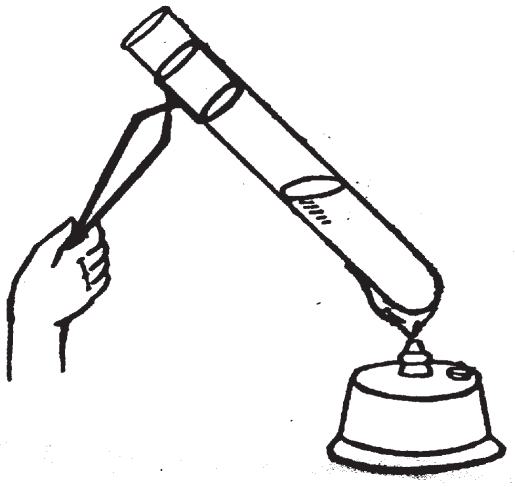

(b) होल्डर में एक परखनली

(c) किसी अज्ञात वस्तु को किस प्रकार सूघा जाए?

4. कोई भी दुर्घटना होने पर अध्यापक को तुरन्त सूचना दो।
5. किसी उपकरण में कोई टूट–फूट एवं दोष दिखाई देने पर अध्यापक को तुरन्त सूचना दो।
6. किसी भी वस्तु पर लेबल न होने अथवा लगे हुए लेबल के छूट जाने की स्थिति में होने पर अध्यापक को सूचना दो।
7. लेबल लगी हुई वस्तु के प्रति भी अन्धविश्वास न रखो। प्रयोग करने में किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर जो चाहिए, वह वही है, इस बारे में पूरी तरह निश्चित हो लेना चाहिए।
8. बोतल को कभी भी ऊपरी सिरे या ढक्कन (Stopper) से न पकड़ो।
9. बोतलों के ढक्कन (Stopper) अच्छी तरह अलग करो और काम करने के पश्चात् उन्हें तुरन्त बन्द कर दो।
10. प्रयोग करने के लिए आवश्यक कम से कम वस्तु का उपयोग करो। कोई भी चीज बेकार न जाने दो।
11. अनजानी वस्तुओं के प्रति विशेष सावधानी बरतो।

12. कोई भी पदार्थ हाथ से न छुओ, इसके लिए चम्मच या अन्य कोई साधन प्रयोग में लाओ।

13. प्रयोग करते समय जल्दबाजी न करो तथा आवश्यक सावधानियों का ध्यान रखो। प्रयोग करने से पूर्व सभी उपकरणों की जांच कर लो।

14. मेज पर केवल आवश्यक उपकरण ही रहने दो, अनावश्यक भीड़ न करो।

15. आने–जाने के मार्ग में या फर्श पर कोई चीज न रखो। यदि फर्श पर कोई चीज गिर जाए तो उसे तुरन्त साफ करा लो।

16. प्रयोग करने के पश्चात् सभी उपकरण अच्छी तरह साफ करके रखो।

17. कोई भी पदार्थ बिना अध्यापक की अनुमति लिए चखकर या सूंघ कर न देखो।

18. गैस, नल और बिजली को आवश्यकता पड़ने पर ही चालू करो। काम समाप्त होने पर इन्हें तुरन्त बन्द कर दो।

19. किसी भी प्रकार की शंका होने पर अपने आप आगे बढ़ने से पहले अध्यापक से परामर्श कर लो।

20. प्रयोगशाला में हर तरह से अनुशासन में रहो और चुपचाप अपना–अपना कार्य करते रहो।

1.3 प्रयोगशाला में संभव कुछ आम दुर्घटनाएं और उनके लिए प्राथमिक उपचार (Common Accidents in Labs & their Treatment)

1.3.1. जलने पर (Burning)

(i) ***अम्ल (Acid) से जल जाना:*** अम्ल से जलने पर उस स्थान को तुरन्त बहुत अधिक पानी से धो देना चाहिए और उसे सोडियम–बाई–कार्बोनेट या बोरेक्स के धोल से धोकर दूसरी बार पानी से धो देना चाहिए, जिससे अम्ल का प्रभाव जाता रहे। इसके पश्चात् उस पर वैसलीन या कोई मरहम लगा देनी चाहिए।

(ii) ***क्षार (Alkali) से जलना:*** क्षार से जल जाने पर भी जले स्थान को तुरन्त अधिक पानी से धो देना चाहिए और फिर उसे 1% ऐसीटिक ऐसिड या नींबू के रस से धो देना चाहिए। इसके पश्चात् उस पर वैसलीन या मरहम लगाकर हल्की पट्टी बांध देनी चाहिए।

(iii) ***फास्फोरस से जलने पर:*** जले हुए स्थान को पानी डालकर अच्छी तरह धो लेना चाहिए। इसके बाद उस स्थान पर मुलायम, कीटाणुरहित रुई सिल्वर नाइट्रेट के हल्के घोल से डुबोकर पट्टी द्वारा बांध देना चाहिए।

(iv) ***सोडियम और पोटेशियम द्वारा जलने पर:*** जले हुए स्थान को बहुत अधिक पानी से इस तरह धोना चाहिए कि जलने वाले पदार्थ का कोई भी कण लगा न रहे। इसके पश्चात् उस पर कोई क्रीम या वैसलीन लगा देनी चाहिए।

(v) ***स्टोव, हीटर, बर्नर इत्यादि से जलने पर:*** जले हुए स्थान को गीला करके अगर उस पर साधारण नमक बहुत अधिक मात्रा में लगा दिया जाए तो इससे फफोले पड़ने की संभावना बहुत कम हो जाती है। फफोले पड़ने पर नारियल के तेल को चूने के पानी से फेंटकर जले हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

मामूली कटने पर टिंक्चर आयोडीन तथा डिटोल आदि में भिगोयी हुई रुई रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। अगर घाव गंदा हो तो उसे लाल दवा या डिटोल के पानी से धोकर तथा कीटाणुरहित रुई से सुखाकर ही पट्टी करनी चाहिए।

यदि कोई प्रमुख धमनी कट जाए तो डॉक्टर को तुरन्त सूचना देनी चाहिए और कटे हुए स्थान पर रुई का मोटा पैड रखकर हल्का–सा दबा देना चाहिए। खून से भीग जाने पर उस पट्टी को हटाना नहीं चाहिए, बल्कि उस पर दूसरी रुई रखकर दबाते रहना चाहिए।

1.3.2. विषाक्त होने पर (Poisioning)

ऐसी अवस्था में डॉक्टर का बुलाना अच्छा होता है। डॉक्टर के आने से पहले प्राथमिक उपचार के तौर पर निम्न साधन अपनाये जा सकते हैं–

1. अगर किसी विषैले पदार्थ (ठोस या द्रव) को मुंह में रख लिया गया हो, परन्तु निगला नहीं गया तो उसे तुरन्त थूक लेना चाहिए। इसके बाद मुंह को एकदम पानी से अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए और फिर उसे विषैले पदार्थ के अम्लीय या क्षारीय गुण के अनुसार क्रमशः सोडियम–बाई–कार्बोनेट या 1 प्रतिशत ऐसीटिक ऐसिड के घोल से साफ करना चाहिए।

2. विषैले पदार्थ को निगल जाने की स्थिति में निम्न उपाय करने चाहिएं–

   (i) क्षयकारी (Corrosive) पदार्थ जैसे अम्ल, क्षार और जिंक के यौगिकों आदि के निगलने पर उल्टी नहीं करानी चाहिए।

   अम्ल पीने पर पानी पिलाना चाहिए और उसके बाद चूने का पानी या मिल्क ऑफ मैग्नेशिया पिलाना चाहिए।

   क्षार पीने पर पानी पिलाकर ऐसीटिक ऐसिड या नींबू का रस पिलाना चाहिए।

   जिंक के यौगिकों में किसी को पीने पर पानी पिलाकर हल्का सोडियम कार्बोनेट पिलाना चाहिए।

   इसके पश्चात् रोगी को अंडे की सफेदी या चावल और जौ का पानी पिलाकर आराम करने देना चाहिए।

   (ii) अगर निगला हुआ विषैला पदार्थ क्षयकारी (Corrosive) नहीं है तो उस अवस्था में तुरन्त उल्टी करवाना अच्छा होता हैं इसके लिए एक गिलास गुनगुने (Warm) पानी में चम्मच भर नमक अथवा राई मिलाकर पिलाने से काम चल जाता है। उलटी करने के बाद रोगी को अंडे की सफेदी या चावल का पानी पीने को दिया जाना चाहिए।

3. ***विषैली गैस का प्रभावः*** अगर किसी छात्र ने कोई विषैली गैस सूंघ ली हो तो उसे तुरन्त ही स्वच्छ एवं ताजी हवा में ले आना चाहिए। उसके कपड़ों को ढीला कर देना चाहिए। अगर उसे कुछ बेहोशी हो तो उसे इस प्रकार से बिठाना चाहिए कि उसका सिर घुटनों के बीच में रहे तथा उसे नौसादर (Ammonia) आदि पदार्थ सूंघाने चाहिएं। साथ ही उसे उत्तेजक पदार्थ जैसे चाय, कॉफी या ब्राण्डी आदि देनी चाहिए। अधिक बेहोशी की हालत में कृत्रिम सांस देने तथा ऑक्सीजन देने का उपाय भी करना चाहिए तथा रोगी को हर तरह से गर्म रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

1.3.3. आँख पर आघात पहुंचने पर

यदि प्रयोग करते समय आंखों पर किसी प्रकार की कोई चोट पहुंची हो तो उसकी सूचना तुरन्त ही डॉक्टर को दी जानी चाहिए। साथ ही आंखों में एक बूंद अरण्डी का तेल डालकर उस पर रुई रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। आंखों में कुछ पड़ जाने पर सावधानीपूर्वक निम्न प्राथमिक उपचार किया जा सकता हैः–

1. अम्ल पड़ जाने पर उसे पानी में बार–बार खोलकर तथा बंद कर खूब धोना चाहिए और फिर चूने का पानी या 1 प्रतिशत सोडियम–बाई–कार्बोनेट के घोल में कई बार धोना चाहिए।

2. क्षार पड़ जाने पर उसे इसी तरह शुद्ध पानी से खूब धोना चाहिए। इसबे बाद फिर 1 प्रतिशत बोरिक ऐसिड के घोल में धोना चाहिए।

3. कोई ठोस वस्तु गिर जाने पर धीरे से पलक को खोलकर ग्लीसरीन में मुलायम बालों वाला ब्रुश डुबोकर धीरे से गिरी हुई वस्तु को निकालना चाहिए।

1.3.4. विद्युत् आघात पर

बच्चों को स्पष्ट निर्देश दे देना चाहिएं कि वे जिसे विद्युत् करेण्ट लगे, पकड़ कर न खींचें। इससे वे स्वयं भी उसके शिकार हो सकते हैं। इस स्थिति में स्विच को फौरन बन्द करना चाहिए। डॉम्टर को खबर कर देनी चाहिए। इस बीच दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को खुली हवा में कमर के बल लिटा देना चाहिए तथा अगर पी सके तो चाय, कॉफी या ब्रांडी देनी चाहिए। यदि स्थिति अच्छी न हो तो कृत्रिम सांस देने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

1.3.5. कपड़ों पर अम्ल या क्षार गिरने पर

अम्ल गिर जाने पर पहले गिरे हुए स्थान पर **अमोनियम हाइड्रोक्साइड** का हल्का घोल डालना चाहिए और फिर उसे काफी पानी से धोकर अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए।

क्षार गिर जाने पर पहले अधिक मात्रा में हलका **ऐसीटिक ऐसिड** डालकर क्षार की क्रिया को रोकना चाहिए तथा फिर पानी से अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए।

1.3.5. आग लगने पर

1. अगर किसी के कपड़ों ने आग पकड़ ली है तो दुर्घनाग्रस्त व्यक्ति को तुरन्त ही मोटे कम्बल में लपेटकर फर्श पर लुढ़काने से आग बुझाने में सहायता मिलती है। ऐसी स्थिति में भूलकर भी पानी नहीं डालना चाहिए।
2. साधारण रूप से छोटी आगजनी (जैसे लकड़ी या कागज वगैरह में लगने पर) की स्थिति को पानी डालकर नियंत्रित किया जा सकता है।
3. अगर कोई दाहक पदार्थ किसी बीकर अथवा फ्लास्क में आग पकड़ता है तो आग फैलने की संभावना की रोकथाम के लिए उसे तुरन्त ही एसबैस्टस की शीट से ढक देना चाहिए।
4. सोडियम, फास्फोरस अथवा किसी तेल द्वारा आग पकड़े जाने पर अधिक मात्रा में मिट्टी या बालू रेत का उपयोग करना चाहिए।
5. अगर आग बिजली या गैस के कारण लगी हुई हो तो स्विच बन्द कर देना चाहिए।
6. प्रयोगशाला में हर प्रकार की दुर्घटनाओं से बचकर निकल भागने के लिए आकस्मिक रास्ते बने होने चाहिएं। विद्यार्थियों को इनका प्रयोग करने का अभ्यास करा देना चाहिए।
7. आग अधिक फैलने की संभावना होने पर प्रयोगशाला के सभी दरवाजे और खिड़कियां अच्छी तरह बन्द करवा देनी चाहिएं ताकि हवा के झोंकों से आग अधिक न फैले।
8. आग बुझाने की सामान्य स्थिति न होने पर तुरन्त ही आग बुझाने वाले यंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
   (i) साधारण प्रकार की आगजनी के लिए कार्बन–डाई–ऑक्साइड वाले यन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।
   (ii) सोडियम, पोटेशियम, फास्फोरस तथा किसी तेल द्वारा आग फैलने की स्थिति में Foam Type का प्रयोग होना चाहिए।
   (iii) विद्युत् प्रवाह द्वारा आग फैलने पर कार्बन टैट्राक्लोराइड युक्त यन्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए।
9. स्थिति के नियन्त्रण में न होने पर तुरन्त ही आग बुझाने वाली दमकलों को सूचित करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रयोगशाला में विद्यार्थियों को किन नियमों का पालन करना चाहिए।

1.4 सारांश

प्रयोगशाला का विज्ञान शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है। अध्यापक को प्रयोगशाला का उपयोग करते समय कुछ सावध ाानियां रखनी चाहिएं ताकि वह सफलतापूर्वक प्रयोग प्रदर्शन कर सके।

मॉडल उत्तर

(i) कपया 1.2 में देखें

1.5 मुख्य शब्द

प्रयोगशाला—ऐसा कक्ष जहां विज्ञान शिक्षण से सम्बन्धित विभिन्न उपकरण व सामग्री रखी जाती है और विद्यार्थियों को प्रयोग करके सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

मंगल, एस०के० 'साधारण विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली

शर्मा, आर०सी० 'आधुनिक विज्ञान शिक्षण', धनपत राय एंड सन्स, नई दिल्ली।

इकाई-IV(b)

अध्याय-2: स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरण (Improvised Science Apparatus)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरणों का अर्थ बता सकें।
- स्वयं निर्मित उपकरणों के लाभों की सूची बना सकें।
- स्वयं निर्मित उपकरणों की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।

संरचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरण
2.3 स्वयं निर्मित उपकरणों के लाभ
2.4 स्वयं निर्मित उपकरणों के उदाहरण
2.5 सारांश
आदर्श उत्तर
2.6 मुख्य शब्द
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

आवश्यकता अविष्कार की जननी है। विज्ञान शिक्षण में उभरती नवीन आवश्यकताएं नवीन उपकरणों के निर्माण की आवश्यकता पर बल देती हैं। विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसे केवल सुन कर या पढ़ कर नहीं समझा जा सकता (Science cannot be simply talked or listened) विज्ञान के तथ्यों, नियमों एवं सिद्धान्तों को समझने के लिए प्रत्यक्ष अनुभव एवं प्रयोग करना आवश्यक है। विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति एवं विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण के विकास के लिए अध्यापक को प्रयोग सम्बन्धी सामग्री एवं वैज्ञानिक उपकरणों की आवश्यकता होती है परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि महंगे उपकरणों एवं सुसज्जित प्रयोगशालाओं के अभाव में विज्ञान शिक्षण सम्भव नहीं हो सकता। यह विज्ञान की वास्तविक भावना के बिल्कुल विपरीत है।

2.2 स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरण

वैज्ञानिकों ने अपनी कल्पनाशक्ति से उपयोगी उपकरणों का निर्माण किया है। एक बुद्धिमान एवं कार्यनिष्ठ विज्ञान अध्यापक अपनी कल्पनाशक्ति एवं हस्तकौशल का प्रयोग करके साधारण वस्तुओं से वैज्ञानिक उपकरण बना सकता है।

इन उपकरणों को 'स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरण (Improvised Science Apparatus) कहा जाता है। इन उपकरणों के निर्माण के लिए साधारण वस्तुओं, कम मूल्य वाली सामग्री या ऐसी सामग्री का उपयोग किया जाता है जिसे हम बेकार समझ कर फेंक देते हैं। टीन के डब्बे, तारें, फ्यूज़ बल्ब, रेडियो व टेप रिकॉर्डर के भाग, कपड़े के टुकड़े, धागा, शीशे की बोतल आदि वस्तुओं का उपयोग करके विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण अनुभव करवाये जा सकते हैं। स्वयं–निर्मित उपकरणों के निर्माण के लिए एक कार्य–मेज (Work Table) एवं औजारों बक्स (Tool Kit) अवश्य होना चाहिए।

2.3 स्वयं निर्मित उपकरणों के लाभ (Merits of Improvised Apparatus)

1. स्वयं निर्मित उपकरण बनाने में बहुत कम खर्च होता है। ये बाजार से खरीदे गए उपकरणों की अपेक्षा सस्ते होते हैं। अतः अध्यापक को प्रयोग–परीक्षण करने में धन–सम्बन्धी कठिनाई नहीं आती।
2. स्वयं निर्मित उपकरण तैयार करते समय अध्यापक–विद्यार्थी अन्तःक्रिया में वद्धि होती है। इससे अध्यापक विद्यार्थियों में अन्तर्निहित वैज्ञानिक प्रतिभा को पहचान सकता है।
3. इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक एवं निर्माणात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है।
4. इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने में सहायता मिलती है।
5. स्वयं निर्मित उपकरण तैयार करने से विद्यार्थियों की स्वाभाविक रूचियों एवं मनोवत्तियों के पूर्ण विकास को बल मिलता है। ये मनोविज्ञान के सिद्धान्त 'करके सीखना' (Learning by doing) पर आधारित हैं। इस प्रकार स्वयं निर्मित उपकरणों मनोविज्ञान की दष्टि से महत्वपूर्ण हैं।
6. वैज्ञानिक उपकरणों को स्वयं तैयार करते समय विद्यार्थी सम्बन्धित सिद्धान्त और कार्य–प्रणाली का सूक्ष्य अध्ययन कर सकते हैं। इससे उन्हें विज्ञान के जटिल नियमों एवं तथ्यों को समझने एवं याद रखने में सहायता मिलती है।
7. इससे विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिन्तन का विकास होता है वे अपने कार्यों का स्वयं मूल्यांकन करके अपनी कमियों को सुधार सकते हैं।
8. इससे विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि से समस्या का सामना करने और उसका समाधान करने का प्रशिक्षण मिलता है।
9. इससे विद्यार्थी अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकते हैं।
10. इससे विद्यार्थियों में काम के प्रति सम्मान (Dignity for work) की भावना उत्पन्न होती है और उनमें परिश्रम करने की प्रवत्ति का विकास होता है।
11. इनसे विद्यार्थियों को नवीन खोजों तथा अविष्कारों की प्रेरणा मिलती है।
12. इन उपकरणों के निर्माण से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक–चिन्तन की प्रवत्ति का विकास होता है।

2.4 स्वयं निर्मित उपकरणों के उदाहरण

1. स्प्रिट लैंप (Spirit Lamp)

आवश्यक सामग्री – ढक्कन सहित स्याही की खाली दवाल, पुराना सूती कपड़ा अथवा धागा, टीन की कटी हुई पत्ती (जिसे टीन के डिब्बे को खोलकर काटा जा सकता है), रेती, कील, टीन काटने की कैंची, हथौड़ी इत्यादि।

विधि – दवात के ढक्कन के बीचोंबीच एक कील की सहायता से छेद कर लेते हैं। इस छेत को रेती की

सहायता से गोल और चौड़ा कर लेते हैं। फिर इसमें टीन की कटी हुई पत्ती को मोड़कर एक छोटी–सी नली लगाते हैं। जो उसमें बिल्कुल ठीक बैठ जाये। इस नील को ढक्कन के छेट के लगभग 2.5 से.मी. भीतर रखते हैं तथा 1¼ से.मी. ऊपर निकली रहने देते हैं। अब इसको टांका लगाकर जोड़ दिया जाता है। फिर इसमें सूती कपड़े अथवा धागों की बत्ती बँटकर डाल दी जाती है। इतना सब कुछ करने के पश्चात् ढक्कन दवात पर चढ़ा देते हैं। जब स्प्रिट लैंप काम में लाना होता है तो ढक्कन को खोल कर स्प्रिट भरकर काम में ले जाते हैं।

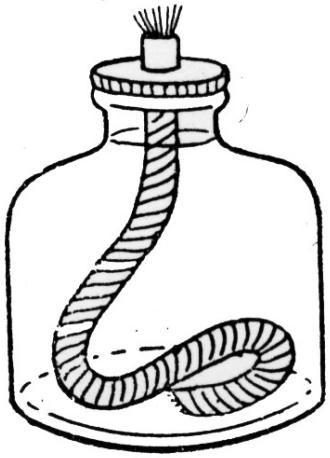

2. तिपाई बनाना (Simple Tripod Stand)

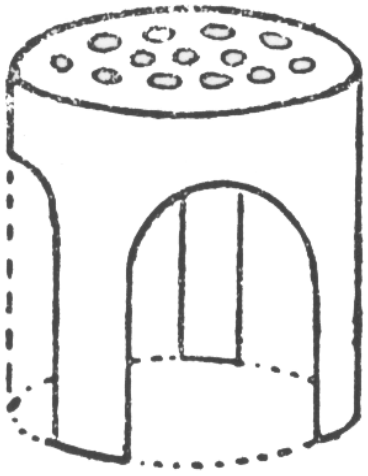

पयुक्त आकार का टीन का एक खाली डिब्बा, कील तथा हथौड़ी।

के डिब्बे के ढक्कन को अलग करके उसके पेंदे में एक तेज कील से बहुत–से छेद कर लेते हैं। की भांति बन जाती है। ऊपर ओर से डिब्बे में तीन ओर से U आकार की तीन पत्तियाँ काटकर हैं, जिससे तिपाई की तीन टाँगें बन जाएँ। अब इसे उल्टा करके रख देते है, जिससे जाली ऊपर । जाली के ऊपर जिस वस्तु को गर्म करना होता है, वह रखी जाती है तथा जाली के नीचे स्प्रिट ाकार के रास्तों से वायु जाती रहती है, जो लैंप को जलाती रहती है।

3. **सरल कमानीदार तुला (A Simple Spring Balance)**

सामग्री – टीन का ढक्कन, डोरी, रबड़ का छल्ला, कील, लकड़ी का स्टैण्ड, हथौड़ी इत्यादि।

विधि – तुला का पलड़ा बनाने के लिए एक टीन का पुराना ढक्कन लेकर उसमें कील से ठोंककर परिधि के सहारे बराबर–बराबर दूरी पर चार छेद कर लेते हैं। इन छेदों में डोरियाँ डालकर उनके सिरों को इकट्ठा करके गाँठ बाँध देते हैं। अब लकड़ी का स्टैण्ड बनाकर उसमें एक कील गाड़ दी जाती है। इस कील में एक रबड़ का छल्ला डालकर उसमें पहले बनाये गये पलड़ों को लटका देते हैं।

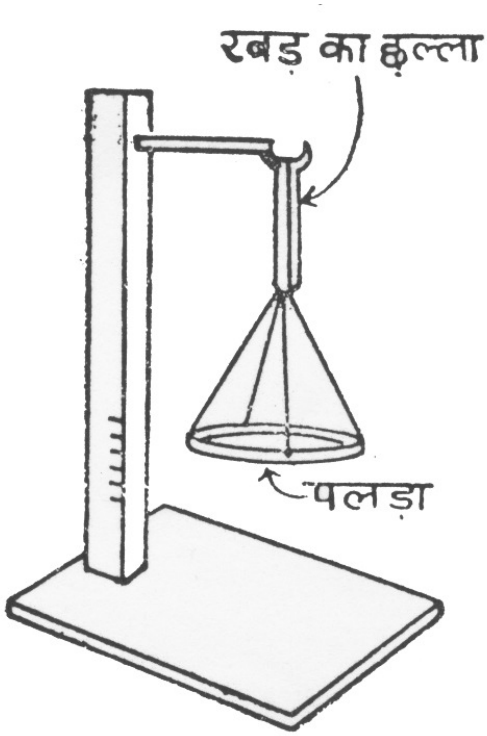

जो वस्तु तौलनी होती है, वह अब इस लटके हुए पलड़े में रख दी जाती है। इसकी तौल मालूम करने के लिए तुला का पैमाना बनाया जाता है। पैमाने बनाने के लिए बिना बाट रखे हुए जहाँ पलड़ा रहता है, उसके सामने स्टैण्ड पर 0 का चिन्ह लगा दिया जाता है। फिर पलड़े पर बारी–बारी से 5, 10, 15, 20 ग्राम के बाट रखते जाते हैं। रबड़ के छल्ले के साथ बंधा हुआ पलड़ा वज़न से नीचे खिसकता जाता है और इस तरह इनकी तौर के चिन्ह लगाते चले जाते हैं। इन चिन्हों की सहायता से हल्की वस्तुओं का भार आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

4. **अंकित सिलेण्डर (Graduated Cylinder)**

आवश्यक वस्तुएँ – एक चौड़े मुँह की लम्बी बोतल, कोई एक अंकित सिलेण्डर, पानी, कागज, गोंद इत्यादि।

विधि – इसे बनाने के लिए एक चौड़े मुंह की लम्बी बोतल ली जाती है। बोलत के बाहर लम्बाई के सहारे गोंद से कागज की एक पर्ची काटकर चिपका देते हैं। अब इस बोतल में किसी अंकित सिलेण्डर से नापकर 10 घन से.मी. पानी डालते हैं। पानी के तल के साथ–साथ कागज की पर्ची पर चिन्ह लगाकर 10 का अंक लिख देते हैं। इस तरह से बार–बार 10–10 घन से. मी. पानी डालकर पानी के तल के साथ–साथ कागज की पर्ची का निशान लगाकर 20, 30, 40, 50, 60 आदि अंक लिखे जाते हैं। मीटर पैमाने की सहायता से दो

चिन्हों के बीच की दूरी को 10 समान भागों में बांटकर चिन्ह लगा देते हैं। अब यह निशान वाली बोतल अंकित सिलेण्डर का काम अच्छी तरह दे सकती है।

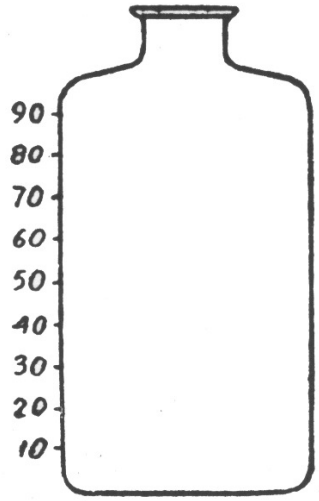

5. **कीड़े पकड़ने का जाल (Insects Catching Device)**

आवश्यक वस्तुएं – लोहो का मोटा तार, आधा मीटर लम्बी लकड़ी की डंडी, पतला तार या डोरी, मच्छरदानी के कपड़े का टुकड़ा आदि।

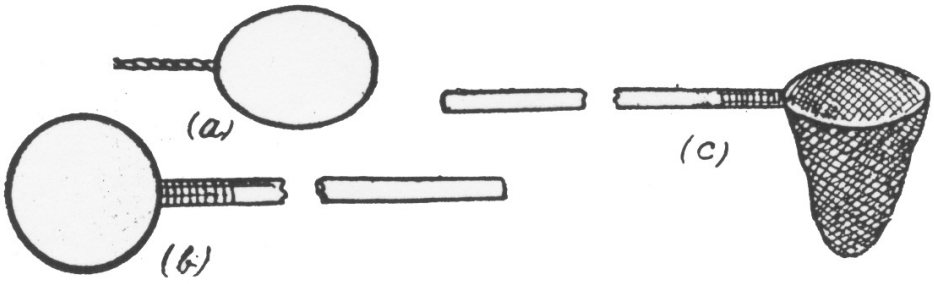

विधि– लगभग 1.5 मीटर लम्बा तार लेकर उसको इस तरह मोड़ा जाता है कि 40–42 से.मी. व्यास का एक गोल घेरा बन जाए तथा दोनों ओर बराबर–बार तार रचा रहे, जिससे उसे बल देकर 15.16 सेमी तक लम्बा एक हैण्डल सा बन सके। देखिये चित्र संख्या (a)।

अब इस हैंडल में लगभग आधा मीटर लम्बी लकड़ी की डंडी पतले तार अथवा डोरी की सहायता से मजबूती से बाँध ली जाती है। अब मच्छरदानी की जाली का इतना बड़ा टुकड़ा लिया जाता है, जिससे 75 से.मी. गहरी जाली बन जाये और इसे गोलाकार तार के घेरे में टाँके लगाकर सी दिया जाता है। देखिए चित्र संख्या (c)। अब इसे कीड़े तथा तितलियां आदि पकड़ने के जाल के रूप में काम में लाया जा सकता है।

6. **फेफड़ों का मॉडल (A Model of Lungs)**

आवश्यक वस्तुएं – एक बड़ी बोतल, रेती, स्याहीचूस कागज, स्प्रिट लैंप, एक छेद वाला कार्क, दो रबड़ के गुब्बारे, रबड़ी की पतली चादर का टुकड़ा, डोरी इत्यादि।

विधि –

क) **बोतल की पेंदी को काटना** – बोतल की पेंटी जहाँ से काटनी हो, वहाँ रती से चारों ओर गहरे निशान बना देते हैं। अब इस निशान बनाने के दोनों ओर गीले स्याहीचूस कागज लगाकर निशान के सहारे–सहारे बोतल को तेज लौ में धीरे–धीरे घुमाकर गर्म करते हैं। निशान के सहारे–सहारे जब पूरी तरह से बोतल चटक जाती है तो फिर सावधानी से चोट मारकर पेंटी को अलग कर देते हैं तथा बोतल के किनारों को रेती से घिसकर चिकना कर लेते हैं।

ख) **पेंदी कटी बोतल से मॉडल बनाना** – कटी हुई पेंदी की बोतल के मुंह में एक छेद वाली कार्क लगा देते हैं। कार्क के छेद में से उचित आकार की Y नली लगाकर नील के दोनों सिरों पर एक–एक रबड़ का गुब्बारा बांध देते हैं। अब बोतल की तली मे बांधने के लिए उपयुक्त आकार की एक रबड़ की पतली चादर लेते हैं। इसके बीचों बीच एक छोटा–सा छेद करके उसमेंएक ओर गाँठ लगाकर एक डोरी पिरो देते हैं। अब रबड़ की पतली चादर को बोतल की तली में इस प्रकार बांधते हैं कि बोरी का लम्बा सिरा नीचे निकला रहे तथा गांठ अंदर की ओर फंसी रहे। यही फेफड़ों का मॉडल है।

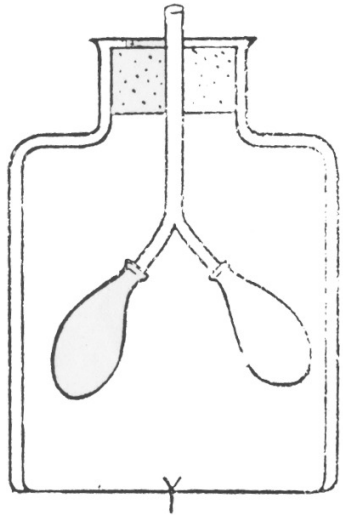

कार्य-प्रणाली – जब डोरी को नीचे खींचा जाता है तो भीतर का आयतन बढ़ जाता है और Y नली की ऊपरी नली से वायु भीतर घुस जाती है। इससे गुब्बारे फूल जाते हैं। डोरी को छोड़ देने से आयतन पहले जितना ही हो जाता है। इससे गुब्बारे फिर पुरानी हालत में आ जाते हैं। ठीक इसी तरह की क्रिया फेफड़ों के फैलने और सिकुड़ने की होती है, यह इस मॉडल द्वारा दिखाया जा सकता है।

7. **आग बुझाने का यंत्र (Fire Extinguisher)**

आवश्यक सामग्री – एक खुले मुँह वाली बोतल, कपड़े धोने का सोडा, छोटी शीशी (इंजेक्शन वाली), गन्धक का अम्ल, धागा, एक छेद वाला कॉर्क, एक बार समकोण पर मुड़ी हुई एक नली, आदि।

बनाने की विधि – कपड़े धोने के सोडे को अच्छी तरह घोलकर एक खुले मुंह वाली बोतल में आधी ऊंचाई तक भर देते हैं। अब छोटी शीशी की गर्दन में लटकाने के लिए एक धागा बांधकर इसे गंधक के अम्ल में भर देते हैं। धागे को पकड़कर शीशी को बाहर लटकाया जाता है कि वह सोडे के घोल के ऊपर तैरती रहे। एक छेद वाली कॉर्क में मुड़ी हुई नली लगाकर उसे बोतल के मुंह में लगा देते हैं। नली में से लटकाने वाले धागे को पहले बाहर निकाल लिया जाता है जिससे उसे बाहर की ओर से खींचकर शीशी को तैराकर रखा जा सके।

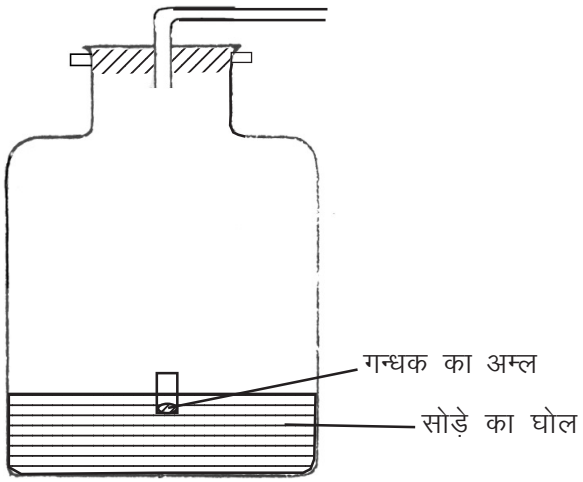

प्रयोग – इस उपकरण की सहायता से आग बुझाने का परीक्षण/प्रदर्शन करने के लिए मुड़ी हुई नली के सिरे के सामने जलती हुई मोमबत्ती अथवा स्पिरिट लैंम्प रखा जाता है। इसके पश्चात बोतल को हिलाया जाता है। इससे शीशी में भरा गन्धक का अम्ल सोड़े के घोल मे मिलकर रसायनिक अभिक्रिया करता है। इस रसायनिक अभिक्रिया के परिणामस्वरूप कार्बन–डाई–ऑक्साइड गैस उत्पन्न होती है जो निकास नली से बाहर निकल कर जलती हुई मोमबत्ती को बुझा देती है।

8. **मधुकोषमंच (Beehive Shelf)**

घर में पड़े हुए किसी खाली प्लास्टिक टीन के डिब्बे से मधुकोषमंच बनाया जा सकता है। यह डिब्बा दवाई या अचार आदि का हो सकता है। डिब्बे के तल के केन्द्र में 1/2″ व्यास का एक सुराख कर देते हैं और उसके एक ओर U आकार का एक छोटा सा टुकड़ा काट देते हैं। मधुकोषमंच प्रयोग के लिए तैयार हो जाता है।

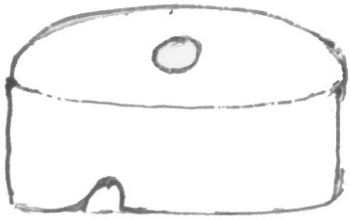

अपनी प्रगति जाँचिए

(i) स्वयं निर्मित उपकरणों के क्या लाभ हैं?

(ii) स्वयं निर्मित उपकरणों के दो उदाहरण दीजिए।

2.5 सारांश

स्वयं निर्मित वैज्ञानिक उपकरणों से अभिप्राय ऐसे उपकरणों से हैं जिन्हें अध्यापक अपनी कल्पनाशक्ति एवं हस्तकौशल का प्रयोग करके साधारण वस्तुओं से स्वयं तैयार कर सकता है। इन उपकरणों के निर्माण के लिए कम मूल्य वाली सामग्री या बेकार वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरणों के निर्माण में धन का व्यय कम होता है; विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रवत्तियों, वैज्ञानिक दष्टिकोण, आलोचनात्मक चिन्तन, समस्या समाधान की क्षमता आदि का विकास

होता है। इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक चिन्तन की प्रवत्ति का विकास होता है और उन्हें नवीन आविष्कारों की प्रेरणा मिलती है।

मॉडल उत्तर

(i) कृपया 2.3 में देखें

(ii) खाली शीशी का स्पिरिट लैम्प बनाना खाली टीन के डिब्बे को नीचे से ∩ आकार में काट कर मधुकोष मंच बनाना

2.6 मुख्य शब्द

स्वयंनिर्मित उपकरण—ऐसे उपकरण जिनका निर्माण कम मूल्य वाली सामग्री से अध्यापक अपनी कल्पनाशक्ति एवं हस्तकौशल का प्रयोग करके स्वयं करता है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

कोहली, वि०के० 'विज्ञान–शिक्षण', विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला

Sharma, R.C. 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi

Mangal, S.K. 'Teaching of Physical and Life Sciences', Arya Book Depot, New Delhi

इकाई-IV(b)

अध्याय-3: पाठ-प्रस्तावना कौशल

(Skill of Introducing the Lesson-Set Induction)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- पाठ–प्रस्तावना कौशल के घटकों का वर्णन कर सकें।
- शिक्षण कौशल से सम्बन्धित अनुसूचियों के बारे में बता सकें।
- पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- प्रस्तावना कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना बना सकें।

संरचना:

3.1 प्रस्तावना
3.2 पाठ–प्रस्तावना कौशल के घटक
3.3 शिक्षण कौशल से सम्बन्धित अनुसूचियां
3.4 पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
3.5 पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
3.6 प्रस्तावना कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म–पाठ योजना
3.7 सारांश
आदर्श उत्तर
3.8 मुख्य शब्द
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

शिक्षण एक कला है और इस कला के क्रियात्मक अभ्यास के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापकों एवं संभावित अध्यापकों को शिक्षण कार्य से संबंधी विभिन्न कौशलों का ज्ञान करवाया जाए। प्रस्तुत इकाई IV(b) में हम कुछ सूक्ष्म कौशलों का अध्ययन करेंगे। सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षण का वह सरलीकृत लघु रूप है जिसमें किसी अध्यापक द्वारा किन्हीं पांच विद्यार्थियों के समूह को 5-6 मिनट की अल्प अवधि में पाठ्यक्रम की एक छोटी इकाई का शिक्षण प्रदान किया जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति, किसी अनुभवी अथवा अनुभवहीन अध्यापक को नवीन शिक्षण–कौशलों का अर्जन करने और पूर्व–अर्जित कौशलों में सुधार लाने के लिए उपयोगी अवसर प्रदान करती है। शिक्षण–कौशलों के सम्बन्ध में विभिन्न अनुसंधान किए गए हैं और उनके आधार पर विभिन्न शिक्षण कौशलों की पहचान की गई है।

ऐलन और रॉयन ने (1969) 14 शिक्षण कौशलों के नाम बताए हैं जबकि बोर्ग और उसके सहयोगियों (Borg et al, 1970) के अनुसार कुल 18 शिक्षण कौशल हैं। भारत में बड़ोदा विश्वविद्यालय के उच्च शिक्षा केन्द्र (CASE) में किए गए अनुसंधानों

के आधार पर पासी (Passi, 1976) ने शिक्षण कौशलों की संख्या 21 निर्धारित की है जबकि जंगीरा और उसके सहयोगियों (Jangira et al, 1979) के अनुसार कुल 20 शिक्षण कौशल हैं। इकाई के इस भाग में हम इन शिक्षण कौशलों में से मुख्य छः कौशलों का अध्ययन करेंगे। ये कौशल हैं–पाठ प्रस्तावना कौशल, प्रश्न कौशल, दृष्टान्त कौशल, व्याख्या कौशल, उद्दीपक परिवर्तन कौशल एवं श्यामपट्ट कौशल। प्रस्तुत अध्याय में हम पाठ–प्रस्तावना कौशल का अध्ययन करेंगें।

3.2 पाठ प्रस्तावना कौशल के घटक (Components of Skill of Introducing the Lesson)

पाठ प्रस्तावना कौशल का सम्बन्ध पाठ को प्रभावशाली ढंग से प्रारम्भ करने की कला से है। अंग्रेजी में एक कहावत है – 'Well begin is half done' अर्थात् यदि किसी कार्य का प्रारम्भ उचित ढंग से हो जाए तो समझना चाहिए कि आधा कार्य पूर्ण हो गया है।

कक्षा शिक्षण में यदि अध्यापक पाठ का प्रारम्भ उचित ढंग से करता है तो वह विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं पाठ में उनकी रूचि बनाए रखने मे सफल होता है। पाठ प्रस्तावना के लिए विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की आवश्यकता होती है। अध्यापक अपनी कल्पना शक्ति, अनुभव एवं सजनात्मकता के आधार पर कुछ क्रियाओं का निर्धारण करता है जिससे अच्छा विन्यास प्रेरण हो। इस कौशल के महत्वपूर्ण घटक निम्नलिखित हैं–

1. **विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge of Students)–**नया पाठ आरम्भ रकने से पहले विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को जानना आवश्यक है। यह पूर्व ज्ञान उसी विषय से सम्बन्धित होना चाहिए जिससे संबंधित शिक्षण क्रियाएं आयोजित की जानी है। अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को जानने के लिए विशिष्ट युक्तियों एवं प्रविधियों का प्रयोग करना चाहिए। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को जानने पश्चात् अध्यापक नवीन ज्ञान का पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो वह अपनी पाठ–योजना में सुधार लाता है और कक्षा में उचित परिस्थितियों का निर्माण करता है।

2. **कथनों का विषय-वस्तु एवं उद्देश्यों से सम्बन्ध (Relationship between Subject-matter, Objectives and Statements)–**पाठ प्रस्तावना के लिए अध्यापक जिन कथनों का प्रयोग करता है, वे कथन विषय–वस्तु एवं नवीन ज्ञान से सम्बन्धित होने चाहिए और उस विषय–वस्तु का सम्बन्ध पूर्व निर्धारित उद्देश्यों से होना चाहिए। यदि अध्यापक ऐसा नहीं करता तो पाठ की प्रस्तावना प्रभावशाली तथा रूचिकर नहीं हो सकती।

3. **उचित क्रम (Proper Sequence)–**पाठ की प्रस्तावना के मुख्य बिन्दुओं में तर्क–संगत क्रम होना चाहिए यदि प्रस्तावना के दौरान प्रयोग किये गए विचारों, कथनों, प्रश्नों, क्रियाओं आदि का क्रम उचित एवं तर्क–संगत नहीं होता तो इससे विद्यार्थियों की बोधगम्यता में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

4. **प्रस्तावना की अवधि (Duration of Introduction)–**पाठ प्रस्तावना की अवधि न तो अधिक लम्बी होनी चाहिए और न ही अधिक छोटी। प्रस्तावना की अवधि इतनी होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को अभिप्रेरित किया जा सके। इससे वे नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाते हैं और विषय–वस्तु में उनकी रूचि बनी रहती है। अध्यापक को प्रस्तावना में निरर्थक बातों से बचना चाहिए।

5. **उद्देश्यों के अनुरूप साधन(Objectives and Devices)–**पाठ प्रस्तावना को रूचिकर एवं प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक विभिन्न साधनों का प्रयोग कर सकता हैं, जैसे –

   (i) उदाहरण, उपमाओं आदि का प्रयोग (Use of examples, analogies etc.);

   (ii) प्रश्न पूछना (Questioning)

(iii) कहानी कथन (Story telling)

(iv) नाटक (Drama)

(v) व्याख्यान, विवरण, दष्टान्त (Lecture, Descriptions, Narration)

(vi) दश्य–श्रव्य साधन (Audio-visual Aids)

(vii) प्रयोग एवं प्रदर्शन (Experimentation and Demonstration)

इन साधनों का चयन पाठ के उद्देश्यों एवं विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

3.3 शिक्षण कौशल के अध्ययन से सम्बन्धित अनुसूचियां (Schedules related with Teaching Skill)

प्रत्येक शिक्षण कौशल के अध्ययन के लिए निम्न दो प्रकार की अनुसूचियां प्रयोग की जाती है।

1. **निरीक्षण अनुसूची (Observation Sehedule)**

निरीचण अनुसूची से अभिप्राय उस अनुसूची से है जिसमें निरीक्षक किसी विशिष्ट कौशल के घटक व्यवहारों की छात्राध्यापक द्वारा की गई आवति अंकित करता है। आवति का टंकन टैली लगाकर कर किया जाता है। निरीक्षण प्रत्येक मिनट में घटक व्यवहारों की आवति का टंकन टैलीयां लगाकर करता है। इस सूची में छात्राध्यापक एवं निरीक्षक का नाम लिखा जाता है। इस सूची के आधार पर शिक्षण/पुनः शिक्षण के बारे में निर्णय लिया जाता है।

2. **मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule)**

इस अनुसूची में भी छात्राध्यापक एवं निरीक्षण का नाम लिखा जाता है। इस अनुसूची के आधार पर भी शिक्षण/पुनः शिक्षण के बारे में निर्णय लिया जाता है। मूल्यांकन अनुसूची में 7-बिन्दुओं वाली मापनी (7-point Ratio Scale) का प्रयोग किया जाता है। इसमें रेटिंग के लिए 0 से 6 तक अंक होते हैं। ये सभी अंक घटक व्यवहारों के उपयोग की सीमा प्रदर्शित करते हैं अंक '0' अत्यन्त निकृष्ट प्रर्दशन एवं अंक '6' अत्यंत उत्कष्ट प्रर्दशन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गयी टैलीयों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है। इसके आधार पर छात्राध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

3.4 पाठ प्रस्तावना (विन्यास प्रेरणा) कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for Skill of Introducing a Lesson (Set Induction))

कक्षा –	अनुक्रमांक –
विषय –	सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण
उपविषय–	दिनांक–
	निरीक्षक–

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि छात्राध्यापक ने विन्यास प्ररेणा कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है।

	घटक (Components)	रेटिंग (Rating)										
		0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1.	विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का प्रयोग किया गया।											
2.	कथनों का विषय–वस्तु और उद्देश्यों से सम्बन्ध था।											
3.	विचारों, प्रश्नों तथा कथनों में उचित क्रम था।											
4.	पाठ प्रस्तावना की अवधि उपयुक्त थी।											
5.	उद्देश्यों के अनुसार साधनों का प्रयोग किया गया।											

3.5 पाठ प्रस्तावना कौशल सम्बन्धित मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल) (Evaluation Schedule (Rating Scale) for the Skill of Introducing a Lesson)

कक्षा – सं.अ. अनुक्रमांक –

विषय – सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण –

उपविषय– दिनांक –

निरीक्षक –

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि संभावित अध्यापक ने पाठ–प्रस्तावना कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढंग से किया है। रेटिंग स्केल पर 0 से 6 तक अंक अंकित हैं। अंक '0' अत्यंत निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता का तथा अंक '6' उत्कृष्ट प्रदर्शन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गई टैलीयों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर संभावित अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

	घटक	रेटिंग (Rating)						
		अत्यन्त निकृष्ट	निकृष्ट	निम्न	औसत	उत्तम	अत्युत्तम	उत्कृष्ट
1.	विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का प्रयोग किया गया।	0	1	2	3	4	5	6
2.	कथनों का विषय–वस्तु और उद्देश्यों से सम्बन्ध था।	0	1	2	3	4	5	6
3.	विचारों, प्रश्नों तथा कथनों में उचित क्रम था।	0	1	2	3	4	5	6
4.	पाठ प्रस्तावना की अवधि उपयुक्त थी।	0	1	2	3	4	5	6
5.	उद्देश्यों के अनुसार साधनों का प्रयोग किया गया।	0	1	2	3	4	5	6

3.6 पाठ प्रस्तावना कौशल के अभ्यास के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ-योजना (Model Micro Lesson-plan for the Skill of Introducing a Lesson)

विषय – भौतिक कक्षा – VIII

उपविषय – रसायनिक अभिक्रियाएं समय – 5 मिनट

अध्यापक क्रिया – (कक्षा–कक्ष की दीवार की ओर इशारा करते हुए)

यह दीवार कौन से रंग की है?

विद्यार्थी क्रिया – सफेद रंग की।

अध्यापक क्रिया – दीवार का सफेद रंग किस कारण से है?

विद्यार्थी क्रिया – सफेदी के कारण।

अध्यापक क्रिया – (दीवार का सफेद रंग दिखाते हुए)

दीवार पर सफेदी करने के लिए किस पदार्थ का उपयोग किया जाता है?

विद्यार्थी क्रिया – चूने का उपयोग दीवार पर सफेदी करने के लिए किया जाता है।

अध्यापक क्रिया – छात्रों, आपने अपने घर में सफेदी होते हुए अवश्य देखी होगी। सफेदी करने से पूर्व क्या तैयारी की जाती है?

विद्यार्थी क्रिया – चूने को पानी में भिगोया जाता है।

अध्यापक क्रिया – जब चूने को पानी में भिगोया जाता है तो क्या होता है?

विद्यार्थी क्रिया – जोर–जोर से आवाज़ होती है, पानी में बुलबले उठते हैं और भाप निकलती है।

अध्यापक क्रिया – इस प्रक्रिया का रसायनिक नाम क्या होता है?

विद्यार्थी क्रिया – कोई स्पष्ट उत्तर नहीं।

अध्यापक क्रिया – (विद्यार्थियों को कुछ सामान्य कील दिखाते हुए)
ये क्या है?

विद्यार्थी क्रिया – कील।

अध्यापक क्रिया – (विद्यार्थियों को जंग लगी हुई कील दिखाते हुए)
इन्हें क्या कहा जाता है?

विद्यार्थी क्रिया – जंग लगी हुई कील।

अध्यापक क्रिया – (दोनों प्रकार के कील दिखाते हुए) – इन दोनों प्रकार के कीलों में क्या अन्तर है?

विद्यार्थी क्रिया – एक प्रकार के कीलों पर जंग लगा है और दूसरी प्रकार के कीलों पर नहीं।

अध्यापक क्रिया – जंग क्यों लगता है?

विद्यार्थी क्रिया – लोहे को पानी में रखने से।

अध्यापक क्रिया – जंग लगने की इस प्रक्रिया को क्या रसायनिक नाम दिया जाता है?

विद्यार्थी क्रिया – अस्पष्ट उत्तर।

अध्यापक क्रिया – रसायनिक अभिक्रिया की परिभाषा दीजिए।

विद्यार्थी क्रिया – कोई प्रतिक्रिया नहीं।

इस प्रश्न के पूछे जाने पर विद्यार्थी कोई अनुक्रिया नहीं करेंगे परन्तु उनकी विचार–प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी और इस स्थिति में अध्यापक प्रकरण या उपविषय की घोषणा करेगा–

(विद्यार्थियों, आज हम रसायनिक अभिक्रियाओं के विषय में पढ़ेंगे)

अपनी प्रगति जांचिए

(i) पाठ प्रस्तावना कौशल के विभिन्न घटकों की सूची बनाईए।

(ii) पाठ प्रस्तावना कौशल से सम्बन्धित मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है।

3.7 सारांश

पाठ प्रस्तावना कौशल अथवा विन्यास प्रेरणा कौशल से अभिप्राय उस योग्यता से है जिसकी सहायता से अध्यापक पाठ को प्रभावशाली ढंग से आरम्भ कर सकता है। पाठ प्रस्तावना के लिए अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, अनुभव तथा सहायक सामग्री आदि का प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तावना कौशल के पांच घटक हैं–विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान, अध्यापक कथन एवं शिक्षण–उद्देश्यों में संबंध, शिक्षण उद्देश्य एवं साधन, उचित क्रम तथा प्रस्तावना की अवधि। अध्यापक ने इन घटक व्यवहारों का उपयोग कितनी कुशलतापूर्वक किया है, इसका निरीक्षण करके मूल्यांकन अनुसूची में रेटिंग की जाती है अर्थात् अध्यापक द्वारा घटक व्यवहारों के प्रयोग के आधार पर उसका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और यह ज्ञात किया जाता है कि कौशल का विकास किस सीमा तक हुआ है।

मॉडल उत्तर

(i) पाठ प्रस्तावना कौशल के घटक हैं–विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान, अध्यापक कथन एवं शिक्षण–उद्देश्यों में संबंध, शिक्षण उद्देश्य एवं साधन, उचित क्रम तथा प्रस्तावना की अवधि।

(ii) कपया खण्ड 1.5 में देखें।

3.8 मुख्य शब्द

सूक्ष्म शिक्षण–शिक्षण क्रिया का सरल व लघु रूप जिसे थोड़े से समय (5-6 मिनट) के लिए एक संप्रत्यय और एक शिक्षण कौशल के अभ्यास तक सीमित रखा जाता है।

शिक्षण कौशल–वे शिक्षण क्रियाएं अथवा व्यवहार स्वरूप जो छात्रों के अधिगम को सुगम बना सकें और उनमें अपेक्षित व्यवहार–परिवर्तन ला सकें।

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Passi, B.K.	Becoming Better Teacher 'Micro Teaching Approach', Sahitaya Mudranalya, Ahmedabad 1976.
Jangira, N.K. and Singh, Ajit	'Core Teaching Skills: The Microteaching Approach', NCERT, New Delhi, 1983.
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi, 1977.
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989
वालिया, जे०एस०	'शैक्षिक तकनीकी', पाल पब्लिशर्ज, अमतसर।

इकाई-IV(b)

अध्याय-4: प्रश्न पूछना (Questioning)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- प्रश्न पूछने के उद्देश्य बता सकें।
- प्रश्नों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सके।
- अच्छे प्रश्नों की विशेषताओं की सूची बना सकें।
- प्रश्न पूछने की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।
- प्रश्नों के स्वरूप की व्याख्या कर सकें।

संरचनाः

4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रश्न पूछने के उद्देश्य
4.3 प्रश्नों के प्रकार
4.4 अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं
4.5 प्रश्न पूछने की प्रक्रिया
4.6 प्रश्नों का स्वरूप
4.7 सारांश
मॉडल उत्तर
4.8 मुख्य शब्द
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में प्रश्न प्रछना एक महत्वपूर्ण क्रिया है। शिक्षण की सफलता अधिकांश रूप से प्रश्न पूछने की कुशलता या कला पर निर्भर होती है। अध्यापक पाठ को प्रारम्भ करने से पूर्व से लेकर पाठ के समाप्त होने तक सभी स्तरों पर प्रश्नों का सहारा लेता है। विद्यार्थी अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के प्रति विभिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं – सही उत्तर देना, गलत उत्तर देना, कोई उत्तर नहीं देना, पूर्ण उत्तर न देना, आंशिक रूप से सही उत्तर देना आदि। अध्यापक द्वारा प्रश्न पूछने, उनमें तारतम्य स्थापित करने, सही दिशा में प्रश्न पूछने, कक्षा में प्रश्नों को समान रूप से विभाजित करने के कौशल को प्रश्न कौशल (Skill of Questioning) कहा जाता है।

प्रश्न और प्रश्न पूछने को आदिकाल से ही महत्व दिया गया है। सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं दर्शनशास्त्री प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'Republic' में प्रश्न पूछने की पद्धति (Dialectic Method) पर बल दिया है। उसके अनुसार शासकों के प्रशिक्षण में इस पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। पार्कर (Parker) के अनुसार प्रश्न ही समस्त शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम की कुंजी है।

(Questioning is the key to all educative processes) कॉलविन (Colvin) ने 20वीं शताब्दी के आरम्भ में इस तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है, "कोई भी अध्यापक जिसका प्रश्न कौशल पर अधिकार नहीं है, वह न तो मौलिक विषयों के शिक्षा–निर्देशन में सफल हो सकता है और न ही अन्य विषयों में।" (No teacher can succeed in his educational-guidance of fundamental subjects or other subjects who does not have a mastery over skill of questioning) रिस्क (Risk) के अनुसार 'शिक्षण की प्रभावशीलता अध्यापक की प्रश्न करने की क्षमता पर निर्भर करती है।' (The effectiveness of teaching rests on teacher's capability of asking questions)

प्रश्न करने की कला अध्यापक के लिए एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। किसी ने ठीक ही कहा है–

'I keep six honest serving men,
They taught me all I know
Their names are what and why and when
And how and where and who.'

4.2 प्रश्न पूछने के उद्देश्य (Objectives of Questioning)

प्रश्नों द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों की उपलब्धियों को जानने में सफल होता है। प्रश्नों द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का पता लगा कर नये ज्ञान को पूर्व ज्ञान के साथ जोड़ता है। प्रश्न पूछने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. पूर्व ज्ञान परीक्षा
2. विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना
3. विद्यार्थियों की रूचि जाग्रत करना
4. विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों (Learning difficulties) का पता लगाना
5. विद्यार्थियों की कमजोरियों का पता लगाना
6. विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना
7. पाठ की पुनरावत्ति करना
8. ज्ञान का प्रयोग करना
9. नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से संबंधित करना
10. विद्यार्थियों में चिन्तन, बोध एवं मौलिकता का विकास करना
11. विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में वद्धि करना
12. अभ्यास कराना
13. अनुशासन बनाये रखने के लिए
14. बौद्धिक एवं सामाजिक विकास में वद्धि करना
15. विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए

4.3 प्रश्नों के प्रकार (Types of Questions)

प्रश्न कई प्रकार के होते हैं। परम्परागत दष्टिकोण के अनुसार प्रश्न मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – स्वाभाविक प्रश्न (Natural Questions) एवं औपचारिक प्रश्न (Formal Questions)

स्वाभाविक प्रश्नों से तात्पर्य ऐसे प्रश्नों से है जिनके उत्तरों के संबंध में प्रश्नकर्ता विशेष जानकारी नहीं रखता। विद्यार्थियों

द्वारा किए गए प्रश्न इस प्रकार के होते हैं।

औपचारिक प्रश्नों का शिक्षण–अधिगम में विशेष महत्व है। अध्यापक द्वारा कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों से पूछे जाने वाले प्रश्न इसके अंतर्गत आते हैं। औपचारिक प्रश्न मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – परीक्षण प्रश्न (Testing Questions) एवं विकासात्मक अथवा शिक्षण प्रश्न (Development or Teaching Questions)

विकासात्मक प्रश्न (Development Questions)

ऐसे प्रश्न पाठ की रीढ़ (Backbone) माने जाते हैं। इनका प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्य से किया जाता है–

1. एक विशेष विचार का निर्माण करना।
2. महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना।
3. ज्ञान/पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करना।
4. विद्यार्थियों को स्वयं सीखने के लिए तैयार करना।
5. विद्यार्थियों को समान्तर निरीक्षण तथा केन्द्रीकरण की क्षमता प्राप्त करने के योग्य बनाना।
6. विद्यार्थियों के अधिगम को सुनिश्चित करना।
7. विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करना।

परीक्षण प्रश्न (Testing Questions)

ऐसे प्रश्न जो विद्यार्थियों की क्षमताओं एवं ज्ञान का पता लगाने के लिए पूछे जाते हैं, परीक्षण प्रश्न कहलाते हैं।

प्रश्नों का परम्परागत वर्गीकरण-

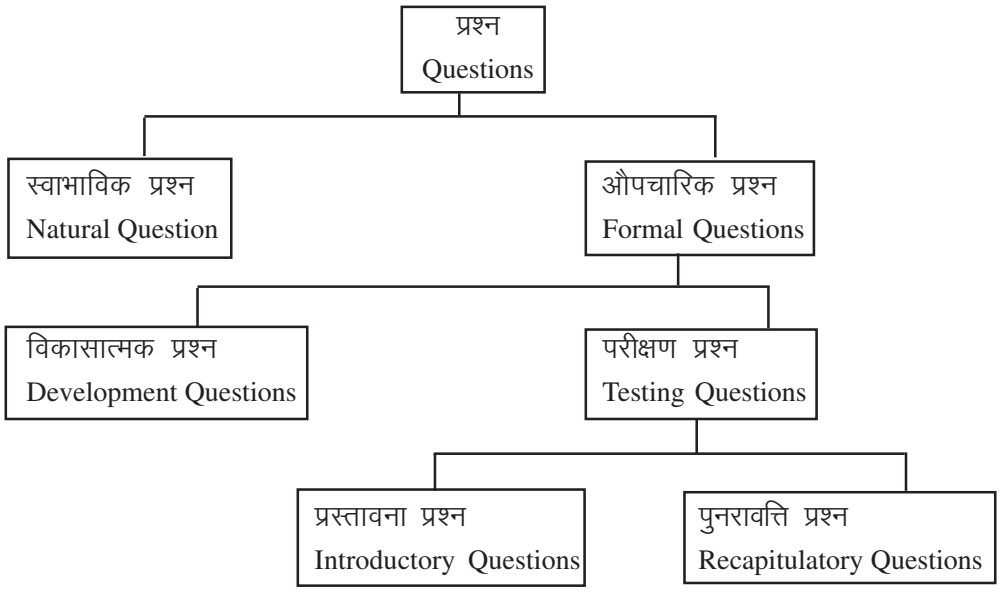

गाटो (Gato) ने अपनी पुस्तक 'Pupil's Questions' में प्रश्नों को निम्नलिखित आठ भागों में बांटा है–

1. स्मति प्रश्न (Memory Questions)
2. संगठनात्मक प्रश्न (Oganisation Questions)

3. तर्कात्मक प्रश्न (Reasoning Questions)
4. मूल्यांकनात्मक प्रश्न (Evaluative Questions)
5. निष्कर्षात्मक प्रश्न (Inference Questions)
6. समस्या प्रश्न (Problem Questions)
7. विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions)
8. विवेचनात्मक प्रश्न (Interpretation Questions)

4.4 अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं (Characteristics of Good Questions)

विद्यार्थियों की अधिकतम सहभागिता प्राप्त करने के लिए 'प्रश्न पूछना' प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। प्रश्न पूछने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्नों एवं अच्छे प्रश्नों की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। प्रश्न अध्यापक–कथन को कम करते हैं और विद्यार्थी सहभागिता को बढ़ाते हैं। अच्छे प्रश्नों में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं

1. अच्छा प्रश्न स्पष्ट होता है।
2. अच्छा प्रश्न संक्षिप्त होता है।
3. अच्छा प्रश्न सामान्य न हो कर विशिष्ट होता है।
4. अच्छा प्रश्न पाठ्य वस्तु से सम्बद्ध होता है।
5. अच्छा प्रश्न सुनिश्चित होता है।
6. अच्छा प्रश्न व्याकरण–संगत (Grammatically correct) होता है।
7. अच्छा प्रश्न ज्ञान के समन्वय के सहायक होता है।

4.5 प्रश्न पूछने की प्रक्रिया (Process of Questioning)

अध्यापक को शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों में प्रश्न पूछते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

1. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट और इतनी ऊंची होनी चाहिए कि सभी विद्यार्थी उसे सुन सकें। यदि अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट और ऊंची नहीं होगी तो हो सकता है विद्यार्थी प्रश्न को समझ न सकें।
2. प्रश्न पूछने की गति न तो बहुत धीमी और न ही बहुत तेज होनी चाहिए।
3. अध्यापक को कक्षा में पहले प्रश्न पूछना चाहिए और विद्यार्थियों को उत्तर देने के लिए बाद में कहना चाहिए। पहले प्रश्न पूछने से सभी विद्यार्थी एक साथ प्रश्न का उत्तर सोचने में व्यस्त होंगे। इसके विपरीत यदि केवल एक विद्यार्थी को पहले खड़ा करके उससे प्रश्न पूछा जायेगा तो संभवतः सभी विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर सोचने का प्रयत्न नहीं करेंगे।
4. प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए विद्यार्थियों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। समय प्रश्नों के अनुसार दिया जाना चाहिए। वर्णनात्मक और सूचनात्मक प्रश्नों की अपेक्षा आलोचनात्मक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए अधिक समय देना चाहिए।
5. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की मुख मुद्रा एवं भाव भंगिमा सकारात्मक एवं सहयोगात्मक होनी चाहिए।

6. प्रश्नों को कक्षा के सभी विद्यार्थियों में समान रूप से वितरण (Distribution) होने चाहिए। प्रश्न पूछते समय किसी भी छात्र की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और न ही किसी एक छात्र से बहुत अधिक प्रश्न पूछने चाहिए। प्रश्न न तो बहुत अधिक मात्रा में और न ही बहुत कम मात्रा में पूछे जाने चाहिए।

7. प्रश्न को तब तक नहीं दोहराना चाहिए तब तक अध्यापक को पूर्ण विश्वास न हो कि प्रश्न विद्यार्थियों की समझ में नहीं आया।

8. जहाँ तक संभव हो, 'क्या कोई यह बता सकता है?' जैसी शैली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. प्रश्न विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर के अनुसार करने चाहिए। प्रश्न का उत्तर न देने की विद्यार्थी की असमर्थता को स्वीकार किया जाना चाहिए। अध्यापक में इतनी योग्यता होना आवश्यक है कि वह विद्यार्थी की क्षमतानुसार उससे प्रश्न करे, उसे सोचने का पर्याप्त समय दे और प्रयत्न करने पर भी यदि विद्यार्थी उत्तर न दे पाए तो उस पर समय व्यर्थ न करे।

4.6 प्रश्नों का स्वरुप (Form of Questions)

4.6.1. प्रश्न कैसे होने चाहिए-

1. प्रश्नों की भाषा सरल होनी चाहिए।

2. प्रश्न स्पष्ट, संक्षिप्त, सम्बद्ध तथा प्रसंगानुकूल होने चाहिए।

3. प्रश्न विद्यार्थियों की योग्यता तथा बौद्धिक स्तर के अनुसार होने चाहिएं।

4. दो प्रश्न इकट्ठे नहीं पूछे जाने चाहिए।

5. प्रश्नों का स्वरूप यथासंभव आकर्षक होना चाहिए।

6. प्रश्न इस प्रकार के हों जिससे अनुमान लगाने मात्र से उत्तर देना संभव न हो। जहां तक संभव हो, अनुमान लगाकर उत्तर देने के अभ्यास को समाप्त करना चाहिए।

7. प्रश्न व्याकरण संगत होने चाहिए। प्रश्न में व्याकरण सम्बन्धित अशुद्धियां नहीं होनी चाहिए।

8. प्रश्न इस प्रकार का होना चाहिए कि उसका एक ही उत्तर संभव हो।

4.6.2. प्रश्न कैसे न हों-

प्रश्नों की सुसंरचना के लिए अध्यापक को निम्न प्रकार के प्रश्नों से बचना चाहिए–

1. **'हां' या 'न- प्रकार के प्रश्न ('Yes' or 'No' type questions)**

   अध्यापक को ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनका उत्तर 'हां' या 'न' में हो। ऐसे प्रश्न विद्यार्थियों को गहन चिन्तन के लिये प्रेरित करने की अपेक्षा अनुमान लगाने की प्रेरणा देते हैं। "क्या वायु में भार होता है?" "क्या आप ने सर इसाक न्यूटन का नाम सुना है?" "क्या सांस लेने के लिए आक्सीजन आवश्यक है?" इस प्रकार के प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। प्रश्न ऐसे हों जिनका उत्तर देने के लिए विद्यार्थियों को मानसिक परिश्रम करना पड़े।

2. **प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न (Echo or Suggestive Questions)**

   प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न अभी–अभी पढ़ाये गये पाठ पर आधारित होते हैं और उनमें से उत्तर प्रतिध्वनित होते हैं। उदाहरण – "वायु में 1/5 भाग ऑक्सीजन होती है। वायु में आक्सीजन की कितनी मात्रा होती है?", "जल का

रसायनिक सूत्र H_2O है। जल का रसायनिक सूत्र क्या है?" प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न विद्यार्थियों को सोचने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते। इसीलिए अध्यापक को ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जो विद्यार्थियों को सोचने एवं तर्कसंगत उत्तर देने के लिए प्रेरित करें।

3. **इलिप्टिकल प्रश्न (Elliptical Questions)**

ऐसे प्रश्न जिनमें एक अधूरा कथन होता है, जिसे पूर्ण करके उत्तर प्राप्त होता है, इलिप्टिकल प्रश्न कहलाते हैं। उदाहरण

क) परमाणु तत्व का वह छोटे से छोटा कण है जिसमें.....

ख) सौर ऊर्जा का स्त्रोत .....

ग) रसायनिक अभिक्रिया वह होती है जिसमें.....

अध्यापक को ऐसे प्रश्नों के स्थान पर निम्नलिखित रूप में प्रश्न पूछने चाहिए–

क) परमाणु किसे कहते हैं?

ख) सौर ऊर्जा का स्त्रोत क्या है?

ग) रसायनिक अभिक्रिया की परिभाषा दो।

4. **अलंकारिक प्रश्न (Rhetorical Questions)**

अलंकारिक प्रश्न भाषा को अलंकारिक बनाने एवं किसी बात पर बलदेने के लिए पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों का प्रयोजन विद्यार्थियों से उत्तर प्राप्त करना नहीं होता। जैसे – घर्षण के बारे में जानकारी देते समय अध्यापक के प्रश्न – "क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि घर्षण एक आवश्यक बुराई है?" का कोई अर्थ नहीं निकलता। इस प्रश्न में केवल घर्षण के आवश्यक बुराई होने पर बल दिया गया है। ऐसे प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं होता।

5. **उत्तर-उन्मुख प्रश्न (Leading Questions)**

ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर प्रश्न में ही हो, उत्तर–उन्मुख प्रश्न कहलाते हैं। अध्यापक को विद्यार्थियों से उत्तर–उन्मुख प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। उदाहरण – क्या आप जानते हैं कि एडीसन ने बिजली के बल्ब का अविष्कार किया? इस प्रश्न में उत्तर भी दिया गया है। ऐसे प्रश्नों को पूछने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

6. **पुष्टिकारक प्रश्न (Corroborative Questions)**

ऐसे प्रश्नों का उद्देश्य अध्यापक द्वारा कही हुई बात की पुष्टि करना होता है। अध्यापक कोई वक्तव्य देने के पश्चात् पूछता है, "है या कि नहीं?" विद्यार्थी भी प्रायः बिना सोचे–समझे कह देते हैं, "हाँ जी"। इससे यह पता नहीं चलता कि विद्यार्थियों ने कुछ समझा है अथवा नहीं।

अध्यापक को पुष्टिकारक प्रश्नों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रश्न कितने प्रकार के हो सकते हैं?

(ii) अच्छे प्रश्नों की क्या विशेषताएं होती हैं?

4.7 सारांश

प्रश्नों का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के सभी स्तरों में विशेष महत्व है। पाठ की प्रस्तावना, व्याख्या, पुनरावत्ति, मूल्यांकन आदि में प्रश्नों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रश्न अच्छे होने चाहिए। अच्छे प्रश्नों से अभिप्राय है कि प्रश्न सरल, स्पष्ट, विशिष्ट, सुनिश्चित, विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप एवं ज्ञान के समन्वय में सहायक हो। प्रश्नों के स्वरूप के साथ ही प्रश्न पूछने की कला का भी विशेष महत्व है। प्रश्नों को पूछते समय अध्यापक की आवाज स्पष्ट, मुखमुद्रा, एवं भावभंगिमा सहयोगात्मक होनी चाहिए। प्रश्नों का कक्षा में समान वितरण हो और प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए विद्यार्थियों को उपयुक्त समय दिया जाना चाहिए।

मॉडल उत्तर

(i) गाटो के अनुसार प्रश्न निम्नलिखित आठ प्रकार के होते हैं–स्मति प्रश्न, संगठनात्मक प्रश्न, तर्कात्मक प्रश्न, मूल्यांकनात्मक प्रश्न, निष्कर्षात्मक प्रश्न, समस्या प्रश्न, विश्लेषणात्मक प्रश्न एवं विवेचनात्मक प्रश्न।

(ii) अच्छे प्रश्न स्पष्ट, सुनिश्चित, विशिष्ट, संक्षिप्त कथन, विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप व ज्ञान के समन्वय में सहायक होते हैं।

4.8 मुख्य शब्द

प्रश्न कौशल–वह योग्यता जिसके द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों से उचित रूप से प्रश्न पूछता है और अपेक्षित उत्तर प्राप्त करता है।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Becoming Better Teacher	'Micro Teaching Approach', Sahitaya Mudranalya, Ahmedabad 1976.
Jangira, N.K. and Singh, Ajit	'Core Teaching Skills: The Microteaching Approach', NCERT, New Delhi, 1983.
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi, 1977.
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989
वालिया, जे०एस०	'शैक्षिक तकनीकी', पाल पब्लिशर्ज, अमतसर।

इकाई-IV(b)

अध्याय-5: दष्टान्त कौशल
(Skill of Illustrating with Examples)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- दष्टान्त कौशल का अर्थ एवं महत्व बता सकें।
- दष्टान्त कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।
- दष्टान्तों द्वारा शिक्षण के लिए व्यावहारिक सुझावों की सूची बना सकें।
- दष्टान्त कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची एवं मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- दष्टान्त कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना की रचना कर सकें।

संरचना:

5.1 प्रस्तावना
5.2 दष्टान्त कौशल
5.3 दष्टान्त कौशल के घटक
5.4 दष्टान्तों द्वारा शिक्षण के लिए व्यावहारिक सुझाव
5.5 दष्टान्त कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
5.6 दष्टान्त कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
5.7 दष्टान्त कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना
5.8 सारांश
मॉडल उत्तर
5.9 शब्दावली
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को रुचिकर एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अध्यापक में कुछ विशेष योग्यताओं अथवा शिक्षण कौशलों का विकास करना आवश्यक है। इन शिक्षण कौशलों के प्रयोग से अधिगम को सरल, सुबोध एवं रोचक बनाने में सहायता मिलती है और विद्यार्थियों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाए जा सकते हैं। इस अध्याय में हम दष्टान्त कौशल का अध्ययन करेंगे।

5.2 दष्टांत कौशल
Skill of Illustrating with Examples (Visuals)

दष्टांत कौशल को दष्टान्त–व्याख्या कौशल एवं उदाहरणों सहित स्पष्टीकरण कौशल भी कहा जाता है। दष्टांत कौशल से अभिप्राय किसी विचार, अवधारणा, सिद्धान्त आदि को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के उदाहरणों, चित्रों

एवं स्पष्टीकरणों आदि के प्रयोग से है। कक्षा शिक्षण में जटिल प्रत्ययों, अमूर्त विचारों या अवधारणाओं आदि को सरल रूप में विद्यार्थियों को समझाना पड़ता हैं इसके लिए कई बार अत्युत्तम व्याख्या, व्याख्यान तथा वर्णन आदि पर्याप्त सिद्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में अध्यापक दष्टान्त कौशल का उपयोग करता है। दष्टान्त कौशल में दो प्रक्रियाएं निहित हैं–

1. विद्यार्थियों के सम्मुख किसी विचार अथवा सिद्धान्त को स्पष्ट करना।
2. इस बात की पुष्टि करना कि विद्यार्थियों ने उस विचार अथवा सिद्धान्त को अच्छी तरह समझा है या नहीं।

दष्टांत कौशल में अध्यापक किसी विचार, नियम अथवा अवधारणा के अनुकूल उदाहरणों का चयन करता है और उन्हें विद्यार्थियों के सम्मुख प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

दष्टांत कौशल की सहायता से अध्यापक निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है–

1. विषय वस्तु को रूचिकर बनाना।
2. अज्ञात ज्ञान को ज्ञात से सम्बद्ध करना।
3. जटिल तथा अपरिचित ज्ञान को सरल तथा परिचित बनाना।
4. विद्यार्थियों की इन्द्रियों का उचित उपयोग

5.3 दष्टांत कौशल के घटक (Components of Skill of Illustrating with Examples)

1. **सम्बन्धित उदाहरणों का निर्माण** – उदाहरण से अभिप्राय ऐसी स्थितियों अथवा वस्तुओं से है जो किसी विचार, अवधारणा अथवा सिद्धान्तों को स्पष्ट करती हैं। उदाहरण उपविषय से सम्बन्धित होने चाहिए जिससे विद्यार्थी, विचार, अवधारणा, सिद्धान्त आदि को अच्छी तरह समझ सकें। असम्बन्धित उदाहरण विषय को समझने में बाधा उत्पन्न करते हैं। अतः अध्यापक को उदाहरणों का चयन करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वे उपविषय से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं।

2. **सरल उदाहरणों का निर्माण** – अध्यापक को सरल उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिए। सरल उदाहरणों से अभिप्राय ऐसे उदाहरणों से है जो विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान तथा पूर्व अनुभवों पर आधारित होते हैं। सरल उदाहरणों के उपयोग से अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित कर सकता है जिससे वे नवीन विचार, अवधारणा, नियम आदि को आसानी से समझ सकें। उदाहरणों की सरलता का निर्णय निम्न बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है।

   क) विद्यार्थियों के भाग लेने का स्तर एवं उनके उत्तरों की शुद्धता।

   ख) विद्यार्थियों का स्पष्ट बोध। जब विद्यार्थी विषय से सम्बन्धित अपने उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तो विद्यार्थियों के स्पष्ट बोध का ज्ञान होता है।

3. **रूचिकर उदाहरणों का निर्माण** – उदाहरण सरल एवं सम्बन्धित होने के साथ–साथ रूचिकर भी होने चाहिए। रूचिकर उदाहरण विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं उनका ध्यान केन्द्रित करने में सहायक होते हैं। उदाहरणों का विद्यार्थियों के परिपक्वता स्तर तथा अनुभवों के अनुकूल होना भी उन्हें रूचिकर बनाता है।

4. **उदाहरणों के लिए उचित माध्यमों का प्रयोग** – कक्षा में दष्टांत या उदाहरण को प्रयोग करने के लिए उपयुक्त माध्यमों या उपागमों का चयन करना आवश्यक है। ये माध्यम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

   अ) शाब्दिक माध्यम (Verbal Media)

   ब) अशाब्दिक माध्यम (Non-Verbal Media)

अ) **शाब्दिक माध्यम** – शाब्दिक माध्यमों से अभिप्राय शब्दों के उच्चारण द्वारा अथवा अध्यापक द्वारा मौखिक रूप से विचारों, नियमों आदि के वर्णन से है। शाब्दिक साधनों में कहानियों एवं घटनाओं के कथन, रूपक एवं तुलनाएं, उपमाएं एवं शब्द आदि सम्मिलित होते हैं।

ब) **अशाब्दिक माध्यम** – अशाब्दिक माध्यमों से अभिप्राय ऐसे माध्यमों से है जिनमें शब्दों के प्रयोग के बिना उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इन्हें दश्य साधन भी कहा जाता है। ये निम्न प्रकार के होते हैं।

क) **ठोस सामग्री (Concrete Materials)** कई बार कक्षा में विषय वस्तु को स्पष्ट करने के लिए ठोस सामग्री अर्थात् वास्तविक पदार्थों एवं नमूनों (Specimen) का प्रयोग बहुत प्रभावशाली अधिगम उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए – साईकिल पम्प, थर्मामीटर, बिजली की घंटी आदि के प्रयोग से विज्ञान के प्रत्यय विद्यार्थियों को स्पष्ट किए जा सकते हैं।

अतः जहां तक संभव हो, अध्यापक को कक्षा में ठोस सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

ख) **मॉडल (Models)** विज्ञान के प्रत्ययों को समझाने के लिए सभी वास्तविक वस्तुओं को कक्षा में लाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में उस वस्तु का मॉडल बनाकर विषय वस्तु को समझाया जा सकता है। मॉडल या प्रतिमान वास्तविकता को दर्शाते हैं। मॉडल विचारों, नियमों, अवधारणों आदि को स्पष्ट करने में अध्यापक की सहायता करते हैं। मॉडल पाठ को रूचिकर बनाते हैं। परन्तु मॉडल सरल, स्पष्ट एवं वास्तविक वस्तु के अनुरूप होना चाहिए।

उदाहरण – पवन चक्की का मॉडल बना कर कक्षा में पवन ऊर्जा का विद्युत ऊर्जा अथवा यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तन दिखाया जा सकता है।

ग) **चार्ट, ग्राफ एवं रेखाचित्र (Chart, Graph and Diagrams)** – चार्ट, ग्राफ एवं रेखाचित्र का प्रयोग करके अध्यापक नियमों, अवधारणाओं आदि को स्पष्ट कर सकता है।

घ) **चित्र, छायाचित्र एवं पोस्टर (Pictures, Photographs & Postures)** – कई बार कक्षा में मॉडल और वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग एवं प्रदर्शन असम्भव होता है। इस स्थिति में अध्यापक चित्रों, छायाचित्रों एवं पोस्टरों का प्रयोग करता है। ये सामग्री बहुत सस्ती एवं आसानी से प्राप्त हो सकती है। अध्यापक इस सामग्री को स्वय भी बना सकता है। अध्यापक चित्र एलबम भी तैयार कर सकता है अध्यापक को चित्रों के उपयोग में निम्नलिखित सावधानियां प्रयोग करनी चाहिए।

अ) चित्र स्पष्ट एवं आकर्षक होने चाहिए।

ब) चित्रों का आकार बड़ा होना चाहिए जिससे सभी विद्यार्थी ठीक से देख सकें

स) चित्र विषय–वस्तु से सम्बन्धित हों।

ङ) **प्रयोगात्मक प्रदर्शन विधि (Experimental Demonstration Method)** – यह विधि विज्ञान विषय के जटिल प्रत्ययों को समझाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसमें नियमों, सिद्धान्तों आदि को प्रयोग करके अथवा प्रदर्शन करके स्पष्ट किया जाता है।

5. **आगमन-निगमन उपागमों का प्रयोग (Using Inductive Deductive Approach)** – दष्टान्त कौशल में आगमन एवं निगमन दोनों प्रकार के उपागमों का प्रयोग करते हैं।

क) **आगमन उपागम (Inductive Approach)** – इस उपागम द्वारा कक्षा में किसी संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विषय–वस्तु का आरम्भ करता है और विद्यार्थियों की

सहायता से उन उदाहरणों का निष्कर्ष निकाल कर विचार, सिद्धान्त आदि को समझाने का प्रयास करता है। इस उपागम में 'ज्ञात से अज्ञात' एवं 'विशिष्ट से सामान्य' की ओर आदि सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। आगमन उपागम का प्रयोग करते समय अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उदाहरण सरल, रोचक एवं सम्बन्धित हों।

उदाहरण-

अध्यापक एक विद्यार्थी को निकट बुलाकर उसे एक गेंद ऊपर की ओर फेंकने को कहेगा एवं निम्न प्रश्न पूछेगा–

अध्यापक– यदि आप किसी वस्तु को आकाश की ओर फेंकोगे तो वह कहाँ जायेगी?

विद्यार्थी– वह वस्तु नीचे धरती पर आ कर गिरेगी।

अध्यापक– यदि किसी उड़ते हुए पक्षी को गोली मार दी जाए तो वह कहाँ गिरेगा?

विद्यार्थी– वह पक्षी भी नीचे धरती पर गिरेगा।

अध्यापक– इन सभी उदाहरणों से तुम क्या परिणाम निकालते हो?

विद्यार्थी– ऊपर फेंकी गई प्रत्येक वस्तु नीचे धरती पर आकर गिरती है।

अध्यापक कथन– विद्यार्थियों, ऐसा इसलिए होता है कि पथ्वी सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है और इसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं।

ख) **निगमन उपागम (Deductive Approach)** – इस उपागम में अध्यापक किसी संप्रत्यय की व्याख्या करने से पूर्व उसका अर्थ, परिभाषा, नियम आदि प्रस्तुत करता है और फिर उस संप्रत्यय की पुष्टि के लिए उदाहरण एवं प्रयोग आदि करता है। इस उपागम में अर्थ पहले एवं उदाहरण बाद में प्रस्तुत किये जाते हैं।

इस प्रकार निगमन उपागम स्थापित नियम, अधिनियम अथवा अवधारणा का बोध कराने में सहायता प्रदान करता है। इस उपागम में 'सामान्य से विशिष्ट' की ओर, 'सूक्ष्म से स्थूल' की ओर (From Abstract to Concrete) आदि सूत्रों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण - जड़त्व का नियम

अध्यापक– जड़त्व के नियम के अनुसार यदि कोई वस्तु स्थिर अवस्था में है तो वह स्थिर अवस्था में ही रहने का प्रयत्न करती है और यदि कोई वस्तु गति की अवस्था में है तो वह गति की अवस्था में ही रहने का प्रयत्न करती है जब तक उस पर कोई बाह्य बल न लगाया जाए। पदार्थों के इस गुण को जड़त्व कहते हैं।

अध्यापक इस नियम को प्रयोग द्वारा सिद्ध करेगा।

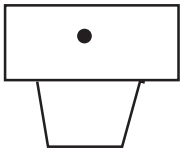

प्रयोग– एक गिलास, एक गत्ते का चौकोर टुकड़ा एवं एक सिक्का लो। गत्ते का टुकड़ा गिलास पर रखो और उसके ऊपर एक सिक्का रखो। अब उंगली की सहायता से गत्ते को धक्का दो! आप देखेंगे कि सिक्का गिलास में गिर जाता है और गत्ता एक ओर चला जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि गत्ते पर बल लगाने से वह गति अवस्था में आ जाता है परन्तु सिक्का विराम अवस्था में रहने का प्रयत्न करता है और गिलास में गिर जाता है।

दष्टान्त कौशल में आगमन एवं निगमन दोनों प्रकार के उपागमों की आवश्यकता होती है। अतः अध्यापक को इस कौशल के विकास के लिए दोनों उपागमों का मिश्रित प्रयोग करना चाहिए।

5.4 दष्टान्तों द्वारा शिक्षण के लिए व्यावहारिक सुझाव (Practical Suggestions for Teaching with Illustrations)

1. दष्टान्त सरल, स्पष्ट एवं सुबोध होने चाहिए।
2. दष्टान्त विषयवस्तु से सम्बन्धित (Relevant) होने चाहिए।
3. दष्टान्त रूचिकर (Interesting) होने चाहिए। दष्टान्तों का चयन करते समय अध्यापक को विद्यार्थियों की रूचियों को ध्यान में रखना चाहिए।
4. दष्टान्त विद्यार्थियों की आयु, क्षमताओं एवं मानसिक स्तर के अनुरूप होने चाहिए।
5. दष्टान्त यथार्थ एवं शुद्ध (Exact and Acurate) होने चाहिए।
6. दष्टान्त उचित रूप से नियोजित एवं तैयार होने चाहिए। अस्त–व्यस्त एवं अनियोजित दष्टान्त विद्यार्थियों में भ्रम उत्पन्न करते हैं।
7. अध्यापक को पाठ में अत्याधिक दष्टान्तों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, थोड़े परन्तु सर्वोत्तम दष्टान्तों का प्रयोग करना चाहिए।
8. दष्टान्तों, विशेष रूप से अशाब्दिक दष्टान्तों को उचित रूप से प्रदर्शित करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक चार्ट, मॉडल आदि का प्रयोग कर रहा है तो उसे दष्टान्त (चार्ट/मॉडल) को पाठ के आरम्भ में ही विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। दष्टांत को उचित समय पर विद्यार्थियों को दिखाया जाना चाहिए। दष्टान्त को इस प्रकार दिखाना चाहिए कि कक्षा के सभी विद्यार्थी अच्छी तरह देख सकें।

5.5 दष्टांत कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण सूची

Observation Schedule for the Skill of Illustrating with Examples (Visual)

कक्षा ————————— सं० अ० अनुक्रमांक —————————

विषय ————————— सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण —————————

दिनांक —————————

उपविषय ————————— निरीक्षक —————————

प्रस्तुत निरीक्षण सूची का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि संभावित–अध्यापक ने दष्टान्त कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रति निर्णय करने के लिए टैलीयां (Tallies) लगाई जाती हैं। सं०–अध्यापक के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके निरीक्षक निम्नलिखित व्यवहारों की आवति का अंकन टैलीयां लगाकर अथवा हाँ/नहीं में करता है।

घटक (Components)		Specific Observation	आवति टैलीयां (Tallies)
1.	उदाहरण विषय–वस्तु/संप्रत्यय से सम्बद्ध थे।	हाँ/नहीं	
2.	सरल उदाहरणों का प्रयोग किया गया।	हाँ/नहीं	
3.	उदाहरण रूचिकर थे।	हाँ/नहीं	
4.	उदाहरण के उपयुक्त माध्यम चुना गया।	हाँ/नहीं	
5.	दष्टान्त के लिए आगमन उपागम का प्रयोग किया गया।	हाँ/नहीं	
6.	दष्टान्त के लिए निगमन उपागम का प्रयोग किया गया।	हाँ/नहीं	

7. प्रस्तुत उदाहरणों की संख्या पर्याप्त थी। हाँ/नहीं
8. विद्यार्थियों के अधिगम को जानने के लिए अध्यापक ने उनसे उदाहरण पूछे। हाँ/नहीं

5.6 दष्टांत कौशल से सम्बन्धित मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल)
(Evaluation Schedule (Rating Scale) for the skill of Illustrating with Examples)

कक्षा ————— सं० अ० अनुक्रमांक —————
विषय ————— सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण —————
उपविषय ————— दिनांक —————
निरीक्षक —————

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल) का प्रयोग जानने के लिए किया जाता है कि छात्र अध्यापक ने दष्टांत कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढंग से किया है। रेटिंग स्कल पर 0 से 6 तक अंक अंकित हैं। अंत '0' अत्यंत निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता का तथा अंक '6' उत्कृष्ट प्रदर्शन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गयी टैलीयों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन (Qualitative Evaluation) किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर सं०–अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

	घटक	रेटिंग (Rating)						
		अत्यन्त निकृष्ट	निकृष्ट	निम्न	औसत	उत्तम	अत्युत्तम	उत्कृष्ट
1.	उदाहरणों की विषय वस्तु से सम्बद्धता	0	1	2	3	4	5	6
2.	उदाहरणों की सरलता	0	1	2	3	4	5	6
3.	उदाहरणों की रोचकता	0	1	2	3	4	5	6
4.	माध्यमों की उपयुक्तता	0	1	2	3	4	5	6
5.	उपागम की उपयुक्तता	0	1	2	3	4	5	6
6.	उदाहरणों की संख्या	0	1	2	3	4	5	6
7.	विद्यार्थियों से पूछे गए उदाहरणों की उपयुक्तता	0	1	2	3	4	5	6

5.7 दष्टांत कौशल के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना
(Model Micro Lesson-plan for the Skill of Illustrating with Examples)

विषय – भौतिक विज्ञान कक्षा – VII
उपविषय – गुरुत्व, गुरुत्व केन्द्र व गुरुत्वाकर्षण समय – 6 मिनट

अध्यापक क्रिया – विद्यार्थियों, आप लोग ध्यान से देखना एवं सुनना एवं जो भी पूछा जाये उसका उत्तर देना।
(चॉक का टुकड़ा ऊपर की ओर उछालते हुए)
यह मैंने क्या किया?

विद्यार्थी क्रिया – चॉक का टुकड़ा ऊपर की ओर फेंका

अध्यापक – चॉक का टुकड़ा अब कहाँ पहुंच गया है?

विद्यार्थी – चॉक का टुकड़ा फर्श पर गिर गया है।

अध्यापक – शाबाश! अगर हम एक गेंद को भी इसी प्रकार आकाश की ओर उछालें, तो वह कहाँ पर पहुंचेगी?

विद्यार्थी – गेंद भी इसी प्रकार फर्श पर आ कर गिर जायेगी।

अध्यापक – बहुत अच्छा, विद्यार्थियों, चॉक या गेंद को ऊपर की ओर फेंकने पर ये हर बार नीचे फर्श की ओर क्यों आ जाते हें? ये ऊपर की ओर ही क्यों नहीं जाती अर्थात् आकाश की ओर क्यों नहीं जाती?

विद्यार्थी – असमंजस की स्थिति/अस्पष्ट उत्तर।

अध्यापक – (स्पष्टीकरण) ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपने केन्द्र की ओर आकर्षित करती है। पथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए एक विशिष्ट बल लगाती है, इस बल को गुरुत्वाकर्षण बल कहा जाता है। पथ्वी का केन्द्र गुरुत्व कहलाता है और पथ्वी की वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करने की इस प्रवत्ति को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। (श्यामपट्ट सार)

अच्छा, गुरुत्वाकर्षण के बार में सबसे पहले मनुष्य को कैसे जानकारी मिली?

विद्यार्थी – चुप/जिज्ञासा की स्थितिं

अध्यापक– (प्रभावकारी ढंग से शब्द–चित्रण करते हुए) विश्व–प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर न्यूटन एक दिन एकान्त में अपने बाग में एक सेब के पेड़ के नीचे बैठे किसी समस्या पर विचार कर रहे थे। तभी पेड़ से एक सेब उनके सामने जमीन पर आकर गिरा। उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने सेब को जमीन से उठाया, पहले सेब को, फिर उस टहनी को देखा जिस से सेब टूट कर नीचे गिरा था। ऐसा करते हुए उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि यह सेब डाल से टूटने पर नीचे ही क्यों गिरा? यह वायु में तैरता क्यों नहीं रहा अथवा ऊपर आकाश की ओर क्यों नहीं गया? उन्होंने सेब को आकाश की ओर उछाला और सेब पुनः नीचे जमीन पर आ कर गिरा। न्यूटन ने इसका कारण ढूंढने के लिए सोचना शुरू कर दिया। उन्होंने अनुमान लगाया कि पथ्वी में अवश्य ही ऐसी कोई शक्ति है जिसके कारण यह प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है। अपने विचारों व प्रयोगों द्वारा उन्होंने पथ्वी की इस गुरुत्वाकर्षण शक्ति का पता लगाया और गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of Gravitation) प्रतिपादित किया। (दष्टांत सहित व्याख्या)

अपनी प्रगति जांचिए

(i) दष्टान्त कौशल के घटक व्यवहारों की सूची बनाओ।

(ii) दष्टान्त कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना की रचना करो।

5.8 सारांश

दष्टान्त कौशल से अभिप्राय किसी विचार, नियम, सिद्धान्त अवधारणा आदि को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न उदाहरणों, चित्रों, स्पष्टीकरणों आदि के प्रयोग से है। दष्टान्त कौशल के मुख्य पांच घटक हैं–सरल उदाहरणों का प्रयोग, उदाहरणों की विषय–वस्तु से सम्बद्धता, उदाहरणों की रोचकता, माध्यमों की उपयुक्तता तथा आगमन व निगमन उपागमों का प्रयोग। उदाहरणों के लिए शाब्दिक अथवा अशाब्दिक या दोनों प्रकार के माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है। शाब्दिक माध्यमों में अध्यापक द्वारा मौखिक रूप से व्याख्या या वर्णन सम्मिलित होते हैं जबकि अशाब्दिक माध्यमों में ठोस वस्तुएं, मॉडल, चार्ट, ग्राफ, रेखाचित्र, चित्र, छाया चित्र एवं पोस्टर आदि सम्मिलित हैं।

दष्टान्त सरल, स्पष्ट, सुबोध, रुचिकर, विषय–वस्तु से सम्बद्ध एवं विद्यार्थियों की रुचि व स्तर के अनरूप होने चाहिएं। दष्टान्त यथार्थ होने चाहिएं।

मॉडल उत्तर

(i) दष्टान्त कौशल के घटक व्यवहार हैं–सरल उदाहरणों का प्रयोग, उदाहरणों की विषय–वस्तु से सम्बद्धता, उदाहरणों की रोचकता, माध्यमों की उपयुक्ता एवं प्रयोग–प्रदर्शन विधि।

5.9 मुख्य शब्द

दष्टान्त– ऐसे उदाहरण, चित्र व साधन जिन का प्रयोग किसी विचार, नियम, सिद्धान्त, अवधारणा आदि को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

आगमन–उदाहरणों द्वारा किसी संप्रत्यय, नियम, सिद्धान्त आदि की ओर ले जाना।

निगमन–किसी नियम, सिद्धान्त, संप्रत्यय को बताकर उदाहरणों द्वारा उसकी पुष्टि करना।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

Passi, B.K	Becoming Better Teacher 'Micro Teaching Approach', Sahitaya Mudranalya, Ahmedabad 1976.
Jangira, N.K. and Singh, Ajit	'Core Teaching Skills: The Microteaching Approach', NCERT, New Delhi, 1983.
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi, 1977.
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989
वालिया, जे०एस०	'शैक्षिक तकनीकी', पाल पब्लिशर्ज, अमतसर।

इकाई-IV(b)

अध्याय-6: व्याख्या कौशल (Skill of Explaining)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- व्याख्या कौशल का अर्थ बता सकें।
- व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।
- व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची एवं मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- व्याख्या कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजा की रचना कर सके।

संरचना:

6.1 प्रस्तावना
6.2 व्याख्या कौशल–अर्थ
6.3 व्याख्या कौशल के घटक
6.4 व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
6.5 व्याख्या कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
6.6 व्याख्या कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना
6.7 व्याख्या कौशल को प्रभावी बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव
6.8 सारांश
मॉडल उत्तर
6.9 मुख्य शब्द
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हम विभिन्न सूक्ष्म शिक्षण कौशलों का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में भी हम एक महत्वपूर्ण शिक्षण कौशल–'व्याख्या कौशल' का अध्ययन करेंगे। व्याख्या कौशल का प्रत्येक विषय में विशेष महत्व है क्योंकि यह जटिल संप्रत्ययों, नियमों, सिद्धान्तों आदि को सरल व सुबोध रूप में प्रस्तुत करने में सहायक है।

6.2 व्याख्या कौशल (Skill of Explaining)

कक्षा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना एवं उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना होता है। किसी भी कक्षा में कोई दो विद्यार्थी एक समान नहीं होते। उनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं। अध्यापक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न शिक्षण विधियों एवं कौशलों का प्रयोग करता है जिससे वह विषय–वस्तु को सरल बनाकर विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत कर सके। अध्यापक विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करने के लिए

व पाठ को समझाने के लिए जिस कौशल का प्रयोग करता है, उसे व्याख्या कौशल कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, विषय–वस्तु को सरल बनाकर प्रस्तुत करना और उसे ग्रहण करने योग्य बनाने के कौशल को व्याख्या कौशल कहते हैं। व्याख्या कौशल का प्रयोग सभी विषयों में किया जाता है। इसके प्रयोग के बिना विषय–वस्तु का प्रस्तुतीकरण संभव नहीं होता। विषय को पढ़ाते समय, जटिल प्रत्यय व सामग्री को समझाने के लिए अध्यापक व्याख्या कौशल का प्रयोग करता है। इसमें अध्यापक अन्तर्सम्बन्धित कथनों से किसी विचार, अवधारणा, घटना आदि को स्पष्ट करता है। अध्यापक कठिन पाठ्य–सामग्री की व्याख्या करके विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को नये ज्ञान से जोड़ता है जिससे नया ज्ञान विद्यार्थियों के लिए सरल हो जाता है। इससे विद्यार्थियों की बोधगम्यता में वद्धि होती है।

6.3 व्याख्या कौशल के घटक (Components of the Skill of Explaining)

किसी विचार, अवधारणा सिद्धांत या नियम की व्याख्या करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया में वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों प्रकार के व्यवहारों का समावेश होता है। व्याख्या को प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक को वांछनीय व्यवहारों को धीरे–धीरे कम करने का प्रयास करना चाहिए।

(A) वांछनीय व्यवहार (Desirable Behaviours)

अध्यापक के वांछनीय व्यवहार निम्नलिखित हैं–

1. **उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का प्रयोग (Using appropriate Beginning Statement)** – किसी विचार या प्रत्यय की व्याख्या से पूर्व अध्यापक स्पष्ट प्रारम्भिक कथन द्वारा यह घोषणा करता है कि वह क्या पढ़ाने वाला है। इससे विद्यार्थियों में मानसिक तत्परता उत्पन्न होती है और वे व्याख्या सुनने व समझने के लिए तैयार हो जाते हैं। समान्यता प्रारम्भिक कथन एक वाक्य होता है किन्तु यदि प्रस्तावना लम्बी हो तो प्रारम्भिक कथन एक से अधिक भी हो सकते हैं। प्रारम्भिक कथन विषय–वस्तु के अनुरूप होने चाहिए।

2. **उपयुक्त निष्कर्ष कथन का प्रयोग (Using appropriate concluding statement)** –निष्कर्ष कथन का प्रयोग व्याख्या के अन्त में सारांश व्यक्त करने के लिए अथवा निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए किये जाते हैं। निष्कर्ष कथन एक से अधिक भी हो सकते हे। निष्कर्ष कथन द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष व्याख्या किए गये विचार, नियम या प्रत्यय का एकीकृत रूप आ जाता है जिसे संदर्भ के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

3. **व्याख्या सेतुओं का प्रयोग (Using Explaining Links)** –व्याख्या सेतुओं से अभिप्राय सेतु शब्दों से है। किसी विचार, नियम या प्रत्यय की व्याख्या स्पष्ट रूप से करने के लिए या विभिन्न कथनों में निरन्तरता एवं तारतम्यता बनाये रखने के लिए सेतु शब्दों का प्रयोग आवश्यक है। सेतु शब्द सामान्यतः संयोजक शब्द होते हैं जो कारणों, परिणामों, प्रयोजनों, साधनों, स्थान एवं समय क्रम आदि को स्पष्ट करते हैं, उदाहरण के लिए– इसलिए, क्योंकि, इसका, ताकि, अपितु, फिर भी, परिणामस्वरूप, तात्पर्य, इससे पहले, तत्पश्चात, इसी प्रयोजन से, अर्थात्, फलस्वरूप आदि।

4. **आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान देना (Covering Essential Points)** – किसी विचार, प्रत्यय, नियम, अवधारणा आदि की व्याख्या करने के लिए आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए ताकि उसे पूर्ण रूप से एवं सरलता से समझा जा सके।

5. **विद्यार्थियों का बोध परीक्षण (Testing Pupil's Understanding)** – इस घटक में उन प्रश्नों का समावेश होता है जो अध्यापक विद्यार्थियों के बोध परीक्षण के लिए पूछता है। व्याख्या के प्रभाव की जाँच करने के लिए अर्थात् यह पता लगाने के लिए कि विद्यार्थियों ने व्याख्या को कहां तक समझा है, अध्यापक विद्यार्थियों से कुछ प्रश्न पूछता है। यदि अधिकाशं विद्यार्थी सही उत्तर देते हैं तो यह स्पष्ट है कि व्याख्या सही ढ़ंग से की गई है।

B. अवांछनीय व्यवहार (Undersirable Behaviours)

अध्यापक के अवांछनीय व्यवहार निम्नलिखित हैं–

1. **निरर्थक कथनों का प्रयोग (Using Irrelevant statements)** –निरर्थक कथन से अभिप्राय ऐसे कथन से है जो व्याख्या से संबंधित नहीं होता और जिससे व्याख्या में कोई सहायता नहीं मिलती। ऐसे कथन अस्पष्टता व अव्यवस्था उत्पन्न करतें हैं जिससे विद्यार्थियों के बोध में अवरोध उत्पन्न होता है। इससे विद्यार्थी अपने लक्ष्य से दूर हो जाते हैं। अतः अध्यापक को निरर्थक कथनों के प्रयोग से बचना चाहिए।

2. **कथनों में निरन्तरता का अभाव (Lacking continuity in statements)** – इसमें किसी विचार, प्रत्यय आदि की व्याख्या करते समय प्रयोग किए गए कथनों में पारस्परिक सम्बद्धता व क्रम सम्बन्धी कमी पायी जाती है। व्याख्या में निरन्तरता का अभाव विद्यार्थियों की बोधगम्यता में बाधक सिद्ध होता है।

3. **प्रवाहिकता का अभाव (Lack of Fluency)** –व्याख्या में प्रवाहिकता से अभिप्राय बाधा रहित कथनों से है। किसी विचार, प्रत्यय आदि की व्याख्या में जितने भी कथन प्रयोग में लाये जाएं, उनमें स्वाभाविक गति व प्रवाह होना चाहिए। यदि कथनों में प्रवाहिकता का अभाव है तो अध्यापक के व्यवहार में निम्नलिखित बातें देखने को मिल सकती हैं–

   I. वह अधूरे व अपूर्ण वाक्य बोलता है।

   II. वह स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाता।

   III. वह अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग करता है।

   IV. वह बोलते –बोलते बीच में अटक जाता है।

   V. वह कथन को बीच में ठीक करने का प्रयोग करता है।

4. अनुपयुक्त शब्दावाली, अस्पष्ट शब्दों व मुहावरों का प्रयोग (Using Inappropriate Vocabulary, Vague Word's and Pharases) –

   इस प्रकार के अवांछनीय व्यवहार में निम्नलिखित बातें देखने को मिलती हैं–

   I. विद्यार्थियों की आयु एवं परिपक्वता स्तर से अधिक कठिन शब्दावली या अनुपयुक्त शब्दावली का प्रयोग।

   II. अस्पष्ट शब्दावली का प्रयोग जिससे व्याख्या एवं विद्यार्थियों के बोध में अवरोध उत्पन्न होता है।

   जैसे –मसलन, समझे था के नहीं, कुछ–कुछ, आप देखते है, आप जानते हैं, हो सकता हैं आदि।

   III. अनुपयुक्त मुहावरों का प्रयोग।

6.4 व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनूसूची (Observation Schedule for the skill of Explaining)

कक्षा –	सं० अ० अनुक्रमांक–
विषय –	सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण–
उपविषय–	दिनांक–
	निरीक्षक–

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि छात्र–अध्यापक ने व्याख्या कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रयोग के प्रति निर्णय करने के लिए 'टैलीयां' (Tallies) लगाई जाती हैं। छात्र –अध्यापक के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके निरीक्षक निम्नलिखित घटक व्यवहारों की आवत्ति का अंकन टैलियां लगाकर प्रत्येक मिनट के अंतराल से करता है।

घटक	आवत्ति									
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
A. वांछनीय व्यवहार										
1. उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का प्रयोग किया गया।										
2. उपयुक्त निष्कर्ष कथन का प्रयोग किया।										
3. व्याख्या सेतुओं का प्रयोग किया।										
4. आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान दिया।										
5. विद्यार्थियों का बोध परीक्षण किया गया।										
B. अवांछनीय व्यवहार										
1.. निरर्थक कथनों का प्रयोग किया।										
2. कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता का अभाव था।										
3. कथनों में प्रवाहिकता का अभाव था।										
4. अनुपयुक्त शब्दावली, अस्पष्ट शब्दों व मुहावरों का प्रयोग किया।										

6.5 व्याख्या कौशल से सम्बन्धित मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल)

Evaluation Schedule (Rating Scale) for the Skill of Explaining

कक्षा –
विषय – भौतिक विज्ञान शिक्षण
उपविषय–

अनुक्रमांक–
सत्र–शिक्षण/ पुनः शिक्षण
दिनांक–
निरीक्षक

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल) का प्रयोग यह जानने के लिये किया जाता है कि संभावित–अध्यापक ने व्याख्या कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढंग से किया है। प्रस्तुत रेटिंग स्केल पर 0 से 6 तक अंक अंकित है। अंक 0 अत्यन्त निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता तथा अंक '6' उत्कृष्ट प्रदर्शन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गयी टैलीयों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर सं० अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

	घटक (Components)	रेटिंग (Rating)						
		अत्यन्त निकृष्ट	निकृष्ट	निम्न	औसत	उत्तम	अत्युत्तम	उत्कृष्ट
1.	उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का प्रयोग किया।	0	1	2	3	4	5	6
2.	उपयुक्त निष्कर्ष कथन का प्रयोग किया।	0	1	2	3	4	5	6
3.	व्याख्या सेतुओं का प्रयोग किया।	0	1	2	3	4	5	6
4.	आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान दिया।	0	1	2	3	4	5	6
5.	विद्यार्थियों का बोध परीक्षण किया गया।	0	1	2	3	4	5	6
6.	सार्थक कथनों का प्रयोग किया गया।	0	1	2	3	4	5	6
7.	कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता थी।	0	1	2	3	4	5	6
8.	कथनों में प्रवाहिकता थी।	0	1	2	3	4	5	6
9.	उपयुक्त शब्दावली व मुहावरों का प्रयोग किया।	0	1	2	3	4	5	6

6.6 व्याख्या कौशल के अभ्यास के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना Model Micro Lesson Plan for Practising Skill of Explaining

विषय	–	भौतिक विज्ञान	कक्षा	–	छटी
उपविषय	–	गति के प्रकार	समय	–	6 मिनट

अध्यापक कथन – हम अपने चारों ओर के वातावरण में ऐसी बहुत सी वस्तुएं देख सकते हैं जो गतिशील होती हैं। जैसे– पक्षियों का उड़ना, घड़ी की सुइयों का चलना, बच्चों का दौड़ना, पंखे का घूमना, वाहनों का चलना इत्यादि। इनमें से कुछ की गति तेज होती हैं और कुछ की धीमी। गति के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **स्थानान्तरण गति (Translational Motion)** – जब कोई वस्तु अपना स्थान बदलती है तो उस गति को स्थानान्तरण गति कहते हैं जैसे – बहती नदी के जल की गति, चलते हुए मनुष्य की गति, उड़ते हुए पक्षी की गति आदि।
2. **घूर्णन गति (Rotational Motion)** – जब कोई वस्तु गति करते हुए अपना स्थान नहीं बदलती तो उस गति को घूर्णन गति कहते हैं जैसे – चलते हुए बिजली के पंखे की गति, चरखे के चक्र की गति, आटा पीसने वाली चक्की के पत्थर की गति आदि।
3. **कंपन गति (Vibrational Motion)** – जब किसी वस्तु द्वारा गति करते समय कंपन उत्पन्न होता है तो उस गति को कंपन गति कहते हैं जैसे – सितार बजाते समय सितार के तार की गति आदि।

इस प्रकार गति के मुख्यतः तीन प्रकार हैं – स्थानान्तरण गति, घूर्णन गति एवं कंपन गति।

अध्यापक क्रियाएं		विद्यार्थी क्रियाएं
प्र.	स्थानान्तरण गति से क्या अभिप्राय है?	उत्तर– जब कोई वस्तु अपना स्थान बदलती है तो उस गति को स्थानान्तरण गति कहते हैं। जैसे– उड़ते हुए पक्षी की गति।
प्र.	घूर्णन गति की परिभाषा दो।	उत्तर– घूर्णन गति से अभिप्राय ऐसी गति से है जिसमें वस्तु गति करते हुए स्थान नहीं बदलती एवं गोलाई में घूमती है।
प्र.	कंपन गति से क्या अभिप्राय है?	उत्तर– जब किसी वस्तु द्वारा गति करते समय कंपन उत्पन्न होता है तो उसकी गति को कंपन गति कहते हैं।

6.7 व्याख्या को प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव (Practical Suggestions for making Explaination Effective)

1. व्याख्या करने से पूर्व अध्यापक को उद्देश्य स्पष्ट रूप से निर्धारित कर लेने चाहिए।
2. व्याख्या में सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
3. व्याख्या में प्रयुक्त विचार क्रमबद्ध होने चाहिए।
4. व्याख्या विद्यार्थियों की आयु, मानसिक स्तर एवं योग्यताओं के अनुकूल होनी चाहिए।
5. व्याख्या में प्रदर्शनात्मक साधनों जैसे चित्र, चार्ट, मॉडल, मानचित्र, आरेखों, प्रोजेक्टर आदि का उचित प्रयोग करना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की विषय–वस्तु में रूचि उत्पन्न होती है।
6. व्याख्या में पाठ से असम्बन्धित बातों को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
7. व्याख्या उचित समय पर होनी चाहिए।
8. व्याख्या को सजीव बनाने के लिए अध्यापक को विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने चाहिए और विद्यार्थियों को भी प्रश्न पूछने का अवसर देना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों के नाम बताओ।

(ii) व्याख्या कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना की रचना करो।

6.8 सारांश

व्याख्या कौशल से अभिप्राय अध्यापक की उस योग्यता से है जिससे वह विषय वस्तु को सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करता है। व्याख्या कौशल विद्यालय के सभी विषयों में समान रूप से उपयोगी है। व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों को दो मुख्य श्रेणियों में रखा जा सकता है–वांछनीय व्यवहार एवं अवांछनीय व्यवहार। वांछित व्यवहार से अभिप्राय अध्यापक के उस व्यवहार से है जो विषय वस्तु की व्याख्या के लिए आवश्यक है और अवांछित व्यवहार ऐसे व्यवहार हैं जिनका व्याख्या में कोई योगदान नहीं होता। अध्यापक को वांछित व्यवहारों की आवत्ति में वद्धि एवं अवांछित व्यवहारों में कमी लानी चाहिए। अध्यापक के वांछित व्यवहारों में उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का प्रयोग, व्याख्या सेतुओं का प्रयोग, आवश्यक बिन्दुओं का समावेश, विद्यार्थियों का बोध परीक्षण तथा उपयुक्त निष्कर्ष कथन का प्रयोग सम्मिलित हैं। अध्यापक के अवांछनीय व्यवहार हैं–निरर्थक कथनों का प्रयोग, कथनों में निरन्तरता तथा प्रवाहिकता का अभाव, तारतम्यता का अभाव, अनुपयुक्त शब्दावली व अस्पष्ट शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग।

व्याख्या सरल भाषा में, विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप, पाठ के उद्देश्यों व प्रत्यय की जटिलता के अनुरूप लम्बी या छोटी होनी चाहिए।

मॉडल उत्तर

(i)

वांछनीय व्यवहार	**अवांछनीय व्यवहार**
– उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का प्रयोग	– निरर्थक कथनों का प्रयोग
– व्याख्या सेतुओं का प्रयोग	– कथनों में निरन्तरता का अभाव
– आवश्यक बिन्दुओं का समावेश	– कथनों में तारतम्यता का अभाव
– विद्यार्थियों का बोध परीक्षण	– कथनों में प्रवाहिकता का अभाव
– उपयुक्त निष्कर्ष कथन का प्रयोग	– अनुपयुक्त शब्दावली का प्रयोग

(ii) कपया 6.6 में देखें

6.9 मुख्य शब्द

व्याख्या कौशल–वह योग्यता जिसकी सहायता से अध्यापक जटिल विषय वस्तु को सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करता है।

वांछनीय व्यवहार–ऐसे व्यवहार जो व्याख्या के लिए आवश्यक हों।

अवांछनीय व्यवहार–ऐसे व्यवहार जो विषय वस्तु को जटिल बनाएं और व्याख्या में कोई योगदान न दें।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

Passi, B.K	Becoming Better Teacher 'Micro Teaching Approach', Sahitaya Mudranalya, Ahmedabad 1976.
Jangira, N.K. and Singh, Ajit	'Core Teaching Skills: The Microteaching Approach', NCERT, New Delhi, 1983.
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi, 1977.
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989
वालिया, जे०एस०	'शैक्षिक तकनीकी', पाल पब्लिशर्ज, अमतसर।

इकाई-IV(b)

अध्याय-7: श्यामपट्ट उपयोग कौशल (Skill of Using Black Board)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- श्यामपट्ट उपयोग कौशल का अर्थ एवं महत्व बता सकें।
- श्यामपट्ट उपयोग कौशल के घटकों का वर्णन कर सकें।
- श्यामपट्ट उपयोग कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची एवं मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

संरचनाः

7.1 प्रस्तावना
7.2 श्यामपट्ट उपयोग कौशल
7.3 श्यामपट्ट उपयोग कौशल के घटक
7.4 श्यामपट्ट उपयोग कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
7.5 श्यामपट्ट उपयोग कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
7.6 सारांश
मॉडल उत्तर
7.7 मुख्य शब्द
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.1 प्रस्तावना

कक्षा शिक्षण में दश्य साधन के रूप में श्यामपट्ट ही सर्वाधिक प्रयोग में आता है। सी. एल. भल्ला (C.L. Bhalla) ने अपनी पुस्तक 'Audio-Visual Aids in Education' में इसके महत्व का इस प्रकार वर्णन किया है, "श्यामपट्ट शिक्षण संस्था में उतना ही आवश्यक है जितने डेस्क, रजिस्टर, कुर्सियाँ तथा अन्य वस्तुएँ। यह शिक्षा का सबसे सस्ता एवं महत्पवूर्ण साधन है। यह शिक्षण का अभिन्न अंग है।"

श्यामपट्ट पर हर प्रकार के ग्राफ, मानचित्र और आरेख आदि बनाये जा सकते हैं तथा सुलेख के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। कठिन शब्द, परिभाषा लिखने एवं समस्या समाधान के लिए भी श्यामपट्ट का प्रयोग किया जा सकता है। श्यामपट्ट का उचित एवं विधिपूर्वक उपयोग पाठ को प्रभावशाली बनाने में बहुत सहायक होता है। अध्यापक श्यामपट्ट का प्रभावपूर्ण उपयोग करने के लिए जिस कौशल का प्रयोग करता है उसे श्यामपट्ट उपयोग कौशल कहा जाता है।

7.2 श्यामपट्ट उपयोग कौशल

श्यामपट्ट उपयोग कौशल से अभिप्राय है 'श्यामपट्ट लेखन–कला से पूर्ण परिचय'। इस कौशल की सहायता से अध्यापक अपने विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षण एवं अभिप्रेरणा (Motivate) कर सकता है। कठिन अंशों की व्याख्या करने, पुनरावत्ति करने एवं अधिगम को सरल बनाने के लिए भी अध्यापक इस कौशल का उपयोग करता है। एक अच्छे अध्यापक के

लिए श्यामपट्ट उपयोग कौशल में पारंगत होना आवश्यक है। श्यामपट्ट उपयोग कौशल द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कर सकता है। वह चित्र, ग्राफ, मानचित्र और आरेख आदि बना कर विषय–वस्तु को सरलतापूर्वक समझने में विद्यार्थियों की सहायता कर सकता है। अध्यापक इस कौशल का प्रयोग प्रदर्शन प्रयोगों (Demonstration Experiments) के साथ कर सकता है। यह कौशल अध्यापक को क्रियाशीलता का अवसर देता है। अध्यापक के सुन्दर लेख की नकल करके विद्यार्थी भी अपने लेख को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। श्यामपट्ट विद्यार्थियों की संवेदनाओं को प्रभावित करता है। यह विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करता है, उन की स्मति को स्थिरता प्रदान करता है और प्रत्यास्मरण में सहायता करता है। यह विद्यार्थियों को नोट्स लिखने में सहायता प्रदान करता हैं श्यामपट्ट का कुशलतापूर्वक प्रयोग पाठ में विविधता का समावेश करता है। यह विविध प्रकार की सामग्री के प्रदर्शन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है जैसे सारांश, नियम, निर्देश, परिभाषाएं, महत्वपूर्ण शब्द, आरेख, रेखाचित्र, दैनिक दत्तकार्य (Assignments) अथवा प्रश्नों आदि का प्रदर्शन।

इस प्रकार श्यामपट्ट अध्यापक का अत्यन्त महत्वपूर्ण मित्र सिद्ध हो सकता है।

7.3 श्यामपट्ट उपयोग कौशल के घटक (Components of skill of using Blackboard)

1. **लेख की स्पष्टता (Legibility of Handwriting)**

श्यामपट्ट पर लिखी गयी सामग्री स्पष्ट होनी चाहिए। श्यामपट्ट लेख की स्पष्टता से अभिप्राय ऐसे लेख से है जो सरलता से पढा जा सके। वह लेख सरलता से पढ़ा जा सकता है जिसमें निम्नलिखित विशेषताएं हों–

I. स्पष्ट अक्षर (Distinct Words) - श्यामपट्ट पर लिखा गया प्रत्येक अक्षर स्पष्ट होना चाहिए। अक्षरों में स्पष्ट भिन्नता होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी उन्हें सरलता से पढ़ सके।

II. दूरी (Spacing) - अक्षर एक दूसरे से समान दूरी पर होने चाहिए। दो अक्षरों तथा दो शब्दों के बीच पर्याप्त दूरी होनी चाहिए जिससे श्यामपट्ट लेख स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सके।

III. अक्षरों का आकार (Size of letters) - अक्षरों का आकार कक्षा के स्तर के अनुसार होना चाहिए। प्राइमरी कक्षाओं में अक्षरों का आकार सैकेन्डरी एवं सीनियर सैकेन्डरी कक्षाओं से बड़ा होना चाहिए। अक्षरों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि कक्षा के अन्तिम छोर पर बैठे विद्यार्थी भी उन्हें स्पष्ट रूप से पढ़ सकें। बड़े अक्षरों का आकार छोटे अक्षरों से कुछ बड़ा होना चाहिए परन्तु इतना बड़ा नहीं होना चाहिए कि श्यामपट्ट लेख पढ़ने में बाधा उत्पन्न हो।

IV. बड़े और छोटे अक्षरों के आकार में समानता (Uniformity in size of the capital and small letters) सभी बड़े अक्षर एक जैसे बड़े होने चाहिएं और सभी छोटे अक्षर एक जैसे छोटे होने चाहिए।

V. अक्षरों का झुकाव (Slantness of letters) प्रत्येक अक्षर का झुकाव ऊपर की ओर और एक जैसा होना चाहिए।

VI. अक्षरों की मोटाई – (Thickness of letters) सभी अक्षरों की मोटाई समान होनी चाहिए जिससे रेखाओं की चौड़ाई एक समान रहे।

2. **श्यामपट्ट कार्य में स्वच्छता (Neatness in Blackboard Work)**

श्यामपट्ट कार्य में स्वच्छता होनी चाहिए। यदि श्यामपट्ट कार्य स्वच्छ होगा तो विद्यार्थी इसे आसानी से पढ़ एवं समझ सकेंगें इसके विपरीत यदि श्यामपट्ट लेख स्वच्छ नहीं होगा तो विद्यार्थी इसे पढ़ने में कठिनाई अनुभव करेंगें और अपनी कॉपी में लिखते समय अशुद्धियां करेंगें। स्वच्छ श्यामपट्ट कार्य विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षण करने

एवं उनकी रुचि बनाए रखने में भी सहायक होता है। श्यामपट्ट पर लिखे गए शब्द–समूह एवं वाक्य सीधी लाइन (कतार) में और श्यामपट्ट के आधार के समान्तर होने चाहिएं। इन लाइनों के बीच की दूरी में एकरूपता होनी चाहिए। मुख्य बिन्दु एवं अन्य विवरण स्पष्ट रूप में लिखे जाने चाहिएं जिससे विद्यार्थियों का ध्यान उचित सन्दर्भ में आकर्षित किया जा सके। श्यामपट्ट आलेख पाठ की सम्पूर्ण पाठ्य–वस्तु का सारांश होता है इसलिए श्यामपट्ट पर केवल आवश्यक एवं सम्बन्धित विषय–वस्तु को लिखना चाहिए। व्यवहारिक परिस्थितियों में प्रायः देखा जाता है कि कुछ अध्यापक कक्षा–शिक्षण के दौरान श्यामपट्ट का बिल्कुल उपयोग नहीं करते जबकि कुछ अध्यापक सम्पूर्ण पाठ्य–वस्तु श्यामपट्ट पर लिखने का प्रयत्न करते हैं। श्यामपट्ट पर शब्दों का अत्यालेख (Overwriting) नहीं होना चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अध्यापक श्यामपट्ट का उचित उपयोग न करे। इस प्रकार इस श्रेणी में निम्नलिखित चार बातों का होना आवश्यक है–

I. वाक्य व कतारें श्यामपट्ट आधार के समान्तर हों।

II. दो लाइनों (कतारों) के बीच समान व उपयुक्त अन्तराल हो।

III. शब्दों व वाक्यों का अत्यालेखन न हो।

IV. आवश्यक एवं सम्बन्धित विषय–वस्तु का आलेख किया जाए।

3. श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता (Appropriateness of Black Board Work

श्यामपट्ट कार्य में शब्दों या वाक्यों का आलेख होता है और चित्र एवं रेखाचित्र बनाकर उनकी व्याख्या की जाती है। अध्यापक को श्यामपट्ट लेखन के समय श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता की ओर ध्यान देना चाहिए और उसे रुचिकर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। श्यामपट्ट पर पाठ से सम्बन्धित जो कुछ भी लिखा जाना है, इसका अध्यापक को पूर्व नियोजन कर लेना चाहिए। श्यामपट्ट कार्य में पाठ के महत्पूर्ण बिन्दुओं को क्रमानुकूल–एक दूसरे के पश्चात–जैसे उनका परिचय कराया जाए, लिखना चाहिए। इन बिंदुओं में निरन्तरता तथा तारतम्यता होना चाहिए। मुख्य बिन्दुओं एवं शब्दों को रेखांकित करना चाहिए। श्यामपट्ट कार्य स्पष्ट, संक्षिप्त एवं विषय–वस्तु से संबंधित होना चाहिए। श्यामपट्ट पर निरर्थक एवं अस्पष्ट शब्दों, वाक्यों या चित्र आदि का उल्लेख नहीं होना चाहिए। श्यामपट्ट कार्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अध्यापक को रंगीन चॉक का प्रयोग करना चाहिए। पाठ्य–वस्तु की व्याख्या के लिए चित्र एवं रेखाचित्र बनाने चाहिएं। चित्र व रेखाचित्र स्पष्ट, उचित आकार के एवं तकनीकी दष्टि से सही होने चाहिएं ताकि उनके द्वारा प्रस्तुत विचार स्पष्ट रूप से समझ आ सके। चित्र/रेखाचित्र/ आरेख में अनावश्यक बातों से बचना चाहिए।

4. श्यामपट्ट कार्य की विधिवता (Accuracy of Black Board Work)

अध्यापक को श्यामपट्ट का विधिवत् प्रयोग करना चाहिए। श्यामपट्ट पर बायीं से दायीं ओर लिखना चाहिए। उसे श्यामपट्ट और विद्यार्थियों के बीच व्यवधान नहीं बनना चाहिए। अध्यापक को श्यामपट्ट से 45^0 या 60^0 के कोण पर खड़ा होना चाहिए और श्यामपट्ट कार्य का उपयोग करने के लिए संकेतक का प्रयोग करना चाहिए। अध्यापक का पाठ की आवश्यकतानुसार सफेद या रंगीन चॉक कक्षा में स्वयं ले कर जाना चाहिए। चॉक पर पर्याप्त दबाव डालकर लिखना चाहिए जिससे लेख स्पष्ट अंकित हो। चॉक से श्यामपट्ट पर लिखते समय आवाज़ नहीं होनी चाहिए। श्यामपट्ट पर लिखते समय अध्यापक को साथ–साथ बोलते भी रहना चाहिए। पाठ की समाप्ति पर श्यामपट्ट को साफ कर देना चाहिए। श्यामपट्ट को साफ करते समय डस्टर का उपयोग करना चाहिए। डस्टर का प्रयोग ऊपर से नीचे की ओर करना चाहिए, जिससे वातावरण चॉक की धूल से न भरे। श्यामपट्ट को उंगलियों से साफ नहीं करना चाहिए।

7.4 श्यामपट्ट उपयोग कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची-1 (Observation Schedule for Skill of Using Black Board)

कक्षा – अनुक्रमांक –

विषय – सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण –

उपविषय– दिनांक –

निरीक्षक –

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निश्चित करने के लिए किया जाता है कि संभावित–अध्यापक ने श्यामपट्ट उपयोग कौशल का प्रयोग कितने प्रभावशाली ढ़ंग से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रयोग के प्रति निर्णय करने के लिए अथवा का चिन्ह अंकित किया जाता है। इसे 'टैली' (Tally) लगाना कहा जाता है। छात्र–अध्यापक के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके निरीक्षक निम्नलिखित घटक व्यवहारों की आवत्ति का अंकन टैलियां लगाकर प्रत्येक मिनट के अंतराल में करता है।

घटक (CompnentS)	आवत्ति टैलियां									
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

लेख की स्पष्टता

I. अक्षर स्पष्ट थे।

II. अक्षरों में उपयुक्त अन्तराल था।

III. शब्दों में उपयुक्त अन्तराल था।

IV. अक्षर कक्षा के अन्तिम छोर से पढ़ें जा सकते थे।

V. अक्षरों की मोटाई

श्यामपट्ट कार्य में स्वच्छता

VI. वाक्य व कतारें सीधी लाइन में थे। (श्यामपट्ट आधार के समान्तर)

VII. दो लाइनों के बीच उपयुक्त अन्तराल था।

IX. शब्द अत्यालिखित थे।

X. श्यामपट्ट पर आवश्यक एवं सम्बद्ध विषय–वस्तु का आलेख

श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता

XI. श्यामपट्ट कार्य में निरन्तरता का अभाव था।

XII. श्यामपट्ट कार्य संक्षिप्त और स्पष्ट था।

XIII. रंगीन चॉक का प्रयोग किया गया।

XIV. मुख्य शब्दों व बिन्दुओं का रेखांकन

Contd...

XV. चित्र/ रेखाचित्र पाठ–के विकास के साथ बनाए

XVI. चित्र/रेखाचित्र उपयुक्त थे।

श्यामपट्ट कार्य की विधिवत्ता

XVII. श्यामपट्ट पर बायीं से दायीं ओर लिखा गया।

XVIII. अध्यापक श्यामपट्ट और विद्यार्थियों की बीच व्यवधान बना

XIX. चॉक से लिखते समय चॉक घिसने की आवाज़ हुई।

XX. चॉक पर उचित दबाव डाल कर लिखा गया।

XXI. श्यामपट्ट लेख में वर्तनी की अशुद्धियां (Spelling mistakes) थी।

XXII. श्यामपट्ट साफ करते समय घूल उड़ती थी।

XXIV. श्यामपट्ट लेखन के साथ–साथ बोला गया।

7.4 श्यामपट्ट उपयोग कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल) (Evaluation Schedule (Rating scale) for the skill of using Black Board

कक्षा – सं० अ० अनुक्रमांक–

विषय – सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण –

उपविषय– दिनांक–

निरीक्षक

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची एवं रेटिंग स्केल का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि सं०–अध्यापक ने श्यामपट्ट उपयोग कौशल का प्रयोग कितने प्रभावशाली ढ़ंग से किया है। रेटिंग पर 0 से 6 तक अंक अंकित हैं। (7-point Rating Scale) अंक 0 निम्नतम सफलता का एंव अंक '6' अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षक द्वारा लगाई गई टैलियों अर्थात् विभिन्न्न घटकों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर छात्राध्यापक को प्रतिपुष्टि की जाती है–

	घटक (Components)	रेटिंग						
		अत्यंत निकृष्ट	निकृष्ट	निम्न	औसत	उत्तम	अत्युत्तम	उत्कृष्ट
लेखन की स्पष्टता								
I.	स्पष्ट अक्षर	0	1	2	3	4	5	6
II.	अक्षरों में उपयुक्त अन्तराल	0	1	2	3	4	5	6
III.	शब्दों में उपयुक्त अन्तराल	0	1	2	3	4	5	6

IV.	अक्षर कक्षा के अन्तिम छोर से स्पष्ट दिखाई दिये।	0	1	2	3	4	5	6
V.	बड़े व छोटे अक्षरों की बनावट में समानता	0	1	2	3	4	5	6
VI.	अक्षरों की समान मोटाई	0	1	2	3	4	5	6

श्यामपट्ट कार्य की स्वच्छता

VII.	श्यामपट्ट के आधार के समान्तर लिखे गए वाक्य व कतारें	0	1	2	3	4	5	6
VIII.	दो लाईनों के बीच समान व उपयुक्त अंतराल	0	1	2	3	4	5	6
IX.	शब्दों का अत्यालेखन नहीं था	0	1	2	3	4	5	6
X.	श्यामपट्ट पर केवल आवश्यक एवं सम्बद्ध विषय–वस्तु का आलेख	0	1	2	3	4	5	6

श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता

XI.	श्यामपट्ट कार्य में निरन्तरता	0	1	2	3	4	5	6
XII.	श्यामपट्ट कार्य में संक्षिप्तता एवं स्पष्टता	0	1	2	3	4	5	6
XIII.	रंगीन चॉक का उपयुक्त प्रयोग	0	1	2	3	4	5	6
XIV.	मुख्य शब्दों या बिन्दुओं का रेखांकन	0	1	2	3	4	5	6
XV.	चित्र/रेखाचित्र पाठ के विकास के साथ–साथ बनाए गए।	0	1	2	3	4	5	6
XVI.	चित्र/रेखाचित्रों की उपयुक्तता	0	1	2	3	4	5	6

श्यामपट्ट लेखन कार्य की विधिवत्ता

XVII.	श्यामपट्ट लेखन बायीं से दायीं ओर	0	1	2	3	4	5	6
XVIII.	श्यामपट्ट लेखन के समय अध्यापक की स्थिति	0	1	2	3	4	5	6
XX.	पांइटर का उपयुक्त उपयोग	0	1	2	3	4	5	6
XXI.	श्यामपट्ट लेख में वर्तनी की अशुद्धियां नहीं	0	1	2	3	4	5	6
XXII.	श्यामपट्ट साफ करने का ढ़ंग	0	1	2	3	4	5	6
XXIII.	श्यामपट्ट लेखन के साथ–साथ बोला गया	0	1	2	3	4	5	6

अपनी प्रगति जांचिए

(i) श्यामपट्ट कौशल के मुख्य घटक कौन–कौन से हैं?

(ii) श्यामपट्ट उपयोग कौशल का शिक्षण प्रक्रिया में क्या महत्व है?

7.6 सारांश

श्यामपट्ट शिक्षण का अभिन्न अंग है। श्यामपट्ट उपयोग कौशल से अभिप्राय है श्यामपट्ट का प्रभावपूर्ण उपयोग करने की योग्यता। इस कौशल की सहायता से अध्यापक पाठ के कठिन अंशों की व्याख्या, पुनरावत्ति आदि कर सकता है। श्यामपट्ट का प्रयोग, सारांश, नियम, निर्देश, परिभाषाएं, आरेख, रेखाचित्र, दत्त कार्य, प्रश्नों आदि के प्रदर्शन के लिए भी किया जा सकता है। श्यामपट्ट उपयोग कौशल के मुख्य घटक हैं–लेख की स्पष्टता, श्यामपट्ट कार्य में स्वच्छता, श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता, श्यामपट्ट कार्य की विधिवित्ता आदि। लेख की स्पष्टता में विभिन्न बिन्दु सम्मिलित हैं–स्पष्ट अक्षर, अक्षरों में उपयुक्त अंतराल, शब्दों में उपयुक्त अंतराल, अक्षरों की मोटाई, बड़े व छोटे अक्षरों की बनावट में अंतर आदि। श्यामपट्ट पर वाक्य व कतारें सीधी रेखा में लिखनी चाहिए और दो रेखाओं के बीच उपयुक्त अंतराल होना चाहिए।

श्यामपट्ट पर केवल आवश्यक एवं सम्बद्ध विषय–वस्तु का आलेख किया जाना चाहिए। श्यामपट्ट कार्य संक्षिप्त स्पष्ट होना चाहिए, रंगीन चाक का प्रयोग एवं मुख्य शब्दों व बिन्दुओं को रेखांकित करना चाहिए। अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखते समय बार–बार बोलना चाहिए और श्यामपट्ट से 45° या 60° के कोण पर खड़े होना चाहिए।

मॉडल उत्तर

(i) श्यामपट्ट कौशल के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–लेख की स्पष्टता, श्यामपट्ट कार्य में स्वच्छता, श्यामपट्ट कार्य की उपयुक्तता, श्यामपट्ट कार्य की विविधता।

(ii) श्यामपट्ट उपयोग कौशल की सहायता से अध्यापक पाठ के कठिन अंशों की व्याख्या, सारांश, नियम, निर्देश, परिभाषाएं, आरेख, रेखाचित्र, दत्त कार्य, प्रश्नों आदि का प्रदर्शन एवं पुनरावत्ति कर सकता है।

7.7 मुख्य शब्द

श्यामपट्ट उपयोग कौशल–श्यामपट्ट का प्रभावपूर्ण उपयोग करने की योग्यता

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Passi, B.K.	Becoming Better Teacher 'Micro Teaching Approach', Sahitaya Mudranalya, Ahmedabad 1976.
Jangira, N.K. and Singh, Ajit	'Core Teaching Skills: The Microteaching Approach', NCERT, New Delhi, 1983.
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi, 1977.
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989
वालिया, जे०एस०	'शैक्षिक तकनीकी', पाल पब्लिशर्ज, अमतसर।

इकाई-IV(b)

अध्याय-8: उद्दीपक परिवर्तन कौशल (Skill of Stimulus Variation)

उद्देश्य:

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।
- उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची एवं मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- उद्दीपक परिवर्तन कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना की रचना कर सकें।

संरचना:

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक
8.3 उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
8.4 उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
8.5 उद्दीपक परिवर्तन कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना
8.6 सारांश
मॉडल उत्तर
8.6 मुख्य शब्द
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.1 प्रस्तावना

विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित करने तथा पाठ में केन्द्रित करने के लिए अध्यापक अपने व्यवहारों में स्वेच्छा से जो परिवर्तन करता है उसे उद्दीपक परिवर्तन कौशल कहा जाता है। कक्षा में पढ़ाते समय अध्यापक का मुख्य उद्देश्य पाठ को प्रभावशाली बनाना होता है। इस कार्य के लिए वह विभिन्न प्रकार के उद्दीपक जैसे–श्यामपट्ट का उपयोग, चित्र दिखाना, चार्ट या मॉडल दिखाना, प्रश्न पूछना आदि का प्रयोग करता है। अध्यापक स्वयं भी उद्दीपक के रूप में कार्य करता है जैसे–शरीर संचालन, हाव–भाव, आवाज़ में उतार–चढ़ाव, विराम आदि का प्रयोग। इन उद्दीपकों क सहायता से वह विद्यार्थियों का ध्यान विषय सामग्री की ओर आकर्षित व केन्द्रित करता है तथा वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करता है।

किसी एक उद्दीपक का लम्बे समय तक प्रयोग करने से वह प्रभावशाली सिद्ध नहीं होता। विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने एवं उनकी रुचि बनाए रखने के लिए उद्दीपकों के प्रयोग में परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। इस प्रकार उद्दीपक परिवर्तन कौशल से तात्पर्य उस कौशल से है जिसके द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों के ध्यान को कक्षा की गतिविधियों की ओर आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उद्दीपक प्रयोग में लाता है और उद्दीपकों में परिवर्तन करके विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने में सफल होता है।

8.2 उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक (Components of the Skill of Stimulus Variation)

उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक इस प्रकार हैं–

1. **शरीर संचालन (Body Movements)** –कक्षा में अध्यापक की शारीरिक क्रियाएं बहुत महत्व रखती हैं। विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित एवं केन्द्रित करने के लिए अध्यापक को कक्षा में एक ही स्थान पर खड़े होकर नहीं पढ़ाना चाहिए। अध्यापक को कक्षा में सक्रिय रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार शरीर संचालन करना चाहिए। उसे श्यामपट्ट का प्रयोग करना चाहिए, विद्यार्थियों की क्रियाओं का निरीक्षण करना चाहिए और उनकी समस्याओं के समाधान के लिए उनके पास जाना चाहिए। अध्यापक का कक्षा में सार्थक रूप से चलना–फिरना विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करता है। परन्तु आवश्यकता से अधिक शारीरिक क्रियांए भी अवांछनीय होती है। अध्यापक का शरीर संचालन निरर्थक नहीं होना चाहिए। कक्षा में अध्यापक का आवश्यकता से अधिक घूमना फिरना विद्यार्थियों का ध्यान विकर्षित करता है।

2. **हाव-भाव –(Gestures)** हाव–भाव के अन्तर्गत शरीर के अंगों का संचलन आता है अध्यापक को पाठ पढ़ाते समय विषय–वस्तु के अनुसार हाव–भाव करने चाहिएं। हाव–भाव मौखिक वर्णन को प्रभावशाली बनाते हैं। अध्यापक अपने हाथों, आंखों, शरीर के अन्य अंगों तथा चेहरे पर भाव अभिव्यक्ति द्वारा विद्यार्थियों का ध्यान विषय–वस्तु की ओर आकर्षित कर सकता है– मुख मुद्रा (हंसना, क्रोध करना), सिर हिलाना, आंखों के संकेत, हाथ के संकेत आदि द्वारा अध्यापक किसी बात के महत्व पर बल देता है; भावनाओं को व्यक्त करता है, आकार, आकृति, गतियों आदि को स्पष्ट करता है।

3. **आवाज में परिवर्तन करना (Change in Voice)** –अध्यापक को पाठ पढ़ाते समय अपनी आवाज़ में परिवर्तन करने चाहिए। एक ही स्वर व गति से पढ़ाने पर विद्यार्थी ऊब जाते हैं और उनका ध्यान पाठ से हट जाता है। स्वर में उतार–चढ़ाव के परिवर्तन पाठ को प्रभावशाली बनाते हैं और विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करते हैं। आवाज़ की गति में परिवर्तन करके भी अध्यापक विषय–वस्तु के विशिष्ट भाग पर बल दे सकता है और मौखिक अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बना सकता है।

4. **केन्द्रण (Focussing)–** इस केन्द्रण का सम्बन्ध अध्यापक के उस व्यवहार से है जब वह विद्यार्थियों का ध्यान पाठ के किसी विशेष बिन्दु पर केन्द्रित करना चाहता है। केन्द्रण शाब्दिक, मुद्रात्मक एवं शाब्दिक–मुद्रात्मक हो सकता है।

   शाब्दिक केन्द्रण (Focussing) – केन्द्रण का सम्बन्ध अध्यापक के उस व्यवहार से है जब वह विद्यार्थियों का ध्यान पाठ के किसी विशेष बिन्दु पर केन्द्रित करना चाहता है, जैसे–इधर देखो, मेरी ओर देखो, कोई बाहर नहीं देखेगा आदि। मुद्रात्मक केन्द्रीकरण (Gesture Focussing) में केवल भाव–मुद्राओं की सहायता से विद्यार्थियों का ध्यान किसी विशिष्ट बिन्दु या दिशा या वस्तु की ओर आकर्षित किया जाता है, ,जैसे–श्यामपट्ट पर किये कार्य की ओर हाथ से इंगित करना। शाब्दिक–मुद्रात्मक केन्द्रण (Oral-Gesture Focussing) में अध्यापक शाब्दिक और मुद्रात्मक दोनों ही प्रकार के व्यवहार से विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करता है, जैसे–चार्ट या मॉडल पर उंगली रख कर अध्यापक साथ में बोलता भी रहता है। इस प्रकार का केन्द्रण शाब्दिक एवं मुद्रात्मक केन्द्रण की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है।

5. **अंतः क्रिया शैली में परिवर्तन (Change in Interaction Styles)** – कक्षा–कक्ष में अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच होने वाले विचारों के आदान–प्रदान को अंतःक्रिया कहा जाता है। इस अंतः क्रिया की निम्नलिखित तीन शैलियां होती हैं–

   (i) अध्यापक–विद्यार्थी अंतःक्रिया (Teacher-Pupil Interaction) इस प्रकार की अंतःक्रिया में अध्यापक एक समय एक विद्यार्थी के साथ अंतःक्रिया करता है। अध्यापक विद्यार्थी से बात करता है या उससे प्रश्न पूछता है और वही विद्यार्थी उसका उत्तर देता है।

(ii) अध्यापक–कक्षा अंतःक्रिया (Teacher-Class Interaction) – इस प्रकार की अंतःक्रिया में अध्यापक पूरी कक्षा से एक साथ सम्प्रेषण करता है। अध्यापक पूरी कक्षा से प्रश्न पूछता है और कुछ विद्यार्थी उसका उत्तर देते हैं।

(iii) विद्यार्थी–विद्यार्थी अंतःक्रिया (Pupil-Pupil Interaction) – इसमें विद्यार्थी और विद्यार्थी के बीच में विचारों का आदान–प्रदान होता है। अध्यापक प्रश्न पूछ कर कई विद्यार्थियों को वार्तालाप में संलग्न कर सकता है।

यदि कक्षा में एक ही प्रकार की अंतःक्रिया चलती रहे तो विद्यार्थियों की पाठ में रुचि समाप्त हो सकती है। अतः अध्यापक को अंतःक्रिया की शैलियों में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

6. **विराम (Pausing)** – विराम से अभिप्राय है बोलते–बोलते स्वेच्छा से मौन हो जाना। यदि अध्यापक कक्षा में पढ़ाते समय अचानक चुप हो जाए और उसके शिक्षण में कुछ देर के लिए विराम आ जाए तो इसे विराम की संज्ञा दी जाती है। अतः विद्यार्थियों का ध्यान स्वतः ही पाठ की ओर आकर्षित हो जाता है। अतः विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए अध्यापक को बोलते–बोलते और प्रश्न से पहले तथा बाद में कुछ देर के लिए मौन हो जाना चाहिए। कक्षा में अध्यापक द्वारा दो या तीन सैकिण्ड का अल्पमौन ही प्रभावशाली रहता है।

7. **मौखिक-दश्य बदलाव (Oral-Visual Switching)** – कक्षा शिक्षण में अध्यापक विद्यार्थियों को कभी मौखिक विवरण देता है और कभी कुछ दिखाता है। मौखिक विवरण के लिए वह शब्दों का प्रयोग करता है और दिखाने के लिए दश्य साधनों का प्रयोग करता है। इन दोनों माध्यमों में से एक माध्यम का निरन्तर प्रयोग करने से विद्यार्थी ऊब जाते हैं। इसलिए विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित रखने के लिए अध्यापक को मौखिक विवरण से दश्य साधन एवं दश्य साधन से मौखिक विवरण की ओर परिवर्तन करते रहना चाहिए। अध्यापक के इसी व्यवहार को माखिक–दश्य बदलाव कहा जाता है।

8. **विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग (Active Co-operation of the Students)** – कक्षा शिक्षण में विद्यार्थी कई प्रकार से सक्रिय सहयोग प्रदान करते हैं। वे विभिन्न प्रयोगों तथा परीक्षणों में सहायता करते हैं, दश्य–श्रव्य साधनों के प्रयोग में आवश्यक सहायता करते हैं एवं श्यामपट्ट पर कुछ लिखने व समझाने के लिए उनको बुलाया जा सकता है इस प्रकार विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करके उनके ध्यान को आकर्षित एवं केन्द्रित करने में सहायता प्राप्त होती है।

8.3 उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for the Skill of Stimulus Variation)

कक्षा –	सं० अ० अनुक्रमांक –
विषय –	सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण
उपविषय–	दिनांक–
	निरीक्षक–

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि संभावित–अध्यापक ने उद्दीपक परिवर्तन कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रति निर्णय करने के लिए टैलियां (Tallies) लगाई जाती हैं। सं०–अध्यापक के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षक करके निरीक्षक निम्नलिखित घटक व्यवहारों की आवत्ति का अंकन टैलियां लगाकर प्रत्येक मिनट के अंतराल में करता है।

घटक		आवत्ति टैलियां									
		1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1.	शरीर संचालन किया गया।										
2.	हाव–भाव में परिवर्तन किया गया।										
3.	अध्यापक ने आवाज में परिवर्तन किया।										
4.	विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रण किया गया।										
5.	अंतःक्रिया शैली में परिवर्तन किया गया।										
6.	विराम का प्रयोग किया गया।										
7.	मौखिक –दृश्य बदलाव किया गया।										
8.	विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग लिया।										

8.4 उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule for the Skill of Stimulus Variation)

कक्षा – सं० अ० अनुक्रमांक–

विषय – सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण

उपविषय– दिनांक–

निरीक्षक–

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल) का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि संभावित अध्यापक ने उद्दीपक परिवर्तन कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढ़ंग से किया है। रेटिंग स्केल पर 0 से 6 तक अंक अंकित हैं। अंक '0' अत्यन्त निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता तथा अंक '6' उत्कृष्ट प्रदर्शन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गयी टैलीयों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्याकंन किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर सं० अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

घटक (Components)		रेटिंग (Rating)						
		अत्यन्त निकृष्ट	निकृष्ट	निम्न	औसत	उत्तम	अत्युत्तम	उत्कृष्ट
1.	शरीर संचालन	0	1	2	3	4	5	6
2.	हाव–भाव में परिवर्तन	0	1	2	3	4	5	6
3.	आवाज़ में परिवर्तन	0	1	2	3	4	5	6
4.	केन्द्रण	0	1	2	3	4	5	6
5.	अंतःक्रिया शैली परिवर्तन	0	1	2	3	4	5	6
6.	विराम	0	1	2	3	4	5	6
7.	मौखिक –दृश्य बदलाव	0	1	2	3	4	5	6
8.	विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग	0	1	2	3	4	5	6

8.5 उद्दीपक परिवर्तन कौशल के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना (Model Micro Lesson plan for the Skill of Stimulus Variation)

विषय – भौतिक कक्षा – VI

उपविषय – ठोस, द्रव एवं गैस समय – 6 मिनट

अध्यापक क्रिया – अध्यापक विद्यार्थियों को ठोस, द्रव एवं गैस, पदार्थ के इन तीनों रूपों से सम्बन्धित वस्तुएं दिखा कर उनके गुणों से परिचित करवायेगा।

(डस्टर दिखाते हुए) क्या हम इस डस्टर का आकार बदल सकते है?

विद्यार्थी क्रिया – (डस्टर पर बल लगाना) नहीं

अध्यापक क्रिया – (डस्टर को हाथ में पकड़कर विद्यार्थियों को दिखाते हुए) इसका अर्थ यह है कि डस्टर का आकार निश्चित है और यह निश्चित स्थान घेरता है। अतः यह ठोस पदार्थ है।

विद्यार्थी क्रिया – (ध्यानपूर्वक सुनते हैं)

अध्यापक क्रिया – (आवाज़ एवं हाव–भाव में परिवर्तन करते हुए) अच्छा, अब इस कक्षा–कक्ष में उपस्थित कुछ अन्य ठोस वस्तुओं के नाम बताओ।

विद्यार्थी क्रिया – बैंच, कॉपी, पेन, बैग, पंखा, अध्यापक की कुर्सी आदि।

अध्यापक क्रिया – (मेज के निकट जाकर) – गिलास/बीकर में जल लेकर दिखाते हुए विद्यार्थियों में से एक को मेज के निकट बुलायेगा और गिलास का जल एक कटोरी में डालने के लिये कहेगा।

जल के गिलास को कटोरी में डालने पर जल के आकार में क्या परिवर्तन हुआ?

विद्यार्थी – जल को जिस बर्तन में डालते हैं, वह वैसा ही आकार ग्रहण कर लेता है।

अध्यापक क्रिया – (शब्दों पर बल देते हुए) इसका अर्थ है कि जल का आकार निश्चित नहीं होता परन्तु इसका आयतन निश्चित होता है। अतः यह द्रव पदार्थ है।

अच्छा, किन्हीं दो अन्य द्रव पदार्थों के नाम बताओं।

विद्यार्थी – दूध, स्याही, जूस।

अध्यापक क्रिया – एक विद्यार्थी को निकट बुलाकर उसे एक गुब्बारा फुलाने के लिये कहेगा।

विद्यार्थी क्रिया – गुब्बारे में मुँह से हवा भरेगा एवं शेष विद्यार्थी उसे देखेंगे।

अध्यापक क्रिया– (गुब्बारें को हाथ में लेकर छात्रों को दिखाते हुए)

क्या इस गुब्बारें का आकार निश्चित है?

(गुब्बारें में से थोड़ी हवा निकाल कर पुनः दिखाते हुए)

अब इस गुब्बारें का आकार छोटा हो गया है। गुब्बारें में वायु है अर्थात्, गैसें हैं, और गैस का न तो आकार निश्चित होता है और न ही आयतन (आवाज में उतार–चढ़ाव लाते हुए)

अध्यापक विराम क्रिया – डस्टर, जल एवं गुब्बारें में भरी वायु को पुनः उंगली के इशारे से दिखाते हुए–

डस्टर ठोस है– ठोस पदार्थों का आकार व आयतन निश्चित होता है।

(आवाज़ में परिवर्तन) – जल द्रव है–द्रव पदार्थों का आकार निश्चित नहीं होता परन्तु आयतन निश्चित होता है (पुनः आवाज़ में परिवर्तन) – और वायु–गैसों का मिश्रण है–गैसों का न तो आकार निश्चित होता है और न ही आयतन।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कीजिए।

(ii) उद्दीपक परिवर्तन पर आधारित एक पाठ योजना का निर्माण कीजिए।

8.6 सारांश

उद्दीपक परिवर्तन कौशल से अभिप्राय अध्यापक की उस योगयता से है जिसका उपयोग करके वह विद्यार्थियों का ध्यान कक्षा की गतिविधियों की ओर आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए विभिन्न उद्दीपकों का प्रयोग करता है और उद्दीपकों में परिवर्तन करके वह विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सफल होता है। उद्दीपक परिवर्तन कौशल के विभिन्न घटक हैं–शरीर संचालन, हाव–भाव में परिवर्तन, आवाज में परिवर्तन, केन्द्रण, विराम, अतःक्रिया शैली में परिवर्तन, मौखिक–दश्य बदलाव एवं विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग।

अध्यापक शिक्षा में आजकल सूक्ष्म शिक्षण कौशलों के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि बिना शिक्षण के व्यावहारिक पक्ष का विकास नहीं होता। यूनिट 4 के भाग 3 में आप ने सूक्ष्म शिक्षण के मुख्य पांच शिक्षण कौशलों के सम्बन्ध में अध्ययन किया। अब आप इन मुख्य शिक्षण कौशलों के घटक व्यवहारों आदि से परिचित हैं और इन शिक्षण–कौशलों से सम्बन्धित सूक्ष्म पाठ योजनाओं का निर्माण भी कर सकते हैं। इन शिक्षण कौशलों का अभ्यास आप Skill-in Teaching कार्यक्रम में करेंगे।

मॉडल उत्तर

(i) कपया 5.2 में देखें।

(ii) कपया 5.5 में देखें।

8.7 मुख्य शब्द

उद्दीपक–वह वस्तु या क्रिया जो विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित व शिक्षण में केन्द्रित करें।

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Passi, B.K.	Jangira, N.K. and Singh, Ajit 'Core Teaching Skill: The Micro Teaching Approach, New Delhi, NCERT, 1983
Becoming Better Teacher	'Micro Teaching Approach', Ahemadabad Sahitya Mudranalay, 1976
Singh, L.C.	'Micro Teaching: An Innovation in Teacher Education', NCERT, New Delhi 1977
शर्मा, आर०ए०	'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व' लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989

इकाई-V

अध्याय-1: मापन, मूल्यांकन एवं ग्रेडिंग का प्रत्यय (Concept of Measurement, Evaluation & Grading)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- मापन के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- मूल्यांकन के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- मूल्यांकन एवं मापन की तुलना कर सकें।
- ग्रेडिंग के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- मूल्यांकन की विभिन्न प्रविधियों की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।

सरंचनाः

1.1 प्रस्तावना
1.2 मापन का प्रत्यय
1.3 मूल्यांकन का प्रत्यय
1.4 मूल्यांकन एवं मापन
1.5 भौतिक विज्ञान में मूल्यांकन की विभिन्न प्रविधियां
1.6 ग्रेडिंग
1.7 सारांश
मॉडल उत्तर
1.8 मुख्य शब्द
1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना है परन्तु आज का विद्यार्थी शिक्षा केवल अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए और जीविका कमाने अर्थात् अच्छी नौकरी पाने के लिए प्राप्त करना चाहता है। अध्यापक भी केवल विषय–केन्द्रित होकर शिक्षण एवं अनुदेशन करते हैं। आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को अधिक से अधिक ज्ञान प्रदान करने तक सीमित हो गया है। परीक्षाओं में भी बहुधा इसी ज्ञान का मापन किया जाता है। जो विद्यार्थी परीक्षा के दो या तीन घंटों में अधिक से अधिक विषय वस्तु लिखता है, उसे अपेक्षाकृत अधिक अंक प्रदान किए जाते हैं और परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर उसकी योग्यता का निर्धारण किया जाता है। आधुनिक शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली में विद्यार्थी के व्यवहार के भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों के विकास के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्रदान नही की जाती। इन पक्षों के विकास की वद्धि ज्ञात करने के लिए मूल्यांकन पर बल दिया जा रहा है।

मूल्यांकन कई परीक्षाओं का सम्मिलित रूप होता है और इसमें मापन की अपेक्षा अधिक समय लगता है। प्रस्तुत अध्याय में आप मापन, मूल्यांकन एवं ग्रेडिंग के संप्रत्यय का अध्ययन करेंगे।

1.2 मापन का संप्रत्यय (Concept of Measurement)

मापन से अभिप्राय उस परिमाणात्मक (Quantitative) प्रक्रिया से है जिससे वस्तुओं, पदार्थों एवं जीवों के भौतिक तथा व्यवहारिक गुणों का पता लगाया जा सकता है। मापन का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ हुआ। इस का प्रमाण यह है कि आधुनिक काल के सबसे विकसित देश की मापन विधियां दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। मापन का आरम्भ भौतिक विज्ञान से हुआ है परन्तु इसका उपयोग शिक्षा, मनोविज्ञान, जीव विज्ञान एवं अन्य विद्यालय–विषयों में भी किया जाता है। भौतिक विज्ञान में मापन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष होती है और इसका प्रयोग प्राचीन समय से किया जा रहा है जबकि शिक्षा, मनोविज्ञान आदि में मापन का आरम्भ बीसवीं शताब्दी से हुआ और इन विषयों में यह प्रक्रिया अप्रत्यक्ष होती है। इस प्रकार मापन एक व्यापक प्रक्रिया है और यह मुख्यतः निम्नलिखित दो प्रकार की होती है–

1. भौतिक मापन (Physical Measurement)
2. व्यावहारिक मापन (Behavioural Measurement)

1. ***भौतिक मापन (Physical Measurement):*** भौतिक मापन से अभिप्राय वस्तुओं, पदार्थों एवं जीवों के भौतिक गुणों को मापने से है। भौतिक मापन प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। प्रत्यक्ष मापन से तात्पर्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के भार का मापन करना है तो उसे तुला पर खड़ा करके भार किलो मे ज्ञात कर लिया जाता है। इसी प्रकार यदि व्यक्ति की ऊंचाई का मापन करना है तो पैमाना उसकी ऊंचाई तक लगाकर मापन कर लिया जाता है कि ऊंचाई इतने सेन्टीमीटर है। भौतिक मापन की इकाई सुनिश्चित होती है जैसे भार किलोग्राम या क्विंटल में, लम्बाई व ऊंचाई मीटर या सेन्टीमीटर में, तापमान सेन्टीग्रेड (Centigrade) या फारेनहाईट में, तरल पदार्थ की मात्रा लिटर में।

   भौतिक मापन का एक मापक (Scale) एक ही गुण या विशेषता का मापन करता है इसलिए भौतिक मापन अधिक शुद्ध होता है। उदाहरण के लिए किलोग्राम का उपयोग केवल भार के मापन के लिए किया जा सकता है किसी अन्य विशेषता मापन के लिए नहीं। भौतिक मापन का सन्दर्भ बिन्दु शून्य होता है। इसीलिए जितना मापन आता है वह सार्थक होता है। भौतिक मापन में शून्य का मूल्य होता है।

2. ***व्यावहारिक मापन (Behavioural Measurement):*** व्यावहारिक मापन से अभिप्राय वस्तुओं एवं जीवों के व्यावहारिक गुणों एवं विशेषताओं को मापने से है। व्यावहारिक मापन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है इसलिए व्यावहारिक मापन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कठिन एवं जटिल होती हैं इसमें व्यक्ति के व्यवहार की विशेषताओं को मापने के लिए परीक्षण (मापक) उस पर सीधा नहीं रखा जा सकता। व्यावहारिक मापन का आधार केवल व्यक्ति का व्यवहार होता है। एक व्यवहार एक से अधिक विशेषताओं को प्रदर्शित करता है इसीलिए एक ही व्यवहार से कई विशेषताओं का मापन किया जाता है। उदाहरण–बुद्धि और उपलिब्ध का मापन एक ही प्रश्न द्वारा किया जा सकता है।

प्रश्न– लकड़ी : ठोस : जल : ..... (**उत्तर**– द्रव)

इस प्रश्न में लकड़ी और ठोस में सम्बन्ध का पता लगाना है जो विद्यार्थी की तर्कशक्ति पर आधारित हे। जिस विद्यार्थी में तर्कशक्ति होगी वह लकड़ी और ठोस के सम्बन्ध को पहचान लेगा और वही सम्बन्ध जल के साथ स्थापित करेगा। तर्कशक्ति बुद्धि का घटक है इसलिए यह प्रश्न बुद्धि का मापन करता है। जल की अवस्था को पहचानने एवं बताने के लिए विद्यार्थी को उपयुक्त शब्दावली का ज्ञान होना आवश्यक है और शब्दावली उपलब्धि का घटक है। इसलिए यह प्रश्न उपलब्धि का मापन करता हैं इस प्रकार व्यावहारिक मापन में एक व्यवहार अथवा एक प्रश्न दो या दो से अधिक विशेषताओं का मापन एक साथ करता है।

व्यावहारिक मापन में भौतिक मापन की तरह कोई इकाई निश्चित नहीं होती। इससे साधारणतः अंक प्राप्त होते हैं जो इकाई के बिना अर्थहीन होते है। इन अंकों को सार्थक बनाने के लिए गणित या सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण–किसी विद्यार्थी के विज्ञान में प्राप्तांक 90 और गणित में प्राप्तांक 80 है। इन अंकों से कोई अर्थ निकालना संभव नहीं है। इन अंकों को सार्थक बनाने के लिए या तो इन्हें प्रतिशत में बदलकर अथवा सांख्यिकी का प्रयोग करके विद्यार्थी की योग्यता का निश्चय किया जाता है।

व्यावहारिक मापन में एक परीक्षण एक समय में एक से अधिक गुणों का मापन करता हैं ऐसे परीक्षण की रचना करना संभव नहीं है जो केवल एक गुण का मापन करें। यही कारण है कि व्यावहारिक परीक्षणों का वैधता (Validity) कम होती है।

व्यावहारिक मापन में शून्य का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। इस मापन का सन्दर्भ बिन्दु समूह अथवा न्यादर्श (Sample) होता है। यदि किसी विद्यार्थी ने शून्य अंक प्राप्त किए तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह कुछ नहीं जानता अपितु यह है कि उससे जो प्रश्न किये गए वह उन प्रश्नों के सही उत्तर न दे सका इसलिए उसे शून्य दे दिया गया।

1.3 मूल्यांकन का प्रत्यय (Concept of Evaluation)

मूल्यांकन से अभिप्राय उस गुणात्मक (Qualitative) एवं परिमाणात्मक (Quantitative) प्रक्रिया से है जिससे व्यक्ति, वस्तु, प्रक्रिया आदि के सभी गुणों का पता लगाकर उसका मूल्य निर्धारित किया जाता है। मूल्यांकन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मूल्यांकन शब्द शिक्षा में अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा है। यह शब्द शिक्षा तथा मनोविज्ञान में विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है जिससे शिक्षण–अधिगम की सफलता एवं प्रभावपूर्णता का आकलन किया जाता है। इसके द्वारा अधिगम–परिस्थितियों तथा सीखने के अनुभवों के लिए प्रयोग की जाने वाली सभी विधियों एवं प्रविधियों की उपादेयता की जांच की जाती है। परम्परागत शिक्षा प्रणाली में विषय वस्तु एवं विद्यार्थियों की उपलब्धियों को ही महत्व दिया जाता है। विद्यार्थियों की असफलता अथवा सफलता का उत्तरदायित्व अध्यापक का न होकर उन्हीं का माना जाता है जबकि वास्तव में विद्यार्थियों की सफलता अथवा असफलता के लिए अधिगम परिस्थितियां उत्तरदायी होती हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया में अधिगम उद्देश्यों को प्राप्ति के आधार पर शिक्षण, शिक्षण विधियों, प्रविधियों तथा सहायक सामग्री की उपयोगिता एवं प्रभावपूर्णता का पता लगाया जाता है परन्तु अभी इस प्रक्रिया का शिक्षा में पूरी तरह उपयोग नहीं हो पा रहा है क्योंकि मूल्यांकन के लिए शिक्षा, शिक्षण, अनुदेशन तथा अधिगम के उद्देश्य स्पष्ट नहीं है।

मूल्यांकन से सम्बन्धित कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

1. क्वालेन एवं हन्ना के अनुसार, ''विद्यालय द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों के प्रमाणों के संकलन एवं विवेचन की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।''

   "Evaluation is the process of gathering and interpreting evidences on changes in the behaviour of the students as they progress through school."

   —Quillen and Hanna

2. कोठारी कमीशन के अनुसार, ''मूल्यांकन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो कि सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और यह शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।''

   "Evaluation is a continuous process which forms an integral part of total system of education and is intimately related to educational objectives."

   —Kothari Commission 1964–66

3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.) के अनुसार, ''मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिससे यह ज्ञात किया जाता है कि विषय से सम्बन्धित उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किए गए हैं, कक्षा में दिए गए अनुभव कहां तक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं और कहां तक शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति हुई है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्यांकन में विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यवहार–परिवर्तन और शिक्षण की प्रक्रिया के उपकरणों एवं विधियों का मापन किया जाता है। विद्यार्थी, विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है और विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों से उसके ज्ञान में वद्धि होती है, उसके सोचने के ढंग में परिवर्तन आता है। उसकी कार्यशैली में परिवर्तन होता है तथा उसकी संवेदनशीलता एवं अभिवत्ति विकसित होती है। विद्यार्थी के इस विकास को उसका व्यवहार–परिवर्तन कहते हैं। इस व्यवहार–परिवर्तन में विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित परिवर्तन सम्मिलित हैं। इन व्यवहार–परिवर्तनों के आधार पर शिक्षा–प्रणाली की सफलता का पता लगाया जाता है और इस प्रक्रिया को मूल्यांकन कहा जाता है।

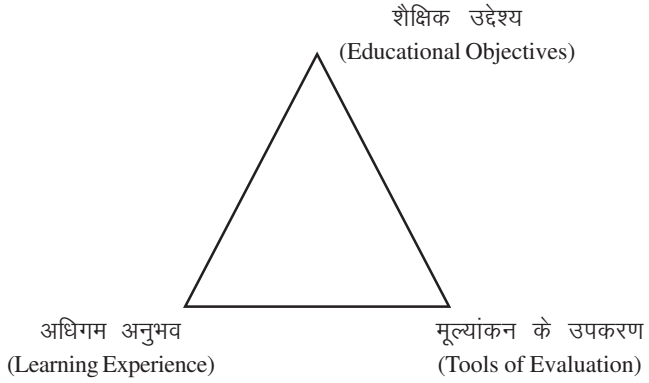

1. ***शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण:*** यह मूल्यांकन का प्रथम चरण है। विधार्थियों के वस्तुनिष्ठ एवं पूर्ण मूल्यांकन के लिए अध्यापक को शिक्षण उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना चाहिए। यदि शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण उचित ढंग से नहीं किया जाता तो शिक्षा प्रक्रिया अर्थहीन हो जाती है। भौतिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य ब्लूम के वर्गीकरण के आधार पर विद्यार्थी के व्यवहार के तीनों पक्षों–ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित होते हैं। इन तीनों पक्षों के विभिन्न स्तर हैं। भौतिक विज्ञान शिक्षण के लिए मुख्यतः ज्ञान, बोध, प्रयोग, कौशल, वैज्ञानिक दष्टिकोण, रुचि, प्रशंसात्मक क्षमताओं आदि से सम्बन्धित उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

   (i) शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण स्तर–केन्द्रित होना चाहिए। उद्देश्यों का निर्धारण करते समय विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर एवं विकासक्रम को ध्यान में रखना चाहिए।

   (ii) उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किए जाने चाहिए।

   (iii) शिक्षण–विधि के अनुरूप उद्देश्यों का निर्धारण किया जाना चाहिए। उदाहरण–व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि का उपयोग करके विद्यार्थियों में प्रयोगात्मक कौशलों का विकास संभव है जबकि पाठ्यपुस्तक विधि या भाषण विधि द्वारा इन कौशलों का विकास असंभव है।

   उद्देश्यों के स्पष्ट निर्धारण के पश्चात् उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना आवश्यक है क्योंकि इससे अध्यापक को न केवल शिक्षण व्यूह–रचनाओं एवं युक्तियों के चयन में अपितु मूल्यांकन में भी सहायता मिलती है। परीक्षण–निर्माण में परीक्षण–पदों के चयन के लिए भी उद्देश्यों को व्यवहारपरक उद्देश्यों में परिवर्तित करना आवश्यक है।

2. ***अधिगम-अनुभवों का सजन (Developing Learning Experiences):*** अधिगम–अनुभवों से अभिप्राय है–वे साधन एवं अनुभव जिनकी सहायता से शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। कक्षा–शिक्षण के अंतर्गत अध्यापक ऐसी क्रियाएं करता है जिससे विद्यार्थियों से अपेक्षित अधिगम अनुभव हो सके। ये अनुभव शिक्षण–विधि, प्रविधि (Technique) सहायक सामग्री अथवा अनुदेशन के प्रयोग द्वारा दिये जा सकते हैं। अधिगम अनुभव शिक्षण उद्देश्यों एवं पाठ्य वस्तु पर आधारित होते हैं। जैसे ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य प्राप्त करने के लिए शिक्षक चार्ट दिखाएगा,

व्याख्यान देगा या पूर्व ज्ञान सम्बन्धी बिन्दुओं का प्रत्यास्मरण करवाएगा तथा गहकार्य देगा जिससे विद्यार्थी अधिगम अनुभव प्राप्त कर सके। बोध उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अध्यापक प्रदर्शन विधि या मॉडल का प्रयोग आदि का उपयोग करके अधिगम अनुभव प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार प्रयोग उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अध्यापक प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method), अन्तःक्रिया विधि (Interaction Method), अनुवर्ग शिक्षण (Tutorial teaching), समस्या समाधान विधि (Problem-solving Method) आदि का प्रयोग करके विद्यार्थियों को अधिगम अनुभव प्रदान कर सकता है।

इसके अतिरिक्त संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर भी अधिगम–अनुभवों का सजन किया जाता है। साधनों की व्यवस्था की रूपरेखा प्रत्येक शिक्षण की योग्यता एवं क्षमता पर निर्भर करती है।

3. ***व्यवहार परिवर्तन या अधिगम का मूल्यांकन (Evaluation of Change of Behaviour or Learning):*** यह मूल्यांकन प्रक्रिया का तीसरा एवं अन्तिम चरण होता है। विद्यार्थियों को अधिगम–अनुभवों को प्रदान करके उनके व्यवहार में परिवर्तन लाये जा सकते हैं। अधिगम का मूल्यांकन या व्यवहार–परिवर्तन का मूल्यांकन पूर्व निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है। उद्देश्यों को जिस सीमा तक प्राप्त किया गया है उसके आधार पर अधिगम–अनुभवों की प्रभावशीलता का पता लगाया जाता है।

   विद्यार्थियों के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों के मूल्यांकन के लिए अलग–अलग विधियों का प्रयोग किया जाता है। ज्ञानात्मक पक्ष (ज्ञान, बोध एवं प्रयोग) के मूल्यांकन के लिए मौखिक परीक्षा (Oral Test), निरीक्षण (Observation), वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective type test), निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay type test) तथा साक्षात्कार (Interview) आदि विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। भावात्मक पक्ष (रुचि, अभिरुचि, अभिवत्ति, प्रशंसात्मक क्षमताएं) के लिए निरीक्षण, रेटिंग स्केल, अभिरुचि परीक्षण आदि की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार क्रियात्मक पक्ष के मूल्यांकन के लिए निरीक्षण, और साक्षात्कार विधि आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

1.4 मूल्यांकन एवं मापन
(Evaluation and Measurement)

सामान्यतः मूल्यांकन और मापन को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं में निम्नलिखित अन्तर है–

1. मूल्यांकन एक गुणात्मक एवं परिमाणात्मक प्रक्रिया है जबकि मापन केवल एक परिमाणात्मक प्रक्रिया है।
2. मापन की प्रक्रिया औपचारिक होती है जबकि मूल्यांकन की प्रक्रिया औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों होती है।
3. मूल्यांकन में विद्यार्थी के सभी गुणों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है जबकि मापन में विद्यार्थी के कुछ विशिष्ट गुणों की ही जानकारी प्राप्त की जाती है। उदाहरण वैज्ञानिक दष्टिकोण का मापन नहीं किया जा सकता परन्तु मूल्यांकन किया जा सकता है।

   कक्षा में अध्यापक आत्मविश्वास से पढ़ा रहा है या नहीं, इसका मूल्यांकन किया जा सकता है परन्तु मापन नहीं किया जा सकता।
4. मापन का क्षेत्र सीमित है जबकि मूल्यांकन का क्षेत्र अधिक व्यापक है। मूल्यांकन से मापन भी किया जाता है।
5. मापन की विधियां सीमित हैं जबकि मूल्यांकन में अनेक विधियों जैसे–परीक्षण, रेटिंग, निरीक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली आदि।
6. मापन में ऐसी परिस्थितियां दी जाती हैं जो सही हों अथवा गलत। सही के लिए 1 अंक और गलत के लिए शून्य अंक प्रदान किया जाता है। इन अंकों का योग करके कुल अंक प्राप्त कर लिए जाते हैं। मूल्यांकन में ऐसी परिस्थितियां दी जाती हैं जो न सही होती हैं और न ही गलत, अपितु इससे गुणों का बोध होता है।

1.5 भौतिक विज्ञान में मूल्यांकन की विभिन्न प्रविधियां (Techniques of Evaluation in Physical Sciences)

भौतिक विज्ञान शिक्षण का मूल्यांकन करने के लिए वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। ये मूल्यांकन प्रविधियां निम्नलिखित हैं–

1. मौखिक परीक्षाएं (Oral tests)
2. लिखित या निबन्धात्मक परीक्षाएं (Written or Essay Type Tests)
3. प्रयोगिक परीक्षाएं (Practical Tests)

1. ***मौखिक परीक्षाएं (Oral Tests):*** मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग प्राचीन काल से ही किया जा रहा है। परीक्षा के रूप में केवल एक अध्यापक विद्यार्थियों को अपने सम्मुख बिठा कर उनसे मौखिक प्रश्न पूछता था और उसके आधार पर विद्यार्थियों को सुयोग्य अथवा अयोग्य घोषित कर देता था। हमारे देश में सन् 1850 तक विद्यार्थियों की परीक्षा केवल मौखिक रूप से ली जाती थी और इस आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाता था।

   आधुनिक काल में भी विद्यार्थियों की मौखिक अभिव्यक्ति की जांच करने के लिए मौखिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। भौतिक–विज्ञान शिक्षण में मौखिक परीक्षाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रायः अध्यापक कक्षा में पढ़ाते हुए कथन करता है और विद्यार्थी कक्षा में अध्यापक कथन सुनने का ही काम करता है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण कार्य एक कथन मात्र रह जाता है जिसमें विद्यार्थियों का कोई योगदान नहीं होता। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह कक्षा में पढ़ाते समय विद्यार्थियों से पाठ के मध्य में मौखिक प्रश्नों का प्रयोग करता रहे। पाठ के मध्य में किसी विशिष्ट विचार को विकसित करने तथा नवीन नियम निर्धारित करने के लिए भी प्रश्न पूछे जाने चाहिएं। ऐसे प्रश्नों से विद्यार्थी सावधान ही नहीं रहते, अपितु इससे विद्यार्थियों की मानसिक क्रिया को भी प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार के प्रश्नों से अध्यापक यह जान सकता है कि विद्यार्थी पाठ को अच्छी तरह समझ रहे हैं या नहीं।

   भौतिक विज्ञान में कई ऐसे प्रकरण हैं जिनका मौखिक प्रश्न पूछकर अभ्यास करवाया जा सकता है। उदाहरण के लिए–किसी गैस की विशेषताओं के बारे में पूछा जा सकता है। विद्यार्थी कक्षा में जो भी निबन्धात्मक प्रकरण पढ़ें, उससे सम्बन्धित कुछ प्रश्न मौखिक रूप से पूछे जायें तथा उन्हें निर्धारित समय में उन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। मौखिक प्रश्नों के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक सत्र की समाप्ति पर या जब भी मूल्यांकन किया जाए, कुछ अंक निश्चित कर लेने चाहिएं।

   मौखिक परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षणों के लिए प्रयोग किये जाते हैं। यदि कोई विद्यार्थी अधूरा उत्तर देता है तो वह दूसरे प्रश्न द्वारा पूरा किया जा सकता है अतः मौके पर ही शुद्धिकरण सम्भव है। भौतिक–विज्ञान शिक्षण में मौखिक मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थी के स्वतन्त्र चिन्तन के परीक्षण का अवसर मिलता है। मौखिक परीक्षण द्वारा दिया गया तर्क विद्यार्थी का अपना होता है। कक्षा में दैनिक–परीक्षणों के अतिरिक्त तथ्यों के ज्ञान के परीक्षण या किसी प्रकरण पर विचार प्रस्तुत करने की योग्यता का परीक्षण वर्ष में कम से कम दो बार अवश्य होना चाहिए। मौखिक परीक्षा उस स्थिति में महत्वपूर्ण होती है जब अध्ययन की किसी विशिष्ट इकाई से सम्बन्धित प्रश्न क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित हों।

   मौखिक परीक्षा के लिए प्रश्न अलग–अलग कार्डों पर पहले ही लिख लेने चाहिए। विद्यार्थी इन कार्डों में से एक समय में एक कार्ड लेगा। कार्ड पर लिखे प्रश्न का उत्तर देने के लिए विद्यार्थी को कुछ समय दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी का विभिन्न चर्चाओं आदि में निर्णायकों द्वारा मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

   मौखिक परीक्षाओं के दोष (Demerits of Oral Tests): मौखिक परीक्षाओं में कुछ दोष भी हैं जिसके कारण ये परीक्षण सभी परिस्थितियों एवं सभी प्रकरणों में प्रयोग नहीं किये जा सके। ये दोष निम्नलिखित हैं–

(i) मौखिक परीक्षणों में बहुत अधिक समय व्यय होता है अर्थात् मौखिक परीक्षाओं द्वारा किये जाने वाले मूल्यांकन में बहुत अधिक समय लगता है।

(ii) मौखिक परीक्षाएं कई बार अधिक व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होती हैं अर्थात् इन परीक्षणों में अध्यापक की स्वयं की धारणायें मूल्यांकन को प्रभावित करती है।

(iii) मौखिक परीक्षाओं में मौके पर निर्णय लेने की प्रक्रिया 'मापन का अपूर्ण उपकरण' कहलाती है।

2. ***लिखित परीक्षाएं (Written Tests):*** लिखित परीक्षाएं, मौखिक परीक्षाओं से बाद में आरम्भ हुई। विदेशों में सन् 1702 में सबसे पहले लिखित परीक्षा इंग्लैण्ड की कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी (Cambridge University) ने ली। भारत में इन परीक्षाओं का प्रादुर्भाव सन् 1857 में तीन विश्वविद्यालयों कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई की स्थापना के बाद हुआ।

लिखित परीक्षाओं में विद्यार्थियों को कुछ प्रश्न दे दिये जाते हैं जिनके उत्तर एक निश्चित समय में लिखे जाने होते हैं। लिखित परीक्षाएं निम्नलिखित तीन प्रकार की हो सकती हैं–

A. निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Tests)

B. लघु–उत्तर परीक्षाएं (Short Answer Type Tests)

C. वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं (Objective Type Tests)

A. ***निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Tests):*** निबन्धात्मक परीक्षाएं वे परीक्षाएं हैं जिनमें विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान का पता लगाने के लिए निबन्धात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। निबन्धात्मक परीक्षाओ से हम सब अच्छी तरह परिचित हैं, क्योंकि प्रायः सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में इनका ही प्रयोग होता है। इन परीक्षाओं की नींव अत्यंत गहरी है अर्थात् आधुनिक काल में 1857 में विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ ही इनका आरम्भ हुआ इसलिए इसको परम्परागत परीक्षा प्रणाली (Traditional Examination System) भी कहा जाता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं में परीक्षार्थी किसी भी प्रश्न का उत्तर विस्तार से देता है। उत्तर की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती तथा परीक्षार्थी अपने मौलिक विचारों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया स्वतन्त्र होता है। निबन्धात्मक प्रश्नों को तैयार करके प्रश्न–पत्र देना एक सरल होता है। यद्यपि इन परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों की तर्क–पूर्ण चिन्तन, व्याख्या तथा निर्णय–शक्ति आदि अनेक योग्यताओं का सही मूल्यांकन संभव है फिर भी इन परीक्षाओं में इस बात पर विशेष महत्व दिया जाता है कि विद्यार्थी सुन्दर लेख एवं भाषा शैली के आधार पर, तथ्यों को कितनी कुशलता से प्रस्तुत कर सकता है।

निबन्धात्मक प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

(i) न्यूटन के गति के नियमों का वर्णन करो।

(ii) परमाणु सरंचना की चित्र सहित व्याख्या करो।

(iii) ऊर्जा एवं इसके विभिन्न प्रकारों पर निबन्ध लिखो।

(iv) कार्बन एवं इसके अपरूपों का वर्णन करो।

(v) धातु और अधातुओं में अन्तर बताओ।

निबन्धात्मक परीक्षाओं में प्रयोग किये जाने वाले प्रश्न (Types of Questions used in Essay Type Tests): निबन्धात्मक परीक्षाओं में निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है–

(i) ***वर्णनात्मक प्रश्न (Descriptive Questions):*** ऐसे प्रश्नों में किसी प्रकरण का वर्णन करने को कहा जाता है।

उदाहरण–न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम का वर्णन कीजिए।

(ii) ***विवेचनात्मक प्रश्न (Discussion Type Questions):*** इस तरह के प्रश्नों में किसी वस्तु, प्रक्रिया आदि के वर्णन के साथ–साथ उसके गुण एवं दोषों की व्याख्या करने को कहा जाता है।

उदाहरण—पवन–चक्की (Wind-mill) किस सिद्धान्त पर कार्य करती है? पवन–चक्की के लाभ एवं सीमाएं भी बताओ।

(iii) ***उदाहरणार्थ प्रश्न (Illustrative Type Questions):*** इन प्रश्नों में उदाहरणों की सहायता से या प्रयोग द्वारा कुछ स्पष्ट करने को कहा जाता है।

उदाहरण—प्रयोग द्वारा सिद्ध करो कि वायु में चार भाग नाइट्रोजन एवं एक भाग ऑक्सीजन होती है।

(iv) ***रूपरेखात्मक प्रश्न (Outline Type Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में किसी वस्तु की रूपरेखा पूछी जा सकती है।

उदाहरण—सोलर कुकर का नामांकित चित्र बनाओ।

(v) ***आलोचनात्मक प्रश्न (Critical Questions):*** इन प्रश्नों में विचारों की शुद्धता, सत्यापन, पर्याप्तता आदि के मूल्यांकन के साथ सुझाव आदि पूछे जा सकते हैं।

उदाहरण—क्या वर्षा का जल शुद्ध होता है? यदि नहीं तो क्यों?

(vi) ***विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में तथ्यों एवं विचारों का विश्लेषण करने को कहा जाता है।

उदाहरण—मोमबत्ती की ज्वाला का नीला तल मण्डल नीला क्यों दिखाई देता है?

(vii) ***वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में वस्तुनिष्ठता होती है।

उदाहरण—मीथेन, इथेन, ब्यूटाइन तथा एसीटीलीन के रासायनिक सूत्र क्या हैं?

(viii) ***वर्गीकरण प्रश्न (Classification Questions):*** इस तरह के प्रश्नों में किसी वस्तु या प्रक्रिया के विभिन्न प्रकारों के बारे में पूछा जाता है।

उदाहरण—कार्बन के विभिन्न अपरूपों का वर्गीकरण कीजिए।

(ix) ***व्याख्यात्मक प्रश्न (Interpretive Questions):*** इन प्रश्नों में प्रक्रियाओं या शब्दों की व्याख्या करने के लिए कहा जाता है। कई बार इन प्रश्नों में कारण एवं प्रभाव (Cause effect) की व्याख्या भी शामिल की जाती है।

उदाहरण—पानी के गिलास में रखी पैंसिल मुड़ी हुई क्यों दिखाई देती है? व्याख्या कीजिए।

(x) ***तुलनात्मक प्रश्न (Comparison Type Questions):*** इन प्रश्नों में विचारों, वस्तुओं, प्रत्ययों, प्रक्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन के बारे में कहा जाता है।

उदाहरण—ग्रह और उपग्रह की तुलना कीजिए।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के गुण (Merits of Traditional/Essay Type Tests): निबन्धात्मक परीक्षाओं में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं–

1. ये परीक्षाएं विद्यार्थियों को निर्देशन प्रदान करती हैं।
2. ये परीक्षाएं विद्यार्थी के व्यापक मूल्यांकन में सहायक हैं।
3. ये परीक्षाएं उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के मापन का एक सशक्त साधन है।
4. इन परीक्षाओं द्वारा विद्यार्थियों का वर्गीकरण किया जा सकता है तथा ये शैक्षिक समायोजन में सहायक है।
5. इन परीक्षाओं में परीक्षार्थी को विचारों की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

6. इन परीक्षाओं से ज्ञान के गुणात्मक पक्षों जैसे–शाब्दिक अभिव्यक्ति, भाषा पर अधिकार, साहित्यिक शैली, विचारों का प्रस्तुतीकरण आदि का उचित मूल्यांकन संभव है।

7. ये परीक्षाएं मितव्ययी हैं। इन परीक्षाओं में परीक्षार्थयों की बहुत बड़ी संख्या की परीक्षा एक साथ ली जा सकती है। इससे समय और शक्ति दोनों की बचत हो जाती है।

8. इन परीक्षाओं के प्रश्नों की रचना करना सरल कार्य है।

9. यह परीक्षा प्रणाली सभी विषयों के लिए उपयुक्त है।

10. इन परीक्षाओं से अपेक्षित अध्ययन विधियों को विकसित करने में सहायता मिलती है।

11. इन परीक्षाओं में नकल की संभावना कम रहती है।

12. इन परीक्षाओं की सहायता से विद्यार्थियों की मौलिकता एवं विचारों को संगठित करने की योग्यता आदि को मापने का अवसर मिलता है।

13. इन परीक्षाओं से विद्यार्थयों की विभिन्न योग्यताओं, क्षमताओं जैसे–तर्कशक्ति, विचार शक्ति, मानसिक शक्ति आदि का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है।

निबन्धात्मक परीक्षाओं की सीमाएं (Limitations of Essay Type Examinations)

1. इन परीक्षाओं में जिन प्रश्नों का चयन किया जाता है, वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते।

2. ये परीक्षाएं सुन्दर लेख एवं परीक्षा युक्तियों (Exam. Tactics) पर अधिक बल देती है। इसके परिणामस्वरूप कभी–कभी परीक्षार्थी परीक्षक को धोखा देने में भी सफल हो जाता है।

3. ये परीक्षाएं रटने (Cramming) पर बहुत अधिक बल देती है।

4. इन परीक्षाओं में अंकन आत्मनिष्ठ होता है। प्रत्येक परीक्षक का मूल्यांकन का अपना अलग तरीका होता है। एक परीक्षक मात्र कुछ पंक्तियों को देखकर अंक देता है तो दूसरा एक–एक शब्द पढ़कर।

5. इन परीक्षाओं ने शिक्षा एवं शिक्षण दोनों को परीक्षा–प्रधान बना दिया है। अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनों की सफलता परीक्षा के परिणाम पर निर्भर करती है। इन परीक्षाओं ने शिक्षा को साधन के स्थान पर साध्य बना दिया है।

6. इन परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठता नहीं होती। विद्यार्थी अटकलें लगाकर उत्तर लिख सकते हैं।

7. निबन्धात्मक परीक्षाओं की विश्वसनीयता एवं वैधता निम्न स्तर की होती है।

   इन परीक्षाओं की विश्वसनीयता पर व्यंग्य करते हुए पी०ई० वरनन (P. E. Vernan) ने अपनी पुस्तक 'Measurement of Abilities' में निम्नलिखित दो रोचक अध्ययनों का उल्लेख किया है–

   स्टार्च तथा इलीयट (Starch & Elliott) ने ज्यामिति परीक्षा की एक उत्तर पुस्तिका का 116 हाई स्कूलों परीक्षकों से मूल्यांकन करवाया। प्राप्तांकों का विस्तार 28% से 92% तक था।

   डॉ० हारपर (Dr. Harper) के प्रसिद्ध अध्ययन 'Ninety Marking Ten' के अनुसार एक परीक्षक ने जिस विद्यार्थी को विशेष योग्यता के अंक दिए, उसे सात परीक्षकों ने अनुत्तीर्ण किया, आठ ने प्रथम श्रेणी दी तथा इस प्रकार अंकों का विस्तार 22% से 76% तक था।

8. निबन्धात्मक परीक्षाएं अधिक समय लेती हैं। परीक्षार्थी लिखते–लिखते थक जाता है।

9. निबन्धात्मक प्रश्नों का मूल्यांकन उचित रूप से नहीं किया जाता। कुछ परीक्षक पेजों की संख्या के आधार पर, कुछ लेख एवं साज–सज्जा से प्रभावित होकर, कुछ प्रश्नों की क्रमबद्धता देखकर एवं कुछ परीक्षक अच्छे

विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर अंकन करते हैं। उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते समय परीक्षक का 'मूड़' अर्थात् मानसिक स्थिति भी मूल्यांकन को प्रभावित करती है।

10. इन परीक्षाओं का निदानात्मक महत्व नहीं है। प्रश्नों का उत्तर विस्तत होने से परीक्षार्थी की कमजोरियों का पता लगाना आसान कार्य नहीं होता। बहुत से विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर न जानते हुए भी इधर–उधर की बातें लिख देते हैं। इससे पूरी परीक्षा का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।
11. इसमें प्रश्न–पत्रों का कठिनाई स्तर प्रतिवर्ष बदलता रहता है। प्रश्न–पत्र यह सोचकर नहीं बनाए जाते कि शिक्षण के उद्देश्य क्या थे। यही कारण है कि इन परीक्षाओं को 'उद्देश्य रहित परीक्षाएं' कहा जाता है।
12. इन परीक्षाओं में विद्यार्थी की सफलता मुख्यतः संयोग पर निर्भर करती है क्योंकि अधिकांश विद्यार्थी अनुमान लगाकर कुछ प्रकरणों का परीक्षा की दष्टि से गहन अध्ययन करते हैं तथा शेष अंशों की ओर ध्यान नहीं देते। यदि वही प्रश्न परीक्षा–पत्र में नहीं आते तो ऐसे विद्यार्थी परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षाओं की आलोचना करते हुए 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने कहा है–इनका उद्देश्य प्रायः स्पष्ट नहीं होता। इसलिए ये अप्रमाणित है, इनकी रचना मनमाने ढंग से की जाती है और इनका क्षेत्र सीमित है। ये अपर्याप्त है। इनका अंकन व्यक्तिपरक होता है इसलिए ये विश्वसनीय नहीं है।

C. वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं अथवा नवीन परीक्षाएं
(Objective type Examinations or New Type Tests)

निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोषों को दूर करने के लिए 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में एक नवीन परीक्षण प्रणाली का विकास हुआ। इसी नवीन प्रणाली को ही वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली का नाम दिया गया है। वस्तुनिष्ठ प्रणाली का प्रादुर्भाव एवं विकास सबसे पहले अमेरिका में हुआ। इसके पश्चात् बैलार्ड (Ballard) महोदय के प्रयत्नों के फलस्वरूप यूरोप में इस प्रणाली का प्रचार–प्रसार हुआ। हमारे देश के शिक्षा–विशेषज्ञों ने भी इस परीक्षा प्रणाली के महत्व को समझा है और आजकल बहुत से क्षेत्रों में मूल्यांकन के लिए इस परीक्षण प्रणाली का उपयोग किया जा रहा हैं। ये परीक्षण मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार से किए जाते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा से अभिप्राय ऐसे परीक्षणों से है जिनकी रचना अध्यापक अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षण उद्देश्यों, अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता है। इस प्रणाली में उद्देश्यों को निश्चित कर लिया जाता है तथा संपूर्ण पाठ्यवस्तु मे से पदों का चयन करके उन्हें एक परीक्षण के रूप में विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इन परीक्षणों द्वारा किसी निश्चित क्षेत्र में व्यक्ति की योग्यताओं का वैज्ञानिक ढंग से मापन किया जाता है। इस प्रणाली के अनुसार प्रश्न–पत्र में प्रश्नों की संख्या पर्याप्त होती है और उनका उत्तर एक–दो शब्दों या एक–वाक्य में देना होता है अथवा चिन्हित करना होता है। प्रत्येक प्रश्न का एक निश्चित उत्तर होता है और विद्यार्थी से यही उत्तर प्राप्त करने की आशा की जाती है। इन परीक्षणों में विद्यार्थी को स्वतन्त्रतापूर्वक उत्तर देने की छूट नहीं होती। मूल्यांकन करते समय भी इन पर अवसर तत्व का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न ही अंकन करते समय परीक्षक पक्षपात कर सकता है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता (Objectivity and Reliability) होती है। ये निबन्धात्मक परीक्षाओं की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

I. प्रमापीकृत या मानकीकृत परीक्षण (Standardized Tests)

II. अप्रमापीकृत या अमानकीकृत परीक्षण (Non-Standardized Test or Teacher-made Tests)

इन दो प्रकार के परीक्षणों में प्रायः कोई अन्तर नहीं होता। दोनों के प्रश्न एवं परीक्षा–पद्धति में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। एकमात्र अन्तर यही है कि मानकीकृत परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए जाते हैं। ये विश्वसनीय एवं सर्वसामान्य होते हैं। इन्हें तैयार करने एवं मानकीकृत करने के लिए एक विशेष पद्धति का अनुसरण किया जाता

है और इनकी एक अंकन कुन्जी (Scoring Key) भी होती है। अध्यापक निर्मित परीक्षण अथवा अमानकीकृत परीक्षण से अभिप्राय ऐसे परीक्षण से है जिसे अध्यापक समय तथा कक्षा की आवश्यकतानुसार निर्माण करता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के प्रकार
(Types of Objective Type Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

1. पहचान प्रश्न (Recogntion Type Questions)
2. प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall Type Questions)
3. कालानुक्रम प्रश्न

1. ***पहचान प्रश्न (Recognition Type Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में प्रश्न पहचान कर उनका प्रत्युत्तर देना होता है अर्थात् दो या अधिक उत्तरों में सही उत्तर को पहचान कर उचित स्थान पर व्यवस्थित किया जाता है। इन परीक्षणों की रचना सुगमता से की जा सकती है। इन प्रश्नों के माध्यम से श्रेष्ठ एवं कमजोर विद्यार्थियों का पता लगाया जाता है। ऐसे प्रश्नों का मुख्य दोष यह है कि इनमें विद्यार्थी अनुमान लगा कर उत्तर दे देता है और विषय–वस्तु में उसके बोध से सम्बन्धित स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। पहचान प्रकार के प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

   I. ***एकान्तर प्रत्युत्तर प्रकार के प्रश्न या सविकल्प उत्तर परीक्षण (Alternate Response Type Questions):*** इन प्रश्नों में प्रत्येक प्रश्न के सामने दो उत्तर अथवा विकल्प लिखे होते हैं। ये उत्तर सत्य या असत्य अथवा हां या नहीं हो सकते हैं। परीक्षार्थियों को इन दो विकल्पों में से एक विकल्प का चयन करके उसे चिन्हित करना होता है। इन प्रश्नों को सत्य–असत्य प्रश्न (True-False Questions) भी कहा जाता है।

   उदाहरण–निम्नलिखित कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़ कर सही उत्तर को चिन्हित (√) करो।

   (i) हाइड्रोजन गैस सबसे हल्की गैस होती है। (सत्य/असत्य)

   (ii) कार्बन की संयोजकता चार होती है। (सत्य/असत्य)

   निम्नलिखित प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न के सामने हां या नहीं लिखा गया है। यदि प्रश्न का उत्तर 'हां' में हो तो हां को (√) चिन्हित कीजिए और यदि नहीं में है तो नहीं को (×) कीजिए।

   (i) ऑक्सीजन गैस जलने में सहायक होती है। (हां/नहीं)

   (ii) जल का रासायनिक सूत्र H_2O होता है। (हां/नहीं)

   II. ***बहु-विकल्पी प्रश्न (Multiple-choice Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में प्रत्येक प्रश्न के दो से अधिक अथवा चार–पांच उत्तर या विकल्प एक साथ दिए जाते हैं। परीक्षार्थियों को प्रश्न को ध्यान में रखकर इन उत्तरों या विकल्पों में सबसे उपयुक्त उत्तर का चयन करना होता है। इन प्रश्नों में परीक्षार्थी को अनुमान लगाने का अवसर अपेक्षाकृत कम होता है क्योंकि एक ही प्रश्न के कई विकल्प प्रस्तुत किये जाते हैं। इन विकल्पों में केवल एक सही होता है। परीक्षार्थी को सही विकल्प को छांटना होता है। इन प्रश्नों के माध्यम से विद्यार्थी की तर्क शक्ति, बोध–शक्ति, निर्णय शक्ति एवं विभेदीकरण क्षमता का मापन किया जाता है। ये प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

      (a) ***सरल बहु-विकल्पी प्रश्न (Simple Multiple Choice Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में एक कथन दिया जाता है जिसके सामने कई प्रत्युत्तर दिए होते हैं तथा उनमें से परीक्षार्थी को केवल एक का चयन करना होता है।

उदाहरण—तापमान देखने के लिए जिस यन्त्र का प्रयोग होता है वह है—बैरोमीटर, हाइड्रोमीटर, थर्मामीटर, लैक्टोमीटर, पायरोमीटर।

(b) ***युगलीकरण प्रश्न अथवा तुलनात्मक बहुविकल्पी प्रश्न (Matching Type Multiple Choice Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में उत्तरों के क्रम में परिवर्तन किया जाता है अर्थात् उत्तर उसी क्रम में नहीं लिखे होते जिस क्रम में प्रश्न लिखे होते हैं। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का उसके सही उत्तर के साथ युगलीकरण करना होता है।

उदाहरण—निम्नलिखित प्रश्न के एक ओर कुछ शब्द दिये गए हैं दूसरी ओर इन शब्दों से संबंधित तथ्य लिखे गए हैं। इन शब्दों का सही तथ्य/उत्तर से युगलीकरण करें—

(A)	(B)
(i) सैंटीग्रेड	(i) 100 भाग होते हैं।
(ii) फारेन हाइट	(ii) 212 भाग होते हैं।
(iii) क्लीनिकल	(iii) 110 भाग होते हैं।
	(iv) 180 भाग होते हैं।
	(v) 15 भाग होते हैं।

III. ***वर्गीकरण बहुविकल्पी प्रश्न (Classification Type Multiple Choice Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ तथ्य, शब्द आदि एक समूह के रूप में लिखे जाते हैं। इन तथ्यों या शब्दों मे से एक के अतिरिक्त सभी शब्द या तथ्य आपस में संबंधित होते हैं। परीक्षार्थी को उस शब्द या तथ्य को छांटना होता है जो शेष सभी से संबंधित नहीं होता।

उदाहरण—निम्नलिखित में से असम्बन्धित शब्द या तथ्य के नीचे रेखा खींचिए—

(i) NaCl, $CuSO_4$, $AgNO_3$, $Ca(OH)_2$, NIO

(ii) तांबा, लोहा, सोना, जिंक, पीतल।

2. ***प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में किसी सीखे हुए तथ्य/सिद्धांत आदि का पुनः स्मरण करवाया जाता है। अर्थात् इन प्रश्नों की सहायता से विद्यार्थी की धारण—शक्ति (Power of Retention) को मापने का प्रयास किया जाता है। ऐसे प्रश्नों का निर्माण सरलता से हो जाता है। ये प्रश्न मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—

I. ***साधारण प्रत्यास्मरण प्रश्न अथवा अति लघुउत्तरात्मक प्रश्न (Simple Recall Questions or Very Short Answer type Questions):*** इस प्रकार के प्रश्न विद्यार्थियों के ज्ञान का मूल्यांकन करने में सहायता करते हैं। ये प्रश्न रटने की प्रवत्ति को बढ़ावा देते हैं क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर विद्यार्थी अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर देते हैं। ये प्रश्न मुख्यतः परिभाषा, सिद्धांत या मुख्य बिन्दु, नाम आदि से सम्बन्धित होते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर एक—दो शब्दों अथवा एक वाक्य में दिया जाता है।

उदाहरण—

(i) अणु किसे कहते हैं?

(ii) न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम को परिभाषित करो।

II. ***पूर्तिकरण प्रत्यास्मरण प्रश्न (Completion Type Recall Questions):*** इस प्रकार के प्रश्न भी विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान के प्रत्यास्मरण पर आधारित होते हैं। इनमे कुछ वाक्य दिये जाते हैं जिनके बीच में या अन्त में कुछ शब्दों का स्थान रिक्त होता है। परीक्षार्थी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी स्मरण शक्ति की

सहायता से इन रिक्त–स्थानों की पूर्ति करें। इसीलिए इन प्रश्नों को पूर्तिकरण प्रश्न अथवा रिक्त स्थानों की पूर्ति करने वाले प्रश्न कहा जाता है। एक ही वाक्य में एक अथवा एक से अधिक रिक्त स्थान दिए जा सकते हैं परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रिक्त स्थान केवल एक ही उपयुक्त शब्द द्वारा भरा जा सके।

उदाहरण–

40^{o} F = ...^{o}C

$NaCl + H_2SO_4 \longrightarrow$ ..... + ...

3. ***कालानुक्रम प्रश्नः*** ऐसे प्रश्न प्रायः भौतिकीय विज्ञान के विभिन्न कारणों के इतिहास का मूल्यांकन करने के लिए दिए जाते हैं। इन प्रश्नों के माध्यम से विद्यार्थियों के समय बोध की परीक्षा की जाती है।

उदाहरण–

1. निम्नलिखित वैज्ञानिकों के नाम क्रमानुसार लिखें–
   (a) सी०वी० रमन
   (b) न्यूटन
   (c) फैराड़े
   (d) होमी जहांगी भाभा

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के निर्माण हेतु सुझाव
(Suggestions for Construction of Objective Type Questions)

अध्यापक को वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण करते समय कुछ मुख्य बिन्दुओं की ओर ध्यान देना चाहिए। ये बिन्दु निम्नलिखित हैं–

1. ***सरल भाषा (Simple Language):*** वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की भाषा सरल होनी चाहिए जिससे प्रत्येक परीक्षार्थी उन्हे आसानी से समझ सके। शब्दों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये कठिन न हों। परीक्षार्थी प्रश्नों का सही उत्तर तभी दे सकेंगे यदि वे प्रश्नों की भाषा समझ सकेंगे।

2. ***स्पष्ट प्रश्न (Clear Questions):*** प्रश्नों का निर्माण करते समय अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि अस्पष्ट प्रश्नों का निर्माण न हो। कई बार यह देखने में आता है कि अध्यापक द्वारा चुने गये परीक्षण पदों में अस्पष्टता होती है। अध्यापक यदि नियमित अभ्यास करते रहें तथा सावधानी से योजना बनायें तो अस्पष्टता का भय नहीं होगा। स्पष्ट प्रश्न ही उद्देश्य पूर्ति में सहायता कर सकते हैं।

3. ***विशेष संकेत अथवा सुझाव न दिये जायें (No specific clues or suggestions):*** ऐसे प्रश्न नहीं बनाए जाने चाहिएं जिनसे कोई विशेष सुझाव या संकेत मिलता हो। प्रश्न सुझावात्मक न होकर विश्लेषणात्मक होने चाहिएं। ऐसे प्रश्नों को भी स्थान नहीं दिया जाना चाहिए जिनके उत्तर बहुत सरल हों। क्योंकि इससे विद्यार्थियों की ज्ञान परीक्षा उचित ढंग से नही हो सकती और मूल्यांकन का उद्देश्य पूरा नहीं होता।

4. ***बहुविकल्पी प्रश्नों के निर्माण में सावधानियां (Precautions in Construction of Multiple Choice Questions):*** बहुविकल्पी प्रश्नों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रश्न से सम्बन्धित 4 विकल्प हों, विकल्प तर्क संगत हों तथा प्रश्नों के निर्देश स्पष्ट एवं संक्षिप्त हों। निर्देश उदाहरण सहित दिये जाने चाहिएं जिससे परीक्षार्थी उन्हें सरलतापूर्वक समझ सकें।

5. ***तुलनात्मक बहुविकल्पी प्रश्नों के निर्माण में सावधानियां (Precautions in Construction of Comparison type Multiple Chocie Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों में दूसरे स्तम्भ में पहले स्तम्भ की अपेक्षा अधिक प्रश्न होने

चाहिएं, इनका प्रयोग ज्ञान तथा ज्ञान, का उपयोग एवं सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता आदि गुणों की जांच करने के लिए किया जाए। ऐसे परीक्षणों से पूर्व विद्यार्थियों को कुछ उदाहरण दिये जाने चाहिएं तथा प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक बिन्दु अथवा कथन का एक ही उत्तर द्वितीय स्तम्भ में होना चाहिए।

6. ***एकान्तर प्रत्युत्तर प्रकार के प्रश्नों के निर्माण में सावधानियां (Precautions in Construction of Alternate Response type Questions):*** इस प्रकार के प्रश्नों का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्नों में 'सदैव', 'कभी–कभी', 'केवल' आदि संकेतों का प्रयोग न किया जाए जिससे परीक्षार्थी किसी प्रकार का अनुमान न लगा सके। सहीकथन लिखे जाने चाहिए। कथन ऐसे हो कि उनका एक ही अर्थ निकलता हो एवं सीमित तथा सरल भाषा में लिखे गए हों। सरल प्रश्नों व कथनों के साथ–साथ कठिन प्रश्न या कथनों की रचना भी की जानी चाहिए जिससे प्रतिभाशाली विद्यार्थी भी अपनी प्रतिभा दिखा सकें।

वस्तुनिष्ठ रूप परीक्षणों के गुण (Merits of Objectives Type Tests)

वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली में निम्नलिखित गुण होते हैं–

1. इस प्रणाली में विद्यार्थियों की तर्क–शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है तथा रटने की आदत कम होती हैं।
2. यह परीक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम की दष्टि से अत्यन्त व्यापक होती है। पाठ्यक्रम एवं प्रश्नों का फैलाव व्यापक होने से विद्यार्थी के ज्ञान का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।
3. इस प्रकार की परीक्षा प्रणाली में अंकन प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ होती है। परीक्षक की मनःस्थिति (mood) एवं विचारों का अंकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
4. इससे अंकन में समय कम लगता है।
5. ये परीक्षाएं अध्यापक को किसी छात्र–विशेष के साथ पक्षपात करने का अवसर प्रदान नहीं करती।
6. इन परीक्षाओं के माध्यम से अधिगम सम्बन्धी कमजोरियों का निदान आसानी से किया जा सकता है।
7. वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं पूर्णतया वैध (Valid) एवं विश्वसनीय (Reliable) होती हैं।
8. इस परीक्षा प्रणाली में परीक्षार्थी को अंकन की वस्तुनिष्ठता (Objectivity) की जांच कर लेने के अवसर मिलते हैं। वह दूसरे परीक्षार्थी की उत्तर–पुस्तिका से मिलान करके अपने अंकों की सन्तुष्टि कर सकता है।
9. इस परीक्षा प्रणाली में विद्यार्थी की निर्णय–शक्ति का उचित रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है।
10. इस परीक्षा–प्रणाली में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने में विद्यार्थियों को न तो अधिक परिश्रम करना पड़ता है और न ही उनका समय अधिक लगता है।
11. वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली से कुशाग्र, औसत एवं मन्द–बुद्धि विद्यार्थियों का विभेदीकरण किया जा सकता है। इन परीक्षाओं की विभेदकारिता क्षमता उच्च स्तर की होती है।
12. इन परीक्षाओं से शिक्षण के उच्च स्तरीय उद्देश्यों की प्राप्ति संभव है।
13. ये परीक्षाएं प्रमापीकृत अथवा मानकीकृत (Standardized) की जा सकती है।
14. इन परीक्षाओं में निरर्थक एवं असम्बन्धित सामग्री को कोई महत्व नहीं दिया जाता।
15. ये परीक्षाएं रटने को कोई महत्व नहीं देती। इनमें समस्त विषय–वस्तु को समझने पर बल दिया जाता है।
16. इन परीक्षाओं के परिणाम बहुत सुगमता से प्राप्त किए जा सकते हैं।

वस्तुनिष्ठ रूप परीक्षणों के दोष (Demerits of Objective Type Tests)

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षा में विद्यार्थियों को अपने विचारों को संगठित करने, तुलना करने तथा व्याख्या करने आदि का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता।
2. ये परीक्षाएं विद्यार्थियों की उपलब्धि के विभिन्न पक्षों–सौन्दर्यात्मक पक्ष, रचनात्मक प्रवत्ति, कल्पना शक्ति, भाषा, शैली, विचार अभिव्यक्ति आदि का मापन नहीं कर सकती।
3. निबन्धात्मक परीक्षाओं की तुलना में इन परीक्षाओं पर अधिक व्यय होता है।
4. इस परीक्षण से विद्यार्थियों की मौलिक अभिव्यक्ति को क्षति पहुंचती है।
5. यह परीक्षण शैक्षिक दष्टि से पूर्णतया अमनोवैज्ञानिक हैं एक ही प्रश्न के कई भ्रामक उत्तर देना विद्यार्थियों के अपरिपक्व मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
6. इन परीक्षणों में नकल करने की संभावना अधिक रहती है।
7. वस्तुनिष्ठ परीक्षण से विद्याार्थियों के ज्ञान की अपेक्षा स्मरणशक्ति का मूल्यांकन होता है।
8. इन परीक्षणों से विद्यार्थियों के बोध–स्तर का उचित रूप से मूल्यांकन करना संभव नहीं होता। विद्यार्थी बिना सोचे–समझे अनुमान लगाकर उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं।
9. इन परीक्षाओं के निर्माण के लिए निर्माता को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
10. इन परीक्षाओं के एक बार मानकीकृत होने से सभी को इनका ज्ञान हो जाता है परिणामस्वरूप, भविष्य में इनका प्रयोग अधिक वैध नहीं रह सकता।
11. इन परीक्षाओं से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का अध्ययन नहीं किया जा सकता।
12. ये परीक्षाएं विद्यार्थियों की कमजोरियों का पता लगाने में सहायता नहीं कर सकती।
13. निबन्धात्मक परीक्षाओं की भांति इन परीक्षाओं में भी प्रश्न पत्रों की रचना करते समय परीक्षक की मनोवत्ति, विचार एवं भावनाओं का प्रभाव पड़ता है।

1.6 ग्रेडिंग का प्रत्यय (Concept of Grading)

हम सभी अंकन प्रणाली से परिचित हैं जिसमें विद्यार्थी द्वारा परीक्षा में दिए गए उत्तरों के आधार पर 100 में से अंक प्रदान किए जाते हैं। ये अंक विद्यार्थी के निष्पादन स्तर को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रणाली को संख्यात्मक अंकन प्रणाली कहा जाता है। संख्यात्मक अंक देने की इस प्रथा में कई विसंगतियां हैं जो अनेक भूलों के कारण और अंक देने के लिए उपयोग की जाने वाली अंतराल मापनी (Interval Scale) की अंतर्निहित सीमाओं के कारण पैदा होती है। संख्यात्मक अंकन प्रणाली में अध्यापक 0 से लेकर 100 तक अंक प्रदान करता है इसीलिए इसे 101 बिन्दु मापनी कहा जाता है। इस मापनी के अनुसार 57 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को 56 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी से श्रेष्ठ समझा जाता है। यह निष्कर्ष असंगत है क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अंकों में अनिश्चितता होती है। विभिन्न परीक्षकों द्वारा एक ही उत्तर पुस्तिका पर दिए गए अंकों में भिन्नता होती है। यहां तक कि एक ही परीक्षक द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिए गए अंक भिन्न हो सकते हैं। इसका कारण यह है क्योंकि विभिन्न परीक्षक एक ही उत्तर को विभिन्न मानकों से या विभिन्न योग्याताओं जैसे ज्ञान, स्मति, बोध आदि को मापने का प्रयत्न करते हैं। इस दिशा में किए गए विभिन्न शोध अध्ययनों के आधार पर यह पता लगाया गया है कि परीक्षकों द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं में अंक देते समय इस बात की 50% संभावना होती है कि अंकन त्रुटि 5 प्रतिशत से अधिक होगी। अर्थात् यदि किसी परीक्षा में किसी विद्यार्थी ने 35 अंक प्राप्त किए हैं तो 50 प्रतिशत स्थितियों में उसके वास्तविक अंक 40 या इससे अधिक हो सकते हैं और 50 प्रतिशत स्थितियों में 30 या उससे कम हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में प्रचलित 101 बिन्दु

मापनी का प्रयोग अर्थहीन है, विशेष रूप से उन परिस्थितियों में जब हम कम से कम पास अंक 35 रखने का या प्रथम श्रेणी के लिए 60 अंक निर्धारित करने का निर्णय करते हैं।

आप सब को इस बात का व्यक्तिगत अनुभव होगा कि विभिन्न विषयों में विद्यार्थियों को दिए जाने वाले अंकों में भिन्नता होती है उदाहरण के लिए गणित में दिए गए अंक 0 से 100 तक की सीमा में होते हैं परन्तु भाषा में दिए गए अंकों की सीमा प्रायः 20–80 होती है। इसका अर्थ यह है कि परीक्षाओं में दिए जाने वाले अंक कच्चे अंक होते हैं, क्योंकि उनमें कई त्रुटियां होती हैं। इनमें से कुछ ऐसी हैं जिनकी पहचान की जा सकती है और बहुत सी ऐसी हैं जिनकी पहचान नहीं की जा सकती। इस प्रकार वे अंक अलग–अलग विद्यार्थियों की वास्तविक योग्यताओं के द्योतक नहीं होते परन्तु फिर भी उनका उपयोग, एकल प्राप्तांक इकाई (single Score Unit) के आधार पर विद्यार्थियों में भेद करने के लिए किया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मिथ्या धारणा के आधार पर, कि अंग्रेजी में प्राप्त 60 अंक गणित में प्राप्त 60 अंकों के समान होते हैं एक विषय के अंक दूसरे विषय के अंकों के साथ उन विषयों की परिधि और भिन्नता को ध्यान किए बिना, जोड़ दिए जाते हैं। यह बात तकनीकी रूप से ठीक नहीं है क्योंकि विभिन्न किस्मों की भूलें, जो अंकन में हो जाती है और इसे दूषित कर देती है, कच्चे अंकों को निरपेक्ष अंकों का रूप लेने से रोकती है।

संख्यात्मक अंकन प्रणाली विद्यार्थियों को परीक्षा में उनके निष्पादन के आधार पर शुद्ध रूप से वर्गीकृत करने में सक्षम नहीं है। इस अयोग्यता के दो कारण हैं पहला, यह कि हम विद्यार्थियों की व्यापक विभिन्नताओं का एक सिंगल यूनिट के आधार पर मूल्यांकन करने का प्रयत्न करते हैं और दूसरा, विद्यार्थियों की उपलब्धि का संख्यात्मक अंकों के रूप में मूल्यांकन करते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव प्रकृति की जटिलत एवं व्यापक विभिन्नताओं को किसी अंतराल मापनी पर सही–सही नहीं मापा जा सकता। इस त्रुटि को कम अवश्य किया जा सकता है। 101 बिन्दु अंकन प्रणाली में 0–100 अर्थात् कुल 101 वर्गीकरण इकाइयाँ हैं। इन इकाइयों में विभिन्न विद्यार्थियों के निष्पादन स्तर के साथ एक से एक समता (One to one) नहीं होती। इसका अभिप्राय यह है कि हमें एक सघन मापनी का प्रयोग करना चाहिए जिसमें निष्पादन स्तरों को प्रदर्शित करने के लिए श्रेणियों की संख्या कम हो। दूसरे शब्दों में विद्यार्थियों को योग्यता–पट्टियों (Bands) में रखा जा सकता है, जो प्राप्तंकों के परास की द्योतक हों। इन योग्यता–पट्टियों की संख्या उन श्रेणियों की संख्या के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकती है जिनका उपयोग हम विद्यार्थियों का वर्गीकरण करने के लिए करना चाहते हैं। यह संख्या 5, 7 या 10 हो सकती है। प्रत्येक योग्यता परास को किसी अक्षर का नाम दिया जा सकता है, जिसे ग्रेड कहा जाता है। 5–बिन्दु मापनी पर ये ग्रेड A, B, C, D एवं E वर्णों द्वारा अथवा O, A, B, C, D द्वारा एवं वं 7– बिन्दु मापनी पर A^+, A, B^+, B, C^+, C एवं D द्वारा प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

ग्रेडिंग के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. ग्रेडिंग से अंकों को दिया जाने वाला महत्व कम हो जाता है।
2. इसमें वितरण का पूरा परास शामिल होता है।
3. यह प्रश्नपत्र की कठिनता के स्तर के प्रभाव को घटता है।
4. इससे विभिन्न विषयों, बोर्डों और वर्षों के बीच विद्यार्थियों के बीच विद्यार्थियों के कार्य–निष्पादन की तुलना किए जाने की व्यवस्था होती है।
5. सापेक्ष ग्रेडिंग की सहायता से ग्रेड मूल्यों की योगशीलता का उपयोग किया जा सकता है।
6. इससे विद्यार्थियों और उनके माता–पिता पर पड़ने वाला परिहार्य दबाव कम हो जाता है।
7. इससे इस तथ्य का समर्थन होता है कि अधिगम समान रूप से वितरित अथवा विभाजित होता है।
8. यह मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक बनाता है।

केन्द्रीय विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं अन्य बहुत से शिक्षा संस्थानों ने इस प्रणाली के अनुसार अपनी कार्य–पद्धति में परिवर्तन किया है। जहां तक संभव हो, अध्यापकों को प्रत्यक्ष ग्रेड देने चाहिए। जब तक सभी अध्यापक एवं शिक्षा संस्थान

प्रत्यक्ष ग्रेड प्रणाली को पूर्ण रूप से न अपना लें, वितरण सारणी (Distribution table) की सहायता से अध्यापकों द्वारा दिए गए अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करना चाहिए। संख्यात्मक अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करने के लिए निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जा सकता है–

किसी भी बोड्र अथवा विषय में दिए गए उच्चतम अंकों को नोट करें एवं इसे 'O' ग्रेड दें। फेल अंकों को 'E' एवं F ग्रेड दें और बचे हुए अंकों को समान अन्तरालों के आधार पर बांटें। उदाहरण के लिए–

1. यदि भौतिक विज्ञान शिक्षण में पास अंक 35 हैं और पिछले तीन वर्षों में भौतिक विज्ञान में प्राप्त उच्चतम अंक 75 है तो ग्रेड निर्धारण इस प्रकार होगा–

67 या अधिक	**O (Outstanding)**	
69–66	A	
51–58	B	
43–50	C	
35–42	D	
E		
24 या कम	F	Failed

2. यदि पिछले तीन वर्षों में गणित में प्राप्त उच्चतम अंक 99 है तो अंक वितरण एवं ग्रेड निर्धारण इस प्रकार होगा–

87 या अधिक	**O (Outstanding)**	
74–86	A	
61–73	B	
48–60	C	
35–47	D	
25–34	E	
24 या कम	F	Failed

आंतरिक एवं बाह्य परीक्षाओं में दिए गए ग्रेड अंक तालिका में अलग–अलग स्थानों पर प्रदर्शित किए जाने चाहिए। प्रत्येक विषय में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त ग्रेड के साथ ग्रेड बिन्दु मध्यमान (Grade Point Average) भी प्रदर्शित करना चाहिए। इससे किसी भी वर्ग से सम्बन्धित विद्यार्थियों में विभेद करने से सुविधा होती है। प्रत्येक बोर्ड अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रेड बिन्दु मध्यमान निर्धारित कर सकता है। किसी भी विषय में कम से कम निर्धारित ग्रेड बिन्दु मध्यमान 2.00 होना चाहिए।

$$\text{ग्रेड बिन्दु मध्यमान} = \frac{\text{ग्रेड बिन्दु} + \text{ग्रेड बिन्दु}}{2}$$

ग्रेड बिन्दु से अभिप्रपय प्रत्येक ग्रड को दिए गए बिन्दुओं से है। ये बिन्दु इस प्रकार हैं–'O'–6, 'A'–5, 'B'–4, 'C'–3, 'D'–2, 'E'–1 एवं 'F'–O

ग्रेड प्रदान करने की विधि

प्रश्न संख्या	1	2	3	4	5	कुल
ग्रेड	O	A	A	O	B	
ग्रेड बिन्दु (Grade Points)	6	5	5	6	4	26

ग्रेड बिन्दु मध्यमान =

सकल ग्रेड = A

इसी विधि की सहायता से हम सभी विषयों में प्राप्त ग्रेड अथवा ग्रेड बिन्दुओं का मध्यमान एवं सकल ग्रेड की गणना कर सकते हैं।

ग्रेड प्रणाली को पूरी तरह से अपनाने से पूर्व निम्नलिखित तैयारियां करनी आवश्यक है–

I. विश्वविद्यालय/बोर्ड के पिछले तीन वर्षों के प्रत्येक विषय के परिणामों का क्रमबद्ध विश्लेषण करके सांख्यिकीय मात्रकों जैसे–मध्यमान (Mean), प्रमाणिक विचलन (Standard Deviation), प्रमाणिक त्रुटि (Standard Errors), विश्वसनीयता गुणाक (Reliability coefficients) आदि का पता लगाना चाहिए।

II. प्रत्येक विषय में अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करने के लिए मानक सारणियां बनानी चाहिएं और अंतरिम उपाय (Interim measure) के रूप में प्रयेाग करना चाहिए।

III. प्रत्यक्ष ग्रेडिंग (Direct Grading) प्रारम्भ करने से पूर्व अध्यापकों एवं दूसरे सम्बन्धित व्यक्तियों को इस क्षेत्र में प्रशिक्षण देना चाहिए।

IV. ग्रेडिंग प्रणाली से सम्बन्धित विवरण एवं सूचनाएं और इनकी उपयोगिता का अध्यापकों, छात्रों एवं अभिभावकों को ज्ञान करवाना चाहिए।

3. ***प्रयोगात्मक परीक्षाएं (Practical Examinations):*** भौतिक–विज्ञान में मौखिक और लिखित परीक्षाओं के अतिरिक्त प्रयोगात्मक परीक्षाएं भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये परीक्षाएं ऐसे उप–विषयों के शिक्षण में अधिक लाभदायक होती हैं जिनमें किसी भी प्रकार का प्रयोग किया जाता हैं

अपनी प्रगति जांचिए

(i) मूल्यांकन और मापन में अंतर स्पष्ट करो।

(ii) मूल्यांकन की विभिन्न प्रविधियों के नाम बताओ।

(iii) ग्रेडिंग प्रणाली अंकन प्रणाली से किस प्रकार श्रेष्ठ है?

1.7 सारांश

मापन का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ हुआ जबकि मूल्यांकन शिक्षा में अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा है। मापन का क्षेत्र संकुचित होता है जबकि मूल्यांकन का क्षेत्र विस्तत होता है। मापन भौतिक एवं व्यावहारिक होता है। मापन में वस्तु या व्यक्ति के गुण को ज्ञात करके परिमाण में परिवर्तित किया जाता है। मापन की विधियां सीमित होती है।

मूल्यांकन वह गुणात्मक एवं परिमाणात्मक प्रक्रिया है जिससे वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया के गुणों को ज्ञात करके उसका मूल्य निर्धारित किया जाता हैं मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया है। इसके मुख्य तीन चरण होते हैं–शिक्षण, उद्देश्यों का निर्धारण, अधिगम अनुभवों का सजन एवं व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन। मूल्यांकन में विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है इसीलिए मूल्यांकन में कई परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जैसे–रेटिंग, निरीक्षण, चेक–लिस्ट, साक्षात्कार, आत्मकथा, लिखित परीक्षण, मौखिक परीक्षण आदि। मूल्यांकन शिक्षण उद्देश्यों में स्पष्टता, पाठ्यक्रम में परिवर्तन, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने और मार्गदर्शन को आधार प्रदान करने में सहायक है।

मॉडल उत्तर

1. कपया 1.4 में देखें

2. कपया 1.5 में देखें

5. कपया 1.6 में देखें

1.8 मुख्य शब्द

मापन—वह प्रक्रिया जिसमें चल राशि को परिमाण में बदल दिया जाता है।

मूल्यांकन—वह गुणात्मक एवं परिमाणात्मक प्रक्रिया जिसमें व्यक्ति, वस्तु, प्रक्रिया आदि में गुणों को ज्ञात करके उनका मूल्य निर्धारित किया जाता है।

ग्रेडिंग—विद्यार्थी की योग्यता के आधार पर उसे अंकों के स्थान पर ग्रेड प्रदान करना।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, आर०ए०	'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993
पाण्डेय, कामता प्रसाद,	'शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968
गुप्ता, रमेशचन्द्र एवं भट्ट, चन्द्रशेखर	'शिक्षा में मापन और मूल्यांकन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाश, आगरा, 1974
अस्थाना, विपिन	'मनोविज्ञान व शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन' विनोद पुस्तक मंदिर, 1990

इकाई-V

अध्याय-2: निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन (Formative and Summative Evaluation)

उद्देश्यः

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

- निर्माणात्मक मूल्यांकन का वर्णन कर सकें।
- संकलनात्मक मूल्यांकन का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 निर्माणात्मक मूल्यांकन
2.3 संकलनात्मक मूल्यांकन
2.4 निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर
2.5 सारांश
मॉडल उत्तर
2.6 मुख्य शब्द
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

मूल्यांकन एक सतत् एवं व्यापक प्रक्रिया है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्यापक अनुदेशन के दौरान एवं अनुदेशन की समाप्ति पर विद्यार्थियों की निष्पत्ति का मूल्यांकन करते हैं। प्रायः एक उपविषय अथवा इकाई की समाप्ति के पश्चात अध्यापक कक्षा का परीक्षण करते हैं। इस तरह छोटे–छोटे अन्तरालों के पश्चात् परीक्षण करने का उद्देश्य विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति ज्ञात करना होता है। इसकी सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों को पुनर्वलन (Feedback) प्रदान करता है। इस प्रकार के मूल्यांकन को निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation) कहा जाता है और जिन परीक्षणों का उपयोग इसमें किया जाता है उन्हें निर्माणात्मक परीक्षण कहा जाता है। अध्यापक पूरे कोर्स की समाप्ति के पश्चात भी विद्यार्थियों का मूल्यांकन करते हैं। इसे संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation) कहा जाता है और इस मूल्यांकन में प्रयोग किए गए परीक्षणों को संकलनात्मक परीक्षण (Summative tests) कहा जाता है।

2.2 निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation)

शिक्षण तथा अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण में पाठ्यवस्तु को इकाइयों में बांट कर शिक्षण किया जाता है। प्रत्येक इकाई की समाप्ति पर अध्यापक विद्यार्थियों का मूल्यांकन करता है। यह मूल्यांन प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रत्येक दो सप्ताहों में एकबार या मासिक रूप से किया जाता है। यह मूल्यांकन विद्यार्थी की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाने, अधिगम की प्रगति का परिवीक्षण करने (monitoring) अधिगम की कठिनाइयों का पता लगाने एवं यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि अभिप्रेरित शिक्षा किस सीमा तक प्राप्त की गई है। निर्माणात्मक मूल्यांकन में विद्यार्थी को उसके द्वारा प्राप्त अधिगम की मात्रा, गुण, गति आदि से सम्बन्धित सूचना प्रदान की जाती है जिससे उसे पुनर्बलन प्राप्त हो। यह पुनर्बलन विद्यार्थी के अधिगम में सम्मिलित ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक विशेषताओं के संदर्भ में देखा

जाता है। निर्माणात्मक मूल्यांकन अध्यापक को भी यह पुनर्बलन प्रदान करता है कि इकाई का कौन सा भाग स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ाया गया है और कौन से उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं किये गए हैं। यह पुनर्बलन ही निर्माणात्मक मूल्यांकन को मूल्यांकन की उपयोगी विधि बनाता है।

इस प्रकार निर्माणात्मक मूल्यांकन पुनर्बलन को द्विउपयोगी बनाने में सहायक है। पहला, यह विद्यार्थियों की अधिगम–प्रगति का परिवीक्षण करने में और दूसरा अध्यापकों की शिक्षण–कार्यक्षमता के विकास में सहायक है। विद्यार्थी चाहे स्वयं की गति से अधिगम करें अथवा अनुमानित गति से, पुनर्बलन विद्यार्थियों के अधिगम की प्रगति की जांच करता है। इस संदर्भ में उपलब्धि का मानक स्तर निर्धारित किया जाता है जिससे विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर की तुलना की जाती है। निर्माणात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि दिए गए अधिगम कार्य पर किस सीमा तक अधिकार (Degree of Mastery) प्राप्त कर लिया गया है और कार्य के किस भाग पर अधिकार प्राप्त नहीं किया गया है। निर्माणात्मक मूल्यांकन में अंकों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है और ग्रेड को थोड़ा महत्व दिया जाता है। इस प्रकार इसमें ग्रेड या सार्टिफिकेट प्रदान करने की अपेक्षा अधिगमकर्त्ता एवं अध्यापक की इस प्रकार सहायता करने पर बल दिया जाता है जिससे अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाया जा सके।

अभिक्रमित अधिगम में निर्माणात्मक मूल्यांकन का विशेष महत्व होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक फ्रेम की समाप्ति के साथ ही अधिगमकर्त्ता का मूल्यांकन किया जाता है। इससे अनुदेशन के दौरान अधिगमकर्त्ता की अधिगम प्रगति का परिवीक्षण किया जाता है।

2.3 संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

संकलनात्मक मूल्यांकन से अभिप्राय कोर्स की समाप्ति के पश्चात् किये जाने वाले समग्र मूल्यांकन से है। संकलनात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य अनुदेशन के दौरान अधिगमकर्त्ता की अधिगम प्रगति का परिवीक्षण करने की अपेक्षा कोर्स की समाप्ति के पश्चात् विद्यार्थियों की समग्र निष्पति की जांच करना है। इसका निर्माण यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि शिक्षण एवं अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई है। संकलनात्मक मूल्यांकन का दूसरा मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को ग्रेड एवं प्रमाणपत्र प्रदान करना होता है जिससे उन्हें अगली कक्षा में उन्नत (Promot) किया जा सके। इसकी सहायता से विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है और विभिन्न उद्देश्यों के लिए उनका चयन भी किया जा सकता है। यह मूल्यांकन अपेक्षाकृत लम्बे समय के बाद किया जाता है। जैसे छः महीने या एक वर्ष पश्चात्।

संकलनात्मक मूल्यांकन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों का निर्धारण शिक्षण उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है परन्तु इनमें मुख्यतः अध्यापक–निर्मित उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि का प्रमाण पत्र देना होता है। यह अनुदेशन की प्रभावशीलता और कोर्स के उद्देश्यों की शद्धता का परीक्षण करने सम्बन्धी सूचना भी प्रदान करता है।

संकलनात्मक मूल्यांकन में न्यादर्श सीमाएं होती हैं इसमें प्रश्नों अथवा परीक्षण–पदों (no. of item) अधिक होती है और इसीलिए इसमें न्यादर्श त्रुटियां (Sampling errors) होने की संभावना अधिक होती है। अतः संकलनात्मक मूल्यांकन के लिए विषय वस्तु एवं योग्यताओं के न्यादर्श लेने की प्रक्रिया में सावधानी की आवश्यकता होती है। इसके लिए विशिष्टताओं की सारणी (Table of Specifications) का उपयोग किया जाता है और विषय वस्तु की वैधता पर विशेष बल दिया जाता है।

2.4 निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर (Differences between Formative and Summative Evaluation)

1. निर्माणात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य किसी दिए गए अधिगम कार्य में प्रवीणता की सीमा ज्ञात करना है और कार्य के वह भाग जिसमें प्रवीणता नहीं प्राप्त की गई है, का भी पता लगाना है। इसीलिए इसमें ग्रेडिंग या सार्टिफिकेट प्रदान करने की अपेक्षा विद्यार्थी और अध्यापक को अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने में सहायता करने पर अधिक बल दिया जाता है। संकलनात्मक मूल्यांकन में अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने की अपेक्षा कोर्स की समाप्ति के पश्चात अधिगम

में हुई वद्धि को ज्ञात करने और उसके आधार पर ग्रेड और सार्टिफिकेट प्रदान करने पर विशेष महत्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए–भौतिकी (विद्युत और चुम्बकत्व) में एक सैमिस्टर की समाप्ति पर किए गए संकलनात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि विद्यार्थियों ने इससे सम्बन्धित सिद्धांतों और प्रत्ययों को किस सीमा तक सीखा है और इसका दूसरे क्षेत्रों में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है दूसरी ओर इस विषय से संबंधित एक इकाई की समाप्ति पर किए गए निर्माणात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि क्या विद्यार्थी ने चुम्बकत्व से सम्बन्धित सिद्धांतों को परिभाषित करना, अनुवाद करना, व्याख्या करना और दैनिक जीवन में उपयोग करना सीखा है। यदि विद्यार्थी में ऊपरलिखित क्षमताओं का विकास नहीं हुआ है तो उसे सहायक सामग्री और संसाधन उपलब्ध करवाए जाते हैं ताकि वह अपनी कमियों को दूर कर सकें।

2. निर्माणात्मक मूल्यांकन समान और छोटे अंतरालों के पश्चात किया जाता है जबकि संकलनात्मक मूल्यांकन अपेक्षाकृत काफी लम्बे समय के पश्चात किया जाता है। उदाहरण के लिए सोलह सप्ताहों में पूरे होने वाले एक कोर्स के लिए निर्माणात्मक मूल्यांकन प्रति सप्ताह के अन्त में किण जाएगा और समग्र मूल्यांकन सोलहवें सप्ताह के अंतिम दिन किया जाएगा।

3. निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट करने 'सामान्यीकरण स्तर' सबसे अधिक सहायता करता है जहां निर्माणात्मक मूल्यांकन में विद्यार्थी की किसी दिए गए सिद्धांत को किसी दी गई नई परिस्थिति में प्रयोग करने की योगयता की जांच की जाती है वहीं संकलनात्मक मूल्यांकन में किसी विद्यार्थी के कौशल के विकास और विभिन्न परिस्थितियों में जांच की जाती है। ये विभिन्न परिस्थितियां विभिन्न सिद्धांतों का एकीकृत या समन्वीकृत रूप प्रस्तुत करती है। इसी कारण संकलनात्मक मूल्यांकन का नियोजन करते समय अध्यापक को विषय–वस्तु और योग्यताओं को व्यापक एवं समन्वीकृत रूप में व्यवस्थित करना चाहिए। इस मूल्यांकन में परीक्षण की वैधता भी निर्धारित की जानी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) निर्माणात्मक मूल्यांकन पर नोट लिखो।

(ii) संकलनात्मक मूल्यांकन से आप क्या समझते हो।

2.5 सारांश

मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है। कक्षा शिक्षण में एक उपविषय अथवा इकाई की समाप्ति अध्यापक विद्यार्थियों का परीक्षण करते हैं। इस प्रकार छोटे–छोटे अंतरालों के पश्चात् किए गए मूल्यांकन को निर्माणात्मक मूल्यांकन कहा जाता है। यह मूल्यांकन विद्यार्थी की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाने, उनकी अधिगम–प्रगति का परिवीक्षण करने, अधिगम सम्बन्धी कठिनाईयां ज्ञात करने एवं अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करने के लिए किया जाता है। निर्माणात्मक मूल्यांकन में अंकों को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

मॉडल उत्तर

(i) कृपया 2.2 में देखें

(ii) कृपया 2.3 में देखें

2.6 मुख्य शब्द

निर्माणात्मक मूल्यांकन–वह मूल्यांकन जो पाठ्य वस्तु की छोटी इकाई के समाप्त होने के पश्चात् अथवा थोड़े समय के पश्चात् किया जाता है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, आर०ए० 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993

पाण्डेय, कामता प्रसाद, 'शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968

इकाई-V
अध्याय-3: निदानात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

– निदानात्मक मूल्यांकन का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

3.1 प्रस्तावना
3.2 निदानात्मक मूल्यांकन
3.3 निदानात्मक मूल्यांकन के उद्देश्य
3.4 सारांश
मॉडल उत्तर
3.5 मुख्य शब्द
3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा में निदान (Diagonisis) का अर्थ है, विद्यार्थी के अधिगम सम्बन्धी कठिन स्थलों का पता लगाना। जिस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में निदान एक महत्वपूर्ण क्रिया है उसी प्रकार शिक्षा एवं मूल्यांकन में भी निदान का महत्वपूर्ण स्थान है। चिकित्सा में चिकित्सक निदान का कार्य अनेक प्रकार के उपकरणों जैसे थर्मामीटर, माइक्रोस्कोप, एक्स–रे आदि की सहायता से करता है परन्तु शैक्षिक मूल्यांकन के क्षेत्र में शिक्षक यह कार्य उपलब्धि परीक्षाओं (Achievement tests) एवं बुद्धि परीक्षाओं (Intelligence tests) की सहायता से करता है। निदान हमें विद्यार्थी की क्षमताओं एवं कमजोरियों का बोध कराता है। निदान किसी भी प्रकार का क्यों न हो, विशिष्ट ही होता है। शैक्षिक निदान की यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है। आजकल शिक्षा में निदानात्मक मूल्यांकन को विशेष महत्व दिया जा रहा है। इसका आधार मुख्यतः बाल–केन्द्रित (Child-centered teaching) एवं परीक्षण प्रक्रियाओं (Testing processes) का सूत्रपात है।

4.2 निदानात्मक मूल्यांकन–अर्थ एवं महत्व (Diagnostic Evaluation-Meaning and Importance)

निदानात्मक मूल्यांकन शैक्षिक मूल्यांकन का वह आवश्यक अंग है जिसके प्रचुर प्रयोग द्वारा शिक्षा में गुणात्मक प्रगति लायी जा सकती है। निर्माणात्मक अथवा निर्मायी (Formative) एवं संकलनात्मक अथवा समग्र मूल्यांकन (Summative Evaluation) द्वारा किसी विशिष्ट विषय–वस्तु अथवा अधिगम अनुभव के उपरान्त अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु निदानात्मक मूल्यांकन उस विशिष्ट विषय–वस्तु अथवा अधिगम–अनुभव के अर्जित ज्ञान की विशिष्टता एवं कमी का मूल्यांकन करता है। इन परीक्षाओं से विद्यार्थियों के स्तर का पता नहीं लगाया जाता बल्कि विद्यार्थी किसी विषय को समझने में क्या कठिनाई अनुभव कर रहा है, इस कठिनाई का क्या कारण हो सकता है तथा यह कठिनाई किस प्रकार दूर की जा सकती है आदि प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए अध्यापक को निदानात्मक मूल्यांकन की आवश्यकता

पड़ती है। निदानात्मक मूल्यांकन का सम्बन्ध विद्यार्थियों की व्यक्तिगत योग्यताआं एवं क्षमताओं की जांच से ही नहीं अपितु उनकी क्षमताओं, कठिनाइयों एवं कमियों के उपचार से भी है। विशिष्ट बालकों की कमियों एवं कठिनाइयों को दूर करने के लिए अध्यापक अपनी शिक्षण विधि में परिवर्तन लाता है जिसे उपचारात्मक शिक्षण कहा जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन के आधार पर पठित विषय–वस्तु की सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई में विद्यार्थी की इकाईगत विशिष्टता एवं कमियां परिलक्षित होती है। इस प्रकार निदानात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विशिष्ट विषय–वस्तुगत अधिगम इकाई में प्राप्त गुणों के आधार पर विद्यार्थी को शैक्षणिक विकास, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत परिष्कार तथा अध्यापक को शिक्षण प्रक्रिया में समुचित सुधार हेतु परामर्श प्रदान करना है। इस प्रकार के मूल्यांकन में सम्पूर्ण प्राप्तांक (Total Scores) का कोई महत्व नहीं होता अपितु केवल उन्हीं अंश प्राप्तांकों (Part Scores) का महत्व होता है जो व्यक्ति की हीनताओं, कमियों एवं कठिनाइयों को इंगित करते हैं। निदानात्मक मूल्यांकन का उपयोग किसी एक विषय की कठिनाई को जानने के लिए स्वतन्त्र रूप से किया जा सकता है अथवा एक से अधिक विषयों में कठिनाई ज्ञात करने के लिए इसका उपयोग परीक्षण माला (Battery) के रूप में किया जा सकता है।

ब्रुकनर एवं मेलबी ने निदानात्मक मूल्यांकन की उपयोगिता पर बल देते हुए लिखा है ''निदानात्मक मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य किसी विषय–वस्तु में विद्यार्थी की विशिष्ट कमजोरी को प्रकाश में लाना है जिससे कमजोरी के कारणों की छानबीन कर सुधार हेतु उपचारात्मक कदम उठाए जा सके।''

निदानात्मक मूल्यांकन अध्यापकों एवं शिक्षाशास्त्रियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके ज्ञान के अभाव में अध्यापक सदैव असफल रहेगा तथा अपने अमूल्य समय को बर्बाद करेगा। निदानात्मक मूल्यांकन के अभाव में एक अध्यापक किसी संप्रत्यय को समझाने के लिए अपना समय बार–बार खर्च करता है परन्तु हो सकता है विद्यार्थी 'उस संप्रत्यय को बार–बार बताने पर भी न समझ पाएं जैसे–भौतिक विज्ञान में ऊर्जा, शक्ति एवं समय में सम्बन्ध स्थापित करना। इसका कारण यह हो सकता है कि विद्यार्थी ऊर्जा एवं शक्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते अथवा गणित के सामान्य सिद्धान्त नहीं जानते। यदि ऐसा है तो अध्यापक कितनी भी बार विषय की पुनरावत्ति करें, विद्यार्थी प्रत्यय को पूर्ण रूप से नहीं समझ पायेंगे। ऐसी स्थिति में अध्यापक को विद्यार्थियों की कमजोरियों का निदान करने का प्रयत्न करना चाहिए तभी विद्यार्थी प्रत्यय का स्पष्ट रूप से बोध कर सकेंगे।

3.3 निदानात्मक मूल्यांकन के उद्देश्य (Purposes of Diagnostic Evalution)

निदानात्मक मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली बनाने में सहायता करना।
2. अध्यापक को अपनी अध्यापन प्रक्रिया में समुचित सुधार हेतु परामर्श प्रदान करना।
3. विद्यार्थी को विषय सम्बन्धी कमियों (Weakness), हीनताओं (deficiencies) तथा कठिनाइयों (dificulties) की जानकारी प्रदान करना।
4. शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों को प्रभावशाली बनाना।
5. विभिन्न विषय सम्बन्धी विशेषताओं एवं कमियों के आधार पर पाठ्यपुस्तकों अथवा पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाना और उन्हें विद्यार्थियों की दष्टि से अधिक उपयोगी बनाना।
6. उपलब्धि परीक्षा के निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के चयन में सहायता करना।
7. उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना।

निदानात्मक मूल्यांकन के लिए जिन परीक्षणों (Tests) का प्रयोग किया जाता है उन्हें निदानात्मक परीक्षण (diagnostic Tests) कहा जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि यह किसी विशिष्ट विषय की सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई में विद्यार्थी की इकाईगत विशिष्टता अथवा कमी या कमजोरी को पहचानता है। निदानात्मक मूल्यांकन व्यक्ति–केन्द्रित के अतिरिक्त समूह–केन्द्रित भी हो सकता है। समूह–केन्द्रित निदानात्मक मूल्यांकन में किसी विशिष्ट

समूह की सामूहिक विशिष्ट त्रुटियों (Specific group errors) अथवा कमजोरियों का पता लगाया जाता है और उपचारात्मक शिक्षण द्वारा उन कमियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) निदानात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(ii) निदानात्मक मूल्यांकन का अध्यापक के लिए क्या महत्व है?

3.4 सारांश

निदानात्मक मूल्यांकन का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में विशेष महत्व है। निर्माणात्मक तथा संकलनात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य किसी विशिष्ट विषय–वस्तु अथवा अधिगम–अनुभव के उपरान्त अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन करना तथा पुर्नवलन प्रदान करना होता है जबकि निदानात्मक मूल्यांकन उस विशिष्ट वस्तु अथवा अधिगम–अनुभव के अर्जित ज्ञान की विशिष्टता एवं कमी का पता लगाने में सहायता करता है। इस मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों की योग्यताओं, क्षमताओं, कमजोरियों तथा कठिनाइयों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है और उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

मॉडल उत्तर

i. निदानात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की क्षमताओं, योग्यताओं एवं अधिगम–सम्बन्धी कठिनाईयों को ज्ञात करके उनसे सम्बन्धित उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना है।

ii. निदानात्मक मूल्यांकन की सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों की कमजोरियों एवं कठिनाइयों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करके उनके अनुरूप शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आयोजन कर सकता है और इन कमियों को दूर कर सकता है।

3.5 मुख्य शब्द

निदानात्मक मूल्यांकन–वह मूल्यांकन जिसकी सहायता से विद्यार्थियों की विषय संबंधी कठिनाईयों की जानकारी प्राप्त करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, आर०ए० 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993

पाण्डेय, कामता प्रसाद, 'शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968

इकाई-V

अध्याय-4: एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण (Characteristics of a Good Achievement Test)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

– एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपलब्धि परीक्षण की विशेषताएं

4.3 सारांश

मॉडल उत्तर

4.4 मुख्य शब्द

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षाओं का प्रचलन लम्बे समय से है। परीक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की उपलब्धि या निष्पत्ति की जांच करना होता है। हमारी आधुनिक परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। इससे विद्यार्थियों की उपलब्धि का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। ऐसा देखा गया गया है कि विद्यार्थी वर्ष के अन्तिम समय में पढ़ कर ही अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं और सत्र/वर्ष भर किए गए कार्यों की परीक्षा में विशेष महत्व नहीं दिया जाता। इसका मुख्य कारण प्रश्न पत्रों के निर्माण एवं उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन की प्रक्रिया में दोष होना है। यदि प्रश्न पत्रों अर्थात् उपलब्धि परीक्षणों का निर्माण उचित रूप से किया जाए तो इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में क्या गुण होने चाहिए प्रस्तुत अध्याय में हम इसका अध्ययन करेंगे।

4.2 उपलब्धि परीक्षण की विशेषताएं (Characteristics of Achievement Test

उपलब्धि परीक्षण से अभिप्राय ऐसे परीक्षण से है जो एक निश्चित कार्य क्षेत्र में अर्जित ज्ञान का मापन करता है। विभिन्न विषयों मे अर्जित ज्ञान का तथा वर्तमान योग्यता का मापन भी इनकी सहायता से किया जाता है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. ***वस्तुनिष्ठता (Objectivity):*** एक परीक्षा में वस्तुनिष्ठता दो रूपों में देखी जा सकती है। एक, परीक्षा के अंक प्रदान करने में; दूसरा परीक्षा के विभिन्न प्रश्नों का अर्थ उस व्यक्ति द्वारा प्रदान करने में, जो परीक्षा दे रहा है। किसी भी परीक्षण का वस्तुनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसका प्रभाव विश्वसनीयता एवं वैधता दोनों पर ही पड़ता है। वास्तव में जो परीक्षा वस्तुनिष्ठ नहीं होती, वह वैध तथा विश्वसनीय भी नहीं हो सकती। एक पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह है जिसमें प्रत्येक निरीक्षणकर्त्ता किसी व्यक्ति के मूल्यांकन के सम्बन्ध में एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे, जिसके प्रश्नों की व्याख्या या जिनके अर्थ भिन्न–भिन्न प्रकार से न किये जा सकते हों, जिनके प्रश्नों

के उत्तरों पर अंक देते समय विभिन्न व्यक्तियों में मतभेद न होता हो। संक्षेप में, वह परीक्षा वस्तुनिष्ठ कहलाती है जिस पर परीक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव नहीं पड़ता है। एक बार अंकन कुंजी (Scoring key) बन जाने के बाद यह प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए कि प्रश्न अस्पष्ट तो नहीं है अथवा उनके उत्तर के सम्बन्ध में अनिश्चितता है। उत्तर पुस्तिका का मूल्यांकन कोई भी करे, परीक्षार्थी को सदेव उतने ही अंक मिलने चाहिए। निबन्धात्मक परीक्षाओं में ऐसा नहीं होता तथा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते समय, परीक्षक के व्यक्तिगत निर्णय द्वारा प्रदत्त अंक प्रभावित होते हैं। परीक्षार्थी द्वारा प्रश्नों को स्पष्ट रूप से समझने अर्थात् उनका वस्तुनिष्ठ निर्वचन (Interpretation) करने के लिए प्रश्नों की रचना सुव्यवस्थित होनी चाहिए। प्रश्न द्विअर्थी (Ambiguous) नहीं होने चाहिएं, वे व्याकरण की दष्टि से शुद्ध होने चाहिएं एवं उनमें स्थिरता होनी चाहिए।

2. ***विश्सनीयता (Reliability):*** विश्वसनीयता का अर्थ है–एकरूपता (Consistency)। एक अच्छी परीक्षण में विश्वसनीयता होती है अर्थात् परीक्षा द्वारा होने वाला मापन एकरूप होता है। जब किसी परीक्षण को विभिन्न अवसरों पर प्रशासित करके प्राप्त किए गए फलांक या निष्कर्ष एक जैसे हों तो उस परीक्षण को विश्वसनीय कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यदि किसी परीक्षा के परिणाम पुर्नपरीक्षण के पश्चात् समान परिस्थितियों में एक समान बने रहते हैं तो उस परीक्षा को विश्वसनीय माना जाता है। इस प्रकार किसी परीक्षा की विश्वसनीयता परीक्षा मे न्यादर्श की मात्रा (Sample size) तथा अंकों की वस्तुनिष्ठता पर निर्भर करती है। विश्वसनीयता का संबंध मापन की यथार्थता से है। किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक मापन में कोई त्रुटि न हो, ऐसा असंभव है जैसे–तापमान के बढ़ने और घटने से धातु की छड़ फैलती और सिकुड़ती है। अतः यथार्थ मापन तभी संभव है जब तापमान स्थिर रहे। इसके अतिरिक्त किसी भी परीक्षा के परिणाम अनेक कारकों से प्रभावित होते हैं जिससे परिणामों में एकरूपता नहीं रह पाती। इस प्रकार कोई पद या परीक्षण तभी विश्वसनीय माना जाता है जब वह विद्यार्थी को सही उपलब्धि अथवा स्तर का ज्ञान करवाये। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता जानने के लिए परीक्षण–पुर्नपरीक्षण विधि (Test-Retest Method), समान्तर प्रतिरूप विधि (Parallel Form Method), अर्द्ध–विच्छेद विधि (Split-Half Method) अथवा युक्ति–युक्त, पद–साम्य विधि (Rational Equivalence Method) का प्रयोग किया जाता है।

3. ***वैधता (Validity):*** वैधता का तात्पर्य है 'अभिप्राय–सापेक्षता' अर्थात् यदि कोई परीक्षण वही मापन करता है जिसका मापन करने के लिए उसका निर्माण किया गया है तो वह परीक्षण वैध कहलाता है। वैधता किसी भी परीक्षण का एक अत्यन्त आवश्यक गुण है क्योंकि जब तक कोई परीक्षण वैध नहीं है, वह उपयोगी नहीं हो सकता। ग्रीन, जोर्जन्सन तथा गर्बरिच के अनुसार ''वैधता का अर्थ वह कार्य कुशलता है जिससे कोई परीक्षण उस तथ्य का मापन करता है जिसके लिए वह बनाया गया है।''

"Validity means that efficiency by which any test measures the fact for which it has been made".

–Green, Jorgeson & Gerberich

प्रत्येक परीक्षण का निर्माण किसी न किसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर किया जाता है। यदि कोई परीक्षण किसी श्रेणी अथवा स्तर के विद्यार्थियों के लिए, उस विषय अथवा विशेषता का ही मापन करता है जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है तो वह परीक्षण वैध (Valid) माना जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई परीक्षण विद्यार्थी की चित्रांकन योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए बनाया गया है और उपयोग में लाने पर वह विद्यार्थी की इसी योग्यता का मूल्यांकन करता है तो उसे वैध कहा जाएगा। कोई भी परीक्षण सार्वभौमिक (Universal) नहीं हो सकता। एक परीक्षण केवल उन्हीं परिस्थितियों में वैध होता है जिनमें कि उसका प्रमापीकरण किया गया है और वह केवल उसी समग्र (Population) के लिए उपयुक्त होता है जिसके न्यादर्श (Sample) पर उसका प्रमापीकरण किया गया है। उदाहरण के लिए दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया परीक्षण सातवीं या आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अनुपयुक्त होगा। इसलिए वैधता एक अच्छे परीक्षण का विशिष्ट गुण है न कि सामान्य गुण परीक्षण की वैधता का परीक्षण के उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

4. ***व्यापकता (Comprehensiveness):-*** व्यापकता से अभिप्राय किसी परीक्षण में पाठ्यक्रम में सम्मिलित तथ्यों में से अधिक से अधिक का समावेश होने से है। जितना अधिक कोई परीक्षण पाठ्यक्रम एवं उसके विभिन्न अंशों एवं क्षेत्रों से सम्बन्धित होता है उतना ही व्यापक होता है। व्यापकता का अनुमान किसी सांख्यिकीय सूत्र के आधार पर भी नहीं लगाया जा सकता। परीक्षण की व्यापकता के बारे में निर्णय करना स्वयं निर्माता की सूझ–बूझ, उनकी कुशाग्र बुद्धि एवं परीक्षण–निर्माण की क्षमता पर निर्भर है। माइकेल्स (Micheals) ने व्यापकता की तुलना केक की परतों से की है। यदि कोई हमसे केक के गुणों के बारे में पूछे तो हम केवल केक की परतों की मात्रा देखकर ही उत्तर नहीं दे सकते। इसका स्वाद चखना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। परन्तु पूरा केक खाकर अथवा केक की सभी परतों का स्वाद लेकर हम निर्णय करें, यह भी उचित नहीं होगा। अतः किन्हीं दो तीन परतों को चखकर हम अपना निर्णय दे देंगे। इस प्रकार किसी परीक्षण की व्यापकता के लिए हम पाठ्यक्रम में सम्मिलित सभी अंशों को न लेकर कुछ का न्यादर्श ही ले लेंगे। किसी परीक्षण को व्यापक बनाने के लिए परीक्षण के उद्देश्यों एवं परिणामों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

5. ***विभेदकारिता (Discriminativity):-*** विभेदकारी परीक्षण से अभिप्राय उस परीक्षण से है जो उच्च योग्यता एवं निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों में भेद कर सकें। इस उद्देश्य से परीक्षण में कुछ सरल प्रश्नों एवं कुछ जटिल प्रश्नों का निर्माण किया जाता है जिससे उन्हें प्रतिभाशाली एवं कमजोर दोनों प्रकार के विद्यार्थी हल कर सकें। परीक्षण की यह विशेषता होनी चाहिए कि इसके आधार पर प्रतिभाशाली एवं कमजोर छात्रों में भेद किया जा सके। परीक्षण में प्रश्न इस प्रकार होने चाहिएं कि अधिकांश प्रतिभाशाली विद्यार्थी उनका उत्तर दे सकें और अधिकांश कमजोर या कम योग्य विद्यार्थी उनका उत्तर दे सकें। जिन प्रश्नों के उत्तर न तो प्रतिभाशाली विद्यार्थी दे सकते हैं और न ही कमजोर विद्यार्थी, उनकी विभेदकारिता नकारात्मक होती है। ऐसे प्रश्नों को परीक्षण में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। परीक्षण–पदों की विभेदीकरण क्षमता (Discriminatory Power) ज्ञात करने के लिए प्रत्येक पद का विश्लेषण किया जाता हे और इस प्रक्रिया को पद–विश्लेषण (Item-Anslysis) कहते हैं। इसके माध्यम से प्रत्येक पद का कठिनाई–स्तर (Difficulty level) भी पता चल जाता है।

6. ***व्यवहारशीलता (Practicability):-*** रॉस के अनुसार, ''व्यवहारशीलता से अभिप्राय परीक्षण के उस गुण से है जिसके कारण अध्यापक या अन्य परीक्षण–प्रशासनकर्त्ता बिना अधिक शक्ति एवं समय को नष्ट किए इसका ठीक से व्यवहार में उपयोग कर सकें।''

"By this is meant the degree to which the test or other instrument can be successfully employed by class-room teachers and school administrators without an undue expenditure of time and energy."

—Ross, C.C.

परीक्षण की व्यवहारशीलता निम्नलिखित बिन्दुओं पर निर्भर होती है।

(i) ***प्रशासन में सुविधा (Easy to Administer):-*** परीक्षण ऐसा होना चाहिए जिसे प्रशासित करने में कोई कठिनाई न हो। परीक्षण के प्रशासन में सुविधा दो रूपों में होनी चाहिए–(i) प्रशासकों को परीक्षण देने में, (ii) विद्यार्थियों का परीक्षण लेने में

इसके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण देने से पहले इसके प्रशासन के लिए पूर्ण तैयारी होनी चाहिए और परीक्षण देते समय भी इस ओर ध्यान रखा जाना चाहिए कि विद्यार्थियों को उचित लिखित एवं मौखिक निर्देश दिये जाएं, परीक्षण पदार्थों का ठीक से वितरण हो तथा परीक्षण के लिए नियत समय दिया जाए। यदि संभव हो तो अभ्यास के लिए नमूने उदाहरण (Model Examples) भी देने चाहिएं, विवरण पुस्तिका में परीक्षण से सम्बन्धित पूरा विवरण दिया जाना आवश्यक है। कुछ परीक्षणों में थोड़े–थोड़े समय के अन्तर पर अवकाश दे दिया जाता है। इनमें समय की निगरानी रखने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।

(ii) ***फलांकन में सुविधा (Easy to Score):-*** अंक प्रदान करने का कार्य भी सरलता, शीघ्रता तथा वांछित ढंग से किया जाना चाहिए। रॉस के अनुसार परीक्षण का फलांकन तीन बिन्दुओं पर निर्भरहोता है–वस्तुनिष्ठता, उत्तर कुंजी एवं पूर्ण फलांकन निर्देश। यदि इन तीनों बिन्दुओं की तैयारी पहले से कर ली जाए तो अंकन कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय कर सकता है। फलांकन के लिए अनेक विधियां प्रचलित हैं जैसी–स्टेन्सिल, उत्तर कुंजी, पंच बोर्ड कुंजी, मशीन फलांकन (Machine Scoring) आदि।

मशीन फलांकन हाथ से फलांकन करने की अपेक्षा अधिक सरल है परन्तु मशीन की सहायता से फलांकन करते समय विशेष प्रकार की उत्तर–पुस्तिकाओं की आवश्यकता पड़ती है। आजकल MIR-(Magnetic Ink Recording) विधि का उपयोग करके कम्प्यूटर द्वारा फलांकन किया जाता है।

(iii) ***विवेचन में सुविधा (Easy to Interpret):-*** परीक्षण के परिणामों का विवेचन सरलता से करने के लिए परीक्षण के साथ संलग्न विवरण–पुस्तिका पूर्ण होनी चाहिए। इस विवरण–पुस्तिका में परिणाम सारणियां, आवश्यक गणना विधियां एवं सामान्यक (Norms) का पूर्ण विवरण होना चाहिए। आयु एवं कक्षा–दोनों के अनुसार मानक देना आवश्यक है।

(iv) ***मितव्ययता (Economical):-*** एक उत्तम परीक्षण समय एवं धन की दष्टि से मितव्ययी होना चाहिए। परीक्षण निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षण अनावश्यक रूप से विस्तत न हो और इसके निर्माण में धन का अपव्यय भी न हो। केवल उन्हीं पदों को परीक्षण में स्थान देना चाहिए जिनसे परीक्षा उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। मितव्ययता के महत्व को समझकर ही आजकल पुनः प्रयोग में लाई जाने वाली परीक्षण पुस्तिकाएं एवं उत्तर पुस्तिकाएं और व्यक्तिगत परीक्षणों के स्थान पर सामूहिक परीक्षणों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

(v) ***ग्राह्यता (Acceptability):-*** ग्राह्यता से अभिप्राय परीक्षण का उन व्यक्तियों का तथा उन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रशासित किया जाना है जिनको आधार बना कर उस परीक्षण को मानकीकृत (Standardised) किया गया है। एक अच्छे परीक्षण में ग्राह्यता का गुण होना अनिवार्य है।

(vi) ***उपयोगिता (Utility):-*** उपयोगिता से अभिप्राय परीक्षण का स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वाछित परिणामों की प्राप्ति के लिए प्रयोग से है। परीक्षण का प्रयोग उसकी उपयोगिता पर निर्भर होता है। जो परीक्षण जितना अधिक उपयोगी होता है, उसका उतना अधिक प्रयोग होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) एक उपलब्धि परीक्षण के विभिन्न गुणों की सूची बनाओ।

4.3 सारांश

उपलब्धि परीक्षण से अभिप्राय ऐसे परीक्षण से है जो विद्यार्थी द्वारा किसी निश्चित क्षेत्र में अर्जित ज्ञान या योग्यता का मापन करने में सहायता करता है। एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण विश्वसनीय, वैध, वस्तुनिष्ठ, व्यापक, विभेदकारी एवं व्यावहारिक होता है। उपलब्धि परीक्षण की व्यावहारिकता से अभिप्राय है–व्यावहारिक परिस्थितियों में उसका सरलतापूर्वक प्रशासन, फलांकन व विवेचन करने योग्य होना तथा उसकी मितव्ययता।

मॉडल उत्तर

(i) एक उपलब्धि परीक्षण में विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, व्यापाकता एवं विभेदकारिता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

4.4 मुख्य शब्द

उपलब्धि परीक्षण—वह परीक्षण जिसकी सहायता से किसी निश्चित क्षेत्र में अर्जित ज्ञान व योग्यता का मापन किया जा सकता है।

विश्वसनीयता—परीक्षण का वह गुण जिसके द्वारा उसे विभिन्न अवसरों पर एक जैसे पदों पर प्रशासित करके लगभग समान निष्कर्ष प्राप्त हों।

वैधता—परीक्षण का वह गुण जिसके द्वारा परीक्षण केवल उन बिन्दुओं की जांच करे जिनके लिए उसका निर्माण किया गया है।

वस्तुनिष्ठता—परीक्षण का वह गुण जिसके कारण परीक्षण के परिणामों पर परीक्षक के व्यक्तित्व, रुचियों, पक्षपातों आदि का प्रभाव न हो।

व्यापकता—परीक्षण में पाठ्यक्रम के सभी बिन्दुओं का समावेश।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C.	'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi
Sood, J.K.	'New Directions in Science Teaching', Kohli Publications, Chandigarh.
शर्मा, आर०ए०	'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993
पाण्डेय, कामता प्रसाद',	शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968

इकाई-V

अध्याय-5: उपलब्धि परीक्षण का तैयार करना (वस्तुनिष्ठ रूप)

(Preparation of Achievement Test-Objective Test)

उद्देश्यः

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगें कि–

– एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के तैयार करने की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।

सरंचनाः

5.1 प्रस्तावना

5.2 उपलब्धि परीक्षण को तैयार करना

5.3 सारांश

मॉडल उत्तर

5.4 मुख्य शब्द

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

जैसा कि हमने पिछले अध्याय में जाना – एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में विश्वसनीयता, वैधता, व्यापकता, विभेदकारिता एवं व्यावहारिकता आदि गुणों का होना आवश्यक होता है। किसी उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

1. कक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति।
2. विषय विशेष में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त सफलता ज्ञात करना।
3. विद्यार्थियों का उचित श्रेणीकरण।

5.2 उपलब्धि परीक्षण को तैयार करना (Preparation of an Achievement Test–Objective Test)

एक उपलब्धि परीक्षण (वस्तुनिष्ठ) के निर्माण हेतु निम्नलिखित सोपानों (Steps) का अनुसरण करना पड़ता है–

I. ***उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of Objectives):*** –यह वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण की रचना का प्रथम चरण होता है। इस चरण में हम परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित करते हैं। उद्देश्य निर्धारित हो जाने से परीक्षण की सार्थकता तथा उपादेयता बढ़ जाती है। कोई परीक्षण पर्याप्त रूप से उपादेय है अथवा नहीं, यह ज्ञात करने के लिए आवश्यक है कि उसके द्वारा सिद्ध होने वाले उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए।

उपलब्धि परीक्षण में उद्देश्य निर्धारित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

अ. निर्धारित पाठ्यक्रम (Syllabus) की गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना।

ब. मनोनीत (Prescribed) पाठ्य पुस्तकों का सर्वेक्षण (Survey)।

स. विषय से संबंधित विद्वानों के विचारों का संकलन।

द. शिक्षकों की सम्मतियां प्राप्त करना।

इस प्रकार पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकें, अनुभवी विद्वानों के मत तथा शिक्षकों के विचार आदि स्त्रोतों की सहायता से उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं।

II. ***प्रश्नों की रचना एवं उनका मूल्याकन (Preparation of Test Items and their Evaluation):*** – उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित करने के उपरान्त प्रश्नों अथवा परीक्षण पदों की रचना निम्नलिखित दो रूपों में की जाती है–

(i) ***पहचान रूप (Recognition Type):*** ऐसे प्रश्न जो विद्यार्थियों की पहचानने की क्षमता का परीक्षण करते हैं।

(ii) ***प्रत्यास्मरण रूप (Recall Type):*** ऐसे प्रश्न जो विद्यार्थियों की प्रत्यास्मरण क्षमता का परीक्षण करते हैं।

परीक्षण पदों की रचना करते समय निम्नलिखित सामान्य सावधानियों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. परीक्षण–पदों या प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट, असन्दिग्ध तथा बोधनीय होनी चाहिए।
2. प्रश्नों को हल करने के लिए लिखित निर्देश भी सरल तथा बोधगम्य भाषा में दिए जाने चाहिए।
3. प्रश्न न तो अत्याधिक कठिन और न ही अधिक सरल हो। प्रश्नों की रचना विद्यार्थियों की आयु एवं स्तर के अनुरूप की जानी चाहिए।
4. एक प्रकार के प्रश्नों को इकट्ठा करके उन्हें व्यवस्थित रूप में रखना चाहिए। इससे अंकन में सुविधा होती है।
5. प्रत्येक प्रकार के प्रश्न में उदाहण के रूप में प्रथम प्रश्न हल कर देना चाहिए।
6. प्रत्येक प्रश्न उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए।
7. प्रश्नों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों तथा विकल्पों (Alternatives) की पूर्ण समीक्षा कर लेनी चाहिए।
8. प्रश्नों द्वारा विषय–वस्तु के अधिक से अधिक अंशों का मापन होना चाहिए।
9. प्रश्नों की शुद्धता, यथार्थता, अपर्याप्तता तथा तर्कसंगतता के सम्बन्ध में अनुभवी अध्यापकों की सम्मति ले लेनी चाहिए।

III. ***निर्मित प्रश्नों को लागू करना (Trying out the Test-items):*** –प्रश्नों की रचना हो जाने के उपरान्त, परीक्षण–कर्त्ता एक प्रतिनिधि समूह अथवा न्यादर्श (Representative sample) का चयन करता है। यह समूह (sample) उन्हीं विद्यार्थियों का होता है जिनके लिए परीक्षण बनाया गया है। इस समूह के चयन में दो बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है–

1. ***प्रतिनिधित्व (Representative ness):*** समूह उस बड़े समुदाय का प्रतिनिधि होना चाहिए जिसके लिए परीक्षण की रचना की गई है।
2. ***निष्पक्षता (Absence of Bias):*** समूह का चयन परीक्षणकर्त्ता एवं अध्यापक के व्यक्तिगत पक्षपातों से अलग रहकर किया जाना चाहिए।

समूह का चयन करने के पश्चात् सभी प्रश्नों को उस समूह पर लागू किया जाता है। प्रश्न हल करने के लिए परीक्षार्थियों को उदारतापूर्वक समय देना चाहिए परन्तु व्यवहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर 90%

परीक्षार्थियों द्वारा सभी प्रश्न हल कर लेने पर, अन्य सभी परीक्षार्थियों से भी उत्तर पुस्तिकाएं ले लेनी चाहिएं।

उत्तर पुस्तिकाओं को सावधानीपूर्वक इकट्ठा करना चाहिए। इसके पश्चात् उत्तर पुस्तिकाओं का अंकन किया जाता है। अंकन के लिए पूर्वनिर्मित अंकन कुंजी (Scoring Key) के अनुसार ही अंकन करना चाहिए। अंकन में एक प्रश्न के लिए एक अंक रखने की प्रथा मितव्ययी एवं व्यावहारिक दष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है परन्तु यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है।

कई विकल्प वाले प्रश्नों अथवा एकान्तर–प्रत्युत्तर रूप प्रश्नों के अंकन में शुद्धि–सूत्र (Correction Formula) का प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे अनुमान तत्वों (Guessing Factors) का प्रायः निवारण हो जाता है। सामान्यतः निम्नांकित शुद्धि–सूत्र का प्रयोग किया जाता हैः–

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

S = शुद्ध किया हुआ अंक (Score Corrected for Guessing Factor)

R = शुद्ध उत्तरों की संख्या (No. of Right Answers)

W = गलत उत्तरों की संख्या (No. of Wrong Answers)

N = प्रत्येक प्रश्न में विकल्पों की संख्या (No. of Alternatives in each question)

IV. ***प्रश्न-विश्लेषण (Item-Analysis):*** यह उपलब्धि परीक्षण के निर्माण का चौथा सोपान होता है। प्रश्न–विश्लेषण से अभिप्राय है–प्रश्न की उपयोगिता (Utility), कुशलता (Efficiency) तथा तर्कशीलता की व्याख्या करना। उदाहरण के लिए किसी परीक्षण के लिए निर्मित अमुक प्रश्न अपना कार्य किस रूप में कर रहा है? उस प्रश्न की सहायता से विद्यार्थियों की योग्यता का मापन कहां तक सम्भव हो सका है? आदि।

सही उत्तर वाले परीक्षार्थियों की संख्या
कुल परीक्षार्थियों की संख्या

प्रश्न–विश्लेषण मुख्यतः दो तथ्यों पर केन्द्रित होता है–

(i) प्रश्नों का कठिनाई स्तर (Difficulty Level of Items)

(ii) प्रश्नों का विभेदीकरण मान (Discriminatory Value of Items)

(i) ***प्रश्नों का कठिनाई स्तर (Difficulty Level of Items):*** परीक्षार्थियों के समूह का वह अनुपात जो किसी प्रश्न को शुद्ध रूप में हल करता है अथवा वास्तविक रूप में जानता है, उस प्रश्न का 'कठिनाई–स्तर' माना जाता है। उदाहरण के लिए यदि 200 परीक्षार्थियों के समूह में एक प्रश्न को 150 परीक्षार्थी शुद्ध रूप में हल कर देते हैं तो इस प्रश्न का कठिनाई स्तर ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा–

कठिनाई स्तर (Difficulty Level) =

$$\therefore \quad \text{उदाहरण में कठिनाई स्तर} \quad = \frac{150}{200} = 0.75 \quad \text{अथवा} \quad 75\%$$

इसी प्रकार परीक्षण के अन्य प्रश्नों का कठिनाई स्तर ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) ***प्रश्नों का विभेदीकरण मान (Discriminatory Value of Items):*** –विभेदीकरण मान की सहायता से उच्च योग्यता एवं निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों में अन्तर किया जा सकता है। यदि प्रश्न–समूह सीमित हो तो

साधारण सांख्किीय विधियों (Statistical Techniques) द्वारा प्रश्नों का कठिनाई स्तर तथा विभेदीकारी मान ज्ञात किया जा सकता है परन्तु गणना (Computation) की सुविधा के लिए आजकल प्रश्न–विश्लेषण तालिकाओं (Item Anslysis Talbes) का उपयोग किया जा रहा है। कुछ प्रमुख प्रश्न–विश्लेषण तालिकाएं निम्न हैं–

आइटम एनालिसस डेटा एण्ड टेबल (Item Analysis Data and TAble): एफ०बी० डेविस द्वारा निर्मित।

आइटम एनालिसिस टेबल (Item Analysis Table by C.T. Fan) सी०टी० फैन द्वारा प्रतिपादित।

प्रश्न/पद विश्लेषण की विधियां (Methods of Item Analysis)

(1) **वर्गीकरण के द्वारा**

(i) ***उत्तर-पुस्तिकाओं को तुलनात्मक समूहों में बांटकरः*** –परीक्षार्थियों को परीक्षा देने के बाद उनका परीक्षणकर लिया जाता है। फिर कॉपियों को अंकों के अनुसार क्रम से रख लिया जाता है। सबसे ऊपर उस विद्यार्थी की कॉपी होगी जिसको सबसे अधिक अंक मिले हैं। इसके बाद उससे कम वाले की और इसी प्रकार अन्तिम कॉपी उसकी होगी जिसके सबसे कम अंक आये हैं। इसके पश्चात् उन्हें हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। केली[1] के अनुसार प्रथम भाग में ऊपर की 27% कॉपी होनी चाहिए, दूसरे भाग में बीच की 46% और तीसरे भाग में नीचे की 27% कॉपिया होनी चाहिए। परन्तु भागों को हम 25% प्रथम व ततीय और 50% द्वितीय भाग में ही बांट सकते हैं। इतना ध्यान में रखना चाहिए कि उच्च अथवा प्रथम भाग और ततीय भाग अथवा निम्न भाग में विद्यार्थियों की संख्या समान होनी चाहिए। क्योंकि हम बीच के भाग को छोड़ देते हैं और अन्तिम तथा प्रथम भाग की ही तुलना करते हैं। मान लीजिए जिस कक्षा में परीक्षादी गई उसमें विद्यार्थी 74 है तो उच्च वर्ग में 74 का 27% अर्थात् 20 विद्यार्थी होंगे। इसी तरह निम्न वर्ग में भी 20 विद्यार्थी होंगे और 34 विद्यार्थी के बीच के वर्ग में होंगे, जिनका अध्ययन नहीं किया जाएगा। फिर हम उनकी प्रतिक्रियाओं को निम्न तालिका में अंकित कर सकते हैं–

उच्च वर्ग (20)			निम्न वर्ग (20)	
पद संख्या	सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत	गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत	सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत	गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत
1	80	20	60	40
5	75	25	40	60
14	90	10	35	65
21	60	40	50	50
35	35	65	60	40
38	70	30	40	60

इसके पश्चात् निम्न सूत्र से प्रत्येक पद का विभेदकारी मान निकाल सकते हैं। इस विधि से यदि विभेदकारी मान 1.96 से कम आये तो कह सकते हैं कि पद विभेदकारी कम है।

$$D = \frac{P_1 - P_2}{\sqrt{\frac{P_1Q_1}{N_1} + \frac{P_2Q_2}{N_2}}}$$

जिसमें

D = विभेदकारी मान (Discriminating Value)

P_1 = उच्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

P_2 = निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

Q_1 = उच्च वर्ग में गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

Q_2 = निम्न वर्ग में गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

N_1 = उच्च वर्ग में विद्यालयों की संख्या।

N_2 = निम्न वर्ग में विद्यालयों की संख्या।

उपर्युक्त, तालिका में यदि हम 21वें पद का विभेदकारी मान ज्ञात करें तो–

$P_1 = 60, \quad Q_1 = 40, \quad N_1 = 20$

$P_2 = 50, \quad Q_2 = 50, \quad N_2 = 20$

$$\frac{P_1 - P_2}{\sqrt{\frac{P_1Q_1}{N_1} + \frac{P_2Q_2}{N_2}}}$$

$$D = \frac{60 \times 50}{\sqrt{\frac{60 \times 40}{20} + \frac{50 \times 50}{20}}}$$

$$\frac{10}{\sqrt{\frac{2400}{20} + \frac{2500}{20}}}$$

$$\frac{10}{D = \sqrt{\frac{2450}{10}}}$$

$$D = \frac{10}{49.5} = 0.2$$

क्योंकि इसका विभेदकारी मान .2 है। अतः हम कह सकते हैं कि पद विभेदकारी नहीं है। क्योंकि इस विधि में उन प्रश्नों को अच्छा समझते हैं जिनका विभेदकारी मान 1.96 या इससे अधिक हो।

(ii) ***रौस एण्ड स्टेनले की विधि द्वारा (गलत प्रतिक्रियाओं द्वारा):*** –वर्गीकरण के आधार पर हम विभेदकारी मान दूसरी विधि से भी निकाल सकते हैं, जो कि रौस एण्ड स्टेनले (Ross and Stanley)[1] ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। उसके अनुसार भी हम उत्तर पुस्तिकाओं का विभाजिन इसी प्रकार 27% प्रथम भाग मे और 27% ततीय भाग में तथा 46% द्वितीय भाग में करते हैं। फिर हमें यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक वर्ग में कितने विद्यार्थियों ने अशुद्ध हल किया या प्रश्न को छोड़ दिया, इसे निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जाता है। उच्च और निम्न वर्ग में मान लीजिए दस विद्यार्थी हैं।

पद संख्या	उच्च वर्ग द्वारा अशुद्ध WH	निम्न वर्ग द्वारा अशुद्ध WL	विभेदकारिता 2—1 WL—WH	कठिनाई 1+2 D_2 WL+WH	विभेदकारी निर्देशांक 3÷N	कठिनाई स्तर 4÷2N
1	8	10	2	18	0.2	0.9
4	10	5	—5	15	0.5	0.75
11	7	5	—2	12	0.2	0.6
16	4	8	4	12	0.2	0.6

WH = (Wrong High) उच्च वर्ग द्वारा अशुद्धि

WL = (Wrong Low) निम्न वर्ग द्वारा अशुद्धि

D_1 = (Discriminating Value) विभेदकारी मान

D_2 = (Difficulty Value) कठिनाई मान

विभेदकारिता निर्देशांक =

कठिनाई निर्देशांक = $\frac{D_2}{N}$

N = विद्यार्थियों की संख्या

(iii) ***सही प्रतिक्रियाओं द्वारा:*** —वर्गीकरण द्वारा एक सरल विधि और है जिसमें विद्यार्थियों को उपर्युक्त तीन वर्गों में बांट कर उनके सही उत्तरों की प्रतिक्रियाओं को अंकित कर लियाजाता है। मान लीजिए प्रत्येक समूह में 30 विद्यार्थी है।

पद संख्या	उच्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाएं	निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाएं	विभेदकारी मान $\frac{RU-RL}{N}$
24	18	10	0.26
47	22	15	0.23
51	12	20	0.26
54	15	15	0
60	25	10	0.5

विभेदकारी मान निकालने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जा सकता है:

$$\frac{RU-RL}{N}$$

RU = उच्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाएं

RL = निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाएं

N = विद्यार्थियों की संख्या एक वर्ग में

इस तरह हम पद संख्या 47 के बारे में निकाल सकते हैं:—

$$\frac{RU-RL}{N} =$$

$$= .23$$

इसी तरह किसी का भी मान 1 से ज्यादा नहीं हो सकता और यदि मान ऋण (–) में आता है जैसा कि पद संख्या 51 का है तो उसे नकारात्मक (Negative) पद कहते हैं, अर्थात् यह पद जिस उद्देश्य से परीक्षा में रखा गया है उसके विपरीत कार्य करता है। ऐसे प्रश्नों का परीक्षा से निकाल देते हैं। इस तरह पद संख्या 54 जिसका मान 0 है–अर्थात् वह पद कोई कार्य नहीं करता, क्योंकि वह उच्च और निम्न वर्ग के विद्यार्थियों में अन्तर मालूम नहीं कर सकता।

(2) **प्रत्येक पद की सही प्रतिक्रियाओं के प्रतिशत द्वारा (Percentage of Correct Responses)**

इसमें हमें निम्न बातों का पता लगाना पड़ता है–

N = विद्यार्थियों की संख्या

R = विद्यार्थियों द्वारा पद की सही प्रतिक्रियाएं

W = विद्यार्थियों द्वारा पद की गलत प्रतिक्रियाएं

O = पद में विकल्पों (Choices) की संख्या

NR = वे विद्यार्थी जिन्होंने पद को खाली छोड़ दिया है।

उपर्युक्त तथ्यों को जानकर हम निम्न सूत्र से प्रत्येक पद की सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत ज्ञात कर सकते हैं–

$$P = 100\times\frac{R-\frac{W}{O-1}}{N-NR}$$

$$\frac{22-15}{30} = \frac{7}{30}$$

$$100\times\frac{60-\frac{30}{4-1}}{100-10}$$

जिसमें P सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत है। उदाहरण के लिए किसी पद के लिए–

R = 60 सही प्रतिक्रियाएं हैं।

W = 30 गलत प्रतिक्रियाएं हैं।

O = 4 पदों में विकल्पों (Choices) की संख्या है।

N = 100 कुल विद्यार्थियों की संख्या है।

NR = 10वें विद्यार्थी जिन्होंने प्रश्न को खाली छोड़ दिया है।

तो इसके लिए हम निम्न रीति से प्रतिशत निकाल सकते हैं–

P =

$$P = 100\times\frac{60-10}{90} = 100\times\frac{50}{90}$$

$$100\times\frac{50}{90} = \frac{500}{9} = 55\%$$

P = 55%

सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत इस पद के लिए 55% है। अर्थात् इसका विभेदकारी मान भी 55% है।

(3) ***प्रत्येक पद की विभेदकारी सारणी द्वारा (Discriminating-Index):*** –इस प्रणाली में हमें प्रत्येक पद के लिए सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत और गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत मालूम करना पड़ता है और फिर निम्न सूत्र से विभेदकारी सारणी निकाल लेते हैं।

D.I. = PR × PW

जिसमें D.I. = (Discriminating Index) विभेदकारी सारणी

PR = सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत (Percentage of Right responses)

PW = गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

मान लीजिए PR = 60 और PW = 40 के हैं तो विभेदकारी सारिणी = 60 × 40 = 2400. यह अधिक से अधिक 2500 हो सकती है और कम सेकम 99. इस तरह हमें प्रत्येक पद की सारिणी ज्ञात करके उसकी विभेदकारिता के बारे में जान सकते हैं।

(4) ***पदों की कठिनाई तथा सरलता मान द्वारा (Difficulty end Facility Value):*** –इसमें हमें प्रत्येक पद की कठिनाई तथा सरलता का प्रतिशत निकालना पड़ता है। इसे निम्न तालिका द्वारा अच्छी तरह समझाया जा सकता है।

विद्यार्थियों की संख्या पद संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	Difficulty Value कठिनाई मान	Facility Value सरलता मान
1	√	√	√	√	√	√	√	√	×	×	20%	80%
8	√	√	√	×	×	×	×	×	×	×	70%	30%
17	√	√	√	√	×	×	×	×	×	√	50%	50%
25	√	√	√	√	√	√	√	√	√	√	0%	100%
82	×	×	√	√	√	√	√	√	×	×	40%	60%
38	×	×	×	×	×	×	×	×		×	100%	0%

उपर्युक्त विधि अत्यन्त सरल है। इसके द्वारा प्रत्येक पद की कठिनाई तथा सरलता के बारे में पता चल जाता है। जैसा कि तालिका में पद सख्या 8 को 7 विद्यार्थियों ने गलत किया है तो इसका कठिनाई मान 70% हो गया और 3 विद्यार्थियों ने सही किया है इसलिए सरलता मान 30% हो जाता है।

(5) ***परीक्षण का अन्तिम प्रारूप (Final Form of the Test):*** –पद विश्लेषण के पश्चात् हमें प्रत्येक पद/प्रश्न की स्थिति का पता चल जाता है अर्थात् हमें प्रत्येक पद की कठिनाई, सरलता तथा विभेदकारिता का ज्ञान हो जाता है। हमें यह ज्ञात हो जाता है कि कौन से प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर कोई विद्यार्थी नहीं दे सका और कौन से ऐसे हैं जिन्हें सभी विद्यार्थियों ने किया है और कौन से ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें 70 प्रतिशत विद्यार्थी सही कर सके। उपलब्धि परीक्षण का अन्तिम प्रारूप निर्धारण करने के लिए प्रश्नों के 'कठिनाई स्तर' तथा 'विभेदीकरण मान' को एक साथ तालिका में लिख लिया जाता है। उसके पश्चात् दोनों मानों की तुलनात्मक समीक्षा करके प्रत्येक प्रश्न की कुशलता का विश्लेषण किया जाता है और उचित कठिनाई स्तर तथा संतोषप्रद विभेदीकरण मान रखने वाले प्रश्नों का चयन किया जाता है। शेष प्रश्नों का बहिष्कार कर दिया जाता है।

(6) ***सामान्य-स्तर निर्धारण (Determination of Norms):*** –सामान्य स्तर (Norms) से अभिप्राय एक ऐसे मानदण्ड से है जिसके द्वारा अन्य परीक्षार्थियों के अंक सरलतापूर्वक समझे जा सकते हैं। ये सामान्य स्तर निम्नलिखित प्रकारके होते हैं।

(i) श्रेणी सम्बन्धी सामान्य स्तर (Grade Norms) जो विद्यालय की विभिन्न श्रेणियों के लिए प्रतिपादित किया जाता है।

(ii) आयु सम्बन्धी सामान्य स्तर (Age Norm)

(iii) लिंग सम्बन्धी सामान्य स्तर (Sex Norm)

(iv) नगर तथा ग्राम सम्बन्धी सामान्य स्तर (Urbanand Rura Norms)

(v) प्रतिशतीय सामान्य स्तर (Percentile Norm)

आजकल प्रतिशतीय सामान्य स्तर ज्ञात करना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इन सामान्य–स्तरों पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक परीक्षार्थी की स्थिति पूर्ण समूह में कैसी है। उसके ऊपर तथा नीचे कितने प्रतिशत विद्यार्थी हैं। उदाहरण के लिए यदि एक परीक्षार्थी का प्रतिशतीय अंक 30 है तो हम कह सकते हैं इस परीक्षार्थी के नीचे 30 छात्र तथा ऊपर 70 छात्र हैं। इसी प्रकार कुछ प्रतिशतीय अंकों की व्याख्या निम्नलिखित है–

प्रतिशतीय अंक	**व्याख्या**
20	20% नीचे तथा 80% ऊपर
40	40% नीचे तथा 60% ऊपर
50	50% नीचे तथा 50% ऊपर
60	60% नीचे तथा 40% ऊपर
70	70% नीचे तथा 30% ऊपर

(7) ***विश्वसनीयता निर्धारण (Estimation of Reliability):*** –वही परीक्षण विश्वसनीय माना जाता है जिस पर विद्यार्थियों द्वारा प्राप्तांकों मे देश, काल, परीक्षक तथा परीक्षार्थी के व्यक्तिगत अंशों का लेश–मात्र भी प्रभाव न पड़े। ऐसे परीक्षणों के प्राप्तांक स्थिर और अपरिवर्तनशील होते हैं। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता का निर्धारण करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है परन्तु सबसे अधिक तर्कसंगत विधि तर्क–युक्त समानता विधि (Method of Rational Equivalence) होती है। इस विधि द्वारा अन्य सभी विधियों के दोषों का निवारण हो जाता है। इस विधि का प्रतिपादन कूडर एवं रिचर्डसन (Kuder & Richardson) ने किया। इस विधि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सभी प्रश्नों का पारस्परिक सम्बन्ध सुगमतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षा शास्त्री गिलफोर्ड (Guilford) ने इस विधि के प्रयोग पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार इस विधि का सरलतम सूत्र निम्नलिखित है–

$$\text{विश्वसनीयता} = \frac{\text{प्रश्नों की संख्या (प्रमाणिक विचलन)}^2 - \text{मध्य मान (प्रश्नों की संख्या– मध्य मान)}}{\text{(प्रश्नों की संख्या–1 (प्रमाणिक विचलन)}^2}$$

उदाहरण–एक परीक्षा में कुल प्रश्नों की संख्या 100 है। यदि उसका मध्यमान 50 तथा प्रमाणिक विचलन 10 है तो परीक्षा की विश्वसनीयता क्या होगी?

सूत्र में अंकों को रखने पर–

$$\text{विश्वसनीयता} = \frac{100(10)^2 - 50(100-50)}{(100-1)(10)^2}$$

$$= \frac{100(10) - 50(50)}{(99)\,(100)}$$

$$=$$

$$= \qquad = 0.76 \text{ approx.}$$

अर्थात् परीक्षा की विश्वसनीयता 0.76 है जो अधिक सन्तोषप्रद नहीं है। उपलब्धि परीक्षाओं के लिए 0.80 से अधिक की विश्वसनीयता सन्तोषप्रद कही जाती है।

(8) ***वैधता निर्धारण (Estimation of Validity):*** वैधता से अभिप्राय किसी कसौटी (Criterion) के साथ परीक्षण के सह–सम्बन्ध से है। यह उपलब्धि परीक्षण के निर्माण का अन्तिम–चरण होता है। वैधता मुख्यतः निम्नलिखित पांच प्रकार की होती है।

(i) ***पाठ्य सम्बन्धी वैधता (Content Validity):*** –इस प्रकार की वैधता का सम्बन्ध पाठ्यक्रम से होता है अर्थात् जब परीक्षण और पाठ्यक्रम में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तो वह पाठ्यक्रम सम्बन्धी वैधता होती है। इस प्रकार की वैधता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

क. सर्वप्रथम पूर्ण पाठ्यक्रम को पांच भागों में बांट लिया जाए और उसके पश्चात् प्रत्येक भाग को पांच पाठों (Lessons) में बांट लिया जाए और प्रत्येक पाठ पर दस प्रश्नों की रचना की जाए। इस प्रकार प्रश्नों की कुल संख्या 250 हो जाएगी। प्रश्नों की संख्या भागों के अनुसार कम या अधिक भी की जा सकती है।

ख. प्रश्नों की भाषा सरल तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त परीक्षण में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित मुख्य बिन्दुओं से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश होना चाहिए।

(ii) ***समवर्ती वैधता (Concurrent Validity):*** –इसमें एक उपलब्धि परीक्षण द्वारा प्राप्त किए हुए अंकों का सहसम्बन्ध किसी दूसरे प्रचलित परीक्षण के अंकों से किया जाता है। उदाहरण के लिए–यदि हमने भौतिक विज्ञान के एक परीक्षण का निर्माण किया है और उस परीक्षण को विद्यार्थियों को दिया जाता है। विद्यार्थियों द्वारा परीक्षण में प्राप्त अंकों का सह सम्बन्ध विद्यार्थियों की मासिक परीक्षा के प्राप्तांकों अथवा किसी पहले से प्रमापीकृत परीक्षण के प्राप्तांकों से किया जा सकता है। इस प्रकार की वैधता को समवर्ती वैधता कहा जाता है। समवर्ती वैधता के लिए यह आवश्यक है कि हम एक वैध परीक्षण के साथ अपने बनाये परीक्षण की वैधता ज्ञात करें।

(iii) ***निर्वचन वैधता (Construct Validity):*** –किसी परीक्षण को देने के पश्चात् उस परीक्षण का फलांक हमारे सम्मुख आता है जिसे देख कर हम कह सकते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा अथवा इस फलांक के आनेपर क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें यह देखना पड़ता है कि हमारे परीक्षण के निर्वचन में कौन–कौन से विचारों अथवा अवधारणाओं (Concepts) पर बल दिया जाए और उनमें से किन विचारों में विद्यार्थियों ने औसत अंक प्राप्त किए हैं अथवा औसत से कम या अधिक। इस प्रकार की वैधता में हमें पाठ्यक्रम का निर्वचन नहीं करना पड़ता। इसमें हम किसी अन्य विशेषज्ञ की राय भी ले सकते हैं।

(iv) ***रूप वैधता (Face Validity):*** –जब एक परीक्षण उस योग्यता का मापन करता है। जिसके लिए उसका निर्माण किया है तो उसे रूप वैधता कहा जाता है।

उदाहरण के लिए–एक मौतिक विज्ञान परीक्षण दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है। इस परीक्षण को मौतिक विज्ञान विशेषज्ञों के पास भेजकर उनके विचारों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है और इस आधार पर परीक्षण की रूप वैधता ज्ञात की जा सकती है।

(v) ***पूर्वकथानात्मक वैधता (Predictive Validity):*** –जब किसी परीक्षण के फलांक के आधार पर विद्यार्थियों की भावी सफलता के सम्बन्धित भविष्यवाणी की जाती है तों इसे पूर्वकथनात्मक वैधता कहा जाता है।

उदाहरण के लिए–विज्ञान की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाला कक्षा 9 का विद्यार्थी एक वर्ष बाद भी प्रथम श्रेणी प्राप्त कर सकेगा या नहीं। यदि वह विद्यार्थी कक्षा 10 में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त करता है तो विज्ञान की परीक्षा वैध कहलाएगी।

किसी वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय इस आठ सोपानों या चरणों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) एक उपलब्धि परीक्षण के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करो।

(ii) प्रश्न विश्लेषण मुख्यतः किन दो तथ्यों पर आधारित होता है?

3. विश्वसनीयता =

4. किसी परीक्षण की वैधता किस प्रकार निर्धारित की जाती है?

5.3 सारांश

एक उपलब्धि परीक्षण को तैयार करने के लिए विभिन्न चरणों का अनुसरण करना पड़ता है। सबसे पहले उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं उद्देय निर्धारित करने के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, विषय–विशेषज्ञों आदि की सहायता ली जाती है। उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् प्रश्नों की रचना एवं मूल्यांकन किया जाता है। प्रश्नों के मूल्यांकन के लिए उन्हें एक न्यादर्श पर लागू किया जाता है और विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त उत्तरों के आधार पर प्रश्नों का मूल्यांकन किया जाता है। प्रश्न–विश्लेषण में प्रश्नों का कठिनाई स्तर एवं विभेदकारी मान ज्ञात किया जाता है। प्रश्नों का विभेदकारी मान ज्ञात करने के लिए वर्गीकरण विधि अथवा सही प्रतिक्रियाओं के प्रतिशत, विभेदकारी सारणी आदि का उपयोग किया जाता है। इसके पश्चात् उचित कठिनाई स्तर एवं विभेदकारी मान वाले प्रश्नों को रख कर परीक्षण का अंतिम प्रारूप तैयार किया जाता है। इसके पख्चात् परीक्षण के 'सामान्य स्तर', 'विश्वसनीयता' तथा वैधता का निर्धारण किया जाता है।

मॉडल उत्तर

1. एक उपलब्धि परीक्षण के निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरण होते हैं–

   I. उद्देश्यों का निर्धारण

   1I. पदों की रचना

   III. निर्मित प्रश्नों को लागू करना

   1V. पद विश्लेषण

   V. परीक्षण का अंतिम प्रारूप

   V1. समान्य स्तर निर्धारण

   VI1. विश्वसनीयता निर्धारण

   VII1. वैधता निर्धारण

2. प्रश्न विश्लेषण मुख्यतः दो तथ्यों पर आधारित होता हैः प्रश्नों का कठिनाई स्तर एवं प्रश्नों का विभेदीकरण माप

3. $$\text{विश्सनीयता} = \frac{\text{प्रश्नों की संख्या (प्रमाणिक विचलन)}^2 - \text{मध्यमान (प्रश्नों की संख्या} - \text{मध्यमान)}}{\text{(प्रश्नों की संख्या} - 1)\ \text{(प्रमाणिक विचलन)}^2}$$

4. परीक्षण की वैधता पांच प्रकार से निर्धारित की जा सकती है–

   1. पाठ्य विषय सम्बन्धी वैधता
   I1. समवर्ती वैधता
   1II. निर्वचन वैधता
   1V. रूप वैधता
   V. पूर्वकथनात्मक वैधता

5.4 मुख्य शब्द

परीक्षण पद–उपलब्धि परीक्षण में दिए गए पद।

कठिनाई स्तर–परीक्षार्थियों के समूह का वह अनुपात जो किसी प्रश्न को शुद्ध रूप में हल करता है।

वैधता–परीक्षण की 'अभिप्राय सापेक्षता'

प्रमापीकरण–उपलब्धि परीक्षण के प्रश्नों का विश्लेषण कर के उनकी विश्सनीयता, वैधता एवं सामान्य–स्तर निर्धारण करना।

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sharma, R.C.	'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi
Sood, J.K.	'New Directions in Science Teaching', Kohli Publications, Cjhandigarh.
शर्मा, आर०ए०	'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993
पाण्डेय, कामता प्रसाद,	शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968
गुप्ता, रमेशचन्द्र एवं भट्ट, चन्द्रशेखर	'शिक्षा में मापन और मूल्यांकन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1974